अमेरिका की राजनीतिक पद्धति
और
उसकी कार्य विधि

लेखक
डेविड कुशमन क्वायल

जय भारती
९०, नया कटरा, इलाहाबाद

संशोधित संस्करण—दिसम्बर १९६० ई०

❋

अनुवादक—रामगोपाल विद्यालंकार

❋

सम्पादक—विद्या भास्कर

❋

मूल्य—तीन रुपये

❋

मुद्रक—कृष्ण कुमार जौहरी,
माडेस्ट प्रिंटिंग वर्क्स,
जीरो रोड, इलाहाबाद

लोकतन्त्र की क्रियाविधि

"जव मानव जाति लोकतन्त्र को अपनाती है, तब वह राजनीति के माध्यम से व्यवहार करती है। लोकतन्त्रात्मक समाज में शासन के कार्यों और नीतियों के वारे में परस्पर विरोधी मत शान्तिपूर्वक सुलझा लिये जाते हैं। इसके लिए साधारणतया गृह-युद्ध नहीं किये जाते। राजनीति के द्वारा ही लोग अपने निर्णय तथा विधान स्थिर करते हैं और उन्हें लागू करने के लिये सरकारी अधिकारियों का चुनाव करते हैं, जिससे ऐसा परिणाम निकले जो समाज के किसी महत्वपूर्ण अंग को वुरा न लगे।"

"अमेरिका की भली या वुरी राजनीति अमेरिकी जनता के मिश्रित रूप तथा विगत इतिहास को अभिव्यक्त करता है, जिसमें न केवल शासकीय संस्थाओं का वल्कि राजनीतिक जीवन की परम्पराओं का रूप निर्धारण हुआ है ....।"

डेविड कुशमन क्वायल

इस पुस्तक में संयुक्त राज्य अमेरिका की राजनीतिक पद्धति की सजीव, सक्रिय व्याख्या की गयी है। इसमें वहां के राजनीतिक संगठनों तथा एजन्सियों के पेचीदे जाल सूत्रों का परिचय है जो दिन प्रति दिन प्रत्येक राज्य में उस पद्धति को कार्यान्वित करती है। संयुक्त राज्य अमेरिका के लोकतन्त्र की गम्भीर क्रियाविधि को समझने की यह वहुमूल्य कुञ्जी है। यह पुस्तक उस दर्शन की भी व्याख्या करती है जिससे यह पद्धति संचालित होती है।

विषय-सूची

अध्याय १

आरम्भ

जब मानव जाति लोकतन्त्र को अपनाती है तब वह राजनीति के माध्यम से व्यवहार करती है। लोकतन्त्रात्मक समाज में शासन के कार्यों और नीतियों के बारे में परस्पर विरोधी मत शान्तिपूर्वक सुलझा लिये जाते हैं। इसके लिए साधारणतया गृह-युद्ध नहीं किया जाता। राजनीति के द्वारा ही लोग अपने निर्णय तथा विचार स्थिर करते हैं और उन्हें लागू करने के लिए सरकारी अधिकारियों का चुनाव करते हैं, जिससे ऐसा परिणाम निकले जो समाज के किसी भी महत्वपूर्ण अंग को बुरा न लगे।

अमेरिका की भली या बुरी राजनीति अमेरिकी जनता के मिश्रित रूप तथा विगत इतिहास को अभिव्यक्त करती है, जिसमें न केवल शासकीय संस्थाओं की बल्कि राजनीतिक जीवन की परम्पराओं का रूप-निर्धारण हुआ है। अमेरिकी शासन-प्रणाली कुछ तो अठारहवीं शताब्दी की ब्रिटिश औपनिवेशिक पद्धतियों का परिणाम है और कुछ उस व्यवस्था का, जो अमेरिका के इतिहास में विशिष्ट परिस्थितियों का सामना करने के लिए आविष्कृत की गयी थी।

आज केवल आधी के लगभग अमेरिकी निवासियों में इंगलैण्डवासियों का रक्त रह गया है। शेष प्रायः सबकी सब जनता या तो युरोपियन महाद्वीप के निवासियों, या नीग्रो और या अमेरिकी इण्डियनों की सन्तान है। कुछ लोग पूर्वी देशों से आये हुए भी हैं। जिस राजनीतिक प्रणाली से अमेरिकी लोग अपना शासन चलाते हैं उसकी रचना सहज सूझ-बूझ से अधिक और किसी तर्क-पूर्ण योजना

द्वारा कम हुई है। इसका प्रधान आधार तो ब्रिटिश रीति-रिवाज और परम्पराएं हैं, परन्तु इसके निर्माण में उन अन्य लोगों का भाग भी है जो संयुक्त राज्य अमेरिका में बस गये हैं। यह पुस्तक यह दिखलाने के लिए लिखी गयी है कि इस देश में राजनीतिक पार्टियां और राजनीतिक काररवाईयां शासन की विविध शाखाओं को किस प्रकार प्रभावित करती हैं।

सन् १६०७ से सन् १७७६ तक के औपनिवेशिक काल में, ब्रिटिश अमेरिकी उपनिवेशों में शासन की वे ब्रिटिश पद्धतियां जम चुकी थीं जो कि पीछे चलकर देश की अधिकतर वर्तमान राजनीतिक संस्थाओं का आधार बनीं।

औपनिवेशिक विधान-मण्डल उपनिवेशों के लिए क़ानून बनाते, स्थानीय शासनों को अनुमति पत्र देते, कर लगाते, और सार्वजनिक व्यय के लिए धन-राशि का परिमाण निर्धारित करते थे। वे कभी-कभी गवर्नरों के कामों पर अपना नियन्त्रण रखने के लिए कोश-बलका प्रयोग भी करते थे।

स्थानीय शासनों का संगठन इंगलैण्ड के स्थानीय शासनों के नमूने पर किया गया था। स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार, उपनिवेशों में भी 'काउण्टियों' (छोटे ज़िलों), टाउनशिपों (नगर-विस्तारों), जागीरों और बरो (स्व-शासित नगरों) की स्थापना की गयी थी। उनमें से अनेक आज भी बिना किसी बड़े परिवर्तन के वैसे ही विद्यमान हैं। क्रान्ति से पूर्व भी उपनिवेश वासी 'काउण्टी-कोर्टों' (ज़िला-अदालतों), 'जस्टिस ऑव् पीस' या आनरेरी मजिस्ट्रेटों, 'शरिफों' (क़ानून का पालन कराने वाले अधिकारियों) और 'कोरोनरों' (मृत्यु के कारणों की जांच करने वाली अदालतों) से भली-भांति परिचित थे। प्रत्येक उपनिवेश में अपीलें सुनने के लिए सुप्रीम कोर्ट (सर्वोच्च न्यायालय) और गम्भीर मामलों की सुनवाई के लिए मध्यवर्ती न्यायालय थे। अन्तिम अपील इंगलैण्ड की प्रीवी कौंसिल में होती थी।

सभा कर सकने, सरकार से प्रार्थना करने, मुक़दमे की सुनवाई जूरी द्वारा कराने, और कर लगाने के अधिकारी विधान-मण्डल में अपना निर्वाचित प्रतिनिधि भेजने सरीखे अंग्रेजों के परम्परागत अधिकारों को उपनिवेशवासियों ने सहज ही अङ्गीकृत

कर लिया था। वे न तो इंगलैण्ड को कोई कर देते थे और न इंगलैण्ड उन्हें कोई सैनिक सहायता भेजता था, फिर भी अधिकतर औपनिवेशिक काल में, ब्रिटिश सरकार उपनिवेशों को बार-बार फ्रान्सीसियों और कनाडा-वासी फ्रेंच इण्डियनों के साथ युद्ध में फंसा देती थी। अन्त में जब ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने अमेरिकी लोगों पर (जिनका ब्रिटिश पार्लमेण्ट में कोई प्रतिनिधि नहीं होता था) कर लगाने का प्रयत्न किया तब उन्होंने उसे अपने पैत्रिक अधिकारों का उल्लंघन माना।

क़ानून के शब्दों द्वारा औपनिवेशिक शासनों को जितने अधिकार प्राप्त होने की कल्पना की जाती थी, वे वस्तुतः उसकी अपेक्षा कहीं अधिक स्वतन्त्र और अधिकार सम्पन्न थे, क्योंकि दूरियां बहुत बड़ी थीं और अतलान्तक समुद्र के पार आने-जाने में समय बहुत लगता था। विशेषतः अपने स्थानीय शासनों में और पश्चिम की ओर धीरे-धीरे फैलते हुए अपने सीमान्त में, अमेरिकी लोगों को अपने स्वामी ब्रिटिश राजा की उपस्थिति के चिह्न दिखलाई नहीं पड़ते थे। अंग्रेजों की आधीनता के एक-सौ-सत्तर वर्षों में वे स्वशासन और आत्मनिर्भरता के बड़ी मात्रा में अभ्यस्त हो चुके थे। परन्तु उनके शासन के सर्वोच्च-नायक ब्रिटिश राजा और ब्रिटिश पार्लमेण्ट ही थे, जिसमें उनका एक भी प्रतिनिधि नहीं जाता था। इसलिए संगठित राजनीतिक दलों का वैसा विकास पहले नहीं हो पाया जैसा इंगलैण्ड के साथ उपनिवेशों का सम्बन्ध विच्छिन्न होने के पश्चात् हुआ। राजनीतिक विवाद मुख्यतया गवर्नरों और विधान मण्डलों में या स्थानीय पदों के उम्मीदवारों में ही होते थे।

औपनिवेशिक काल में फ्रान्सीसियों और इण्डियनों के साथ बार-बार जो युद्ध होते थे उनकी व्यवस्था करने के लिए एक औपनिवेशिक संघ बना लेने के कई सुझाव कई बार दिये गये। परन्तु इन पर अमल एक बार भी नहीं हुआ। हां, इनके कारण अमेरिकी लोग संयुक्त काररवाई करने के विचार से परिचित अवश्य हो गये। जब सन् १७७० के बाद के वर्षों में इंगलैण्ड के साथ झगड़े अधिकाधिक तीव्र होने लगे तब अमेरिकियों ने संयुक्त रूप से काररवाई करने पर गम्भीरता से ध्यान दिया। सन् १७७४ में उन्होंने महाद्वीप की एक कांग्रेस बुलायी।

महाद्वीप की कांग्रेस का क़ानूनी आधार कुछ नहीं था : यह एक गैर-सरकारी प्रतिवाद सभा मात्र थी। इसने 'अधिकारों और शिकायतों की एक घोषणा' करके सन् १७७५ में एक और कांग्रेस बुलायी। इस कांग्रेस ने अधिक निश्चित रूप धारण कर लिया, क्योंकि मैस्सेच्यूसेट्स में युद्ध छिड़ गया था और दोनों तरफ से गोलियां चलने लगी थीं। इसने उपनिवेशों पर शासन करने का अधिकार अपने हाथ में ले लिया। इसने एक राष्ट्रीय सेना संगठित करके उसके सेनापति पद पर जार्ज वाशिंगटन को नियुक्त कर दिया।

सन् १७७६ में महाद्वीप की द्वितीय कांग्रेस ने "स्वतन्त्रता की घोषणा" स्वीकृत की। "घोषणा" में अंग्रेजों के परम्परागत अधिकारों और स्वतन्त्र मनुष्यों के अनपहरणीय अधिकारों पर बल देकर कहा गया था कि यही नींव है जिस पर अमेरिकी राज्य अपना शासन स्थापित करने का दावा करते हैं। "स्वतन्त्रता की घोषणा" में क़ानून का वह बल नहीं है जो 'संविधान' में है। परन्तु जिन नैतिक सिद्धान्तों के द्वारा संयुक्त-राज्य अमेरिका के कार्य-कलापों को समझा जा सकता है उनका विवरण इस घोषणा-पत्र में होने के कारण इसका प्रभाव बहुत है।

सन् १७७७ में महाद्वीप की कांग्रेस ने संघीय एकता का प्रस्ताव कुछ शिथिल रूप में अपना कर उसे राज्यों की स्वीकृति के लिए उनके पास भेजा। सन् १७८१ तक सब राज्यों ने उस पर अपनी स्वीकृति की छाप लगा दी और वह लेख-पत्र "आर्टिकल्स आव कानफेडरेशन" अर्थात् संघ-बद्धता के अनुच्छेदों के नाम से गणतन्त्र का प्रथम संविधान बन गया।

"आर्टिकल्स आव कानफेडरेशन" द्वारा स्थापित संघीय शासन व्यवहार में आ सकने की दृष्टि से अति सरल और अति निर्बल था, परन्तु उस समय राज्य इससे अधिक कुछ मानने के लिए तैयार भी नहीं थे। जो थोड़े बहुत अधिकार केन्द्रीय शासन को सौंपने के लिए राज्य तैयार थे, वे कांग्रेस को दे दिये गये। कांग्रेस तब एक सीधी-सादी सभा थी, जिसमें प्रत्येक राज्य का एक-एक वोट था। शासन में न न्याय-पालिका की शाखा थी और न कार्य-पालिका की।

"आर्टिकल्स आव कानफेडरेशन" के आधीन होकर देश और राज्य द्रुतगति से संकट की ओर को लुढ़कने लगे। "कान्टिनेण्टल" (महाद्वीप की कागजी मुद्रा)

की इतनी स्फीति हुई कि वह प्रायः निरर्थक पदार्थ हो गयी। यहाँ तक कि आज तक भी "काण्टिनेण्टल के बराबर भी नहीं" यह अमेरिकी भाषा का एक मुहावरा बना हुआ है। राज्यों के बीच व्यापार अति न्यून रह गया। बहुत से अमेरिकी व्यापारी एक ऐसे अधिक बलशाली संघीय शासन की मांग करने लगे, जो कि व्यापार को नियन्त्रित कर सके, कर लगा सके, और आर्थिक व्यवस्था को नष्ट होने से बचा सके। सन् १७८५ और सन् १७८६ में व्यापारियों के दो अन्तर्राज्यीय सम्मेलन हुए, और उनके कारण सन् १७८७ में 'फिलेडेल्फिया कन्वेन्शन' (फिलेडेल्फिया की परिषद्) बुलायी गयी, जिसमें संविधान लिखा गया। यही कारण है कि संविधान की रचना "व्यापार के अनुच्छेद" और उससे सम्बद्ध उन अनुच्छेदों के आधार पर हुई जिनमें कि संघीय शासन के विविध आर्थिक अधिकार और कर्तव्य निर्धारित किये गये हैं।

इन अनुच्छेदों से उन लोगों का मुख्य उद्देश्य प्रकट हो जाता है जिन्होंने कि 'कन्वेन्शन' बुलाया और उसके विचार में भाग लिया था।

'फिलेडेल्फिया कन्वेन्शन' के अधिकतर प्रतिनिधि ऐसे वकील, भूमिपति या व्यापारी थे जो कांग्रेस में या सरकारी कर्मचारी के रूप में काम कर चुके थे। उनमें मजदूरों या छोटे किसानों या सीमान्त की ओर बढ़ने वाले अग्रणी लोगों के प्रतिनिधि नहीं थे। ये प्रतिनिधि एक ऐसे शासन का गठन करना चाहते थे जो व्यापार में सहायक हो सके और बलवान तथा स्थायी हो। वे यह तो चाहते थे कि शासन 'जनता' के प्रति उत्तरदायी हो, परन्तु उनका इरादा यह नहीं था कि साधारण जनता राष्ट्रपति का या कांग्रेस का चुनाव भी करे। उनको बड़े और छोटे राज्यों में ऐसा समझौता भी कराना था जिससे उनकी परस्पर ईर्ष्या और भय का अन्त हो जाय।

संघ का गठन संविधान की एक आवश्यक विशेषता थी, क्योंकि उसके निर्माताओं का उद्देश्य यह था कि एक बलवान केन्द्रीय शासन की स्थापना की जाय और साथ-साथ वे सब अधिकार राज्यों के ही हाथ में रहने दिये जायँ जिन्हें राष्ट्र को हस्तान्तरित कर देना अनिवार्यरूपेण आवश्यक नहीं था। इस दुहरे

उद्देश्य की सिद्धि के साथ ही यह भय भी लग रहा था कि कहीं संघीय शासन अति प्रबल होकर अत्याचार न करने लगे। कार्य-पालन, न्याय और विधि-निर्माण के अधिकारों को पृथक् रखने के सिद्धान्त की जड़ में भी यही भय काम कर रहा था कि यदि शासन की इन तीनों शाखाओं या इनमें से दो के अधिकार कहीं एक ही हाथों में केन्द्रित हो गये तो स्थिति बड़ी भयंकर हो जायगी।

परन्तु संयुक्त-राज्य-अमेरिका का संविधान सन् १७८८ से अबतक बिना किसी विरोध के स्थिर चला आ रहा है और इस वास्तविकता को देख लेने के पश्चात् यह सन्देह नहीं हो सकता कि यह अमेरिकी जनता की आवश्यकता और प्रकृति के अनुकूल नहीं है। जिन लोगों ने इसकी रचना की थी उनमें अमेरिकी चरित्र को और अन्य देशों और कालों के ऐतिहासिक अनुभवों को समझ सकने की आश्चर्यकारक शक्ति थी। उनके परिश्रम का परिणाम, सन् १७८८ की तात्कालिक समस्याओं को सुलझाने की दृष्टि से और उन परिस्थितियों की दृष्टि से जिनको वे पहले से देख नहीं सकते थे किन्तु जिनके अनुसार उन्होंने अपने को ढाल लिया था, असाधारण था।

एक शताब्दी के पश्चात्, प्रसिद्ध ब्रिटिश विद्वान् जेम्स ब्राइस ने संयुक्त-राज्य के संविधान के विषय में लिखा था—

"इसका दर्जा अन्य किसी भी लिखित संविधान से ऊँचा है, क्योंकि इसकी योजना ठोस तथा उत्कृष्ट है, यह जनता की परिस्थितियों के अनुकूल है, इसकी भाषा सरल, संक्षिप्त और स्पष्ट है, और इसके सिद्धान्त निश्चित होते हुए भी इसकी तफ़सील में लचकीलापन है। इसमें इन दोनों गुणों का मल खूब सन्तुलित है।"*

संविधान द्वारा संगठित संघीय शासन बहुत कुछ उसी प्रकार बना हुआ कृत्रिम राज्य था जिस प्रकार कोई कार्पोरेशन एक कृत्रिम व्यक्ति होता है या जिस प्रकार

---

*जेम्स ब्राइस लिखित "अमेरिकन कामनवेल्थ" के प्रथम भाग का पृष्ठ २५ (मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क द्वारा सन् १८८९ में प्रकाशित)।

वैद्युतिक मस्तिष्क सोचने का कृत्रिम यन्त्र होता है। यह बनाया गया था, जन्मा नहीं था। इसके अस्थि-पंजर पर अब चढ़ा हुआ मांस जो है उसे उन लोगों ने प्रदान किया है जिन्होंने इसे क्रियान्वित किया था, अर्थात् राजनीति और व्यवहार-नीति की कलाओं में कुशल अमेरिकनों ने।

राज्य स्वयम्भू और स्वयम्प्रभु थे। उन्होंने स्वतन्त्र अंग्रेजों के सर्व-प्रभुत्व सम्पन्न सब अधिकारों को अपने प्रदेश में प्रयुक्त करने का और उसके पश्चात् अपनी स्वयम्प्रभुता का रूप स्वयं निर्धारित करने का अधिकार युद्ध में जीता था। उसकी स्वयम्प्रभुता का नियन्त्रण केवल राष्ट्रों के क़ानूनों से हो सकता था।

जब क्रान्तिकारी युद्ध आरम्भ हुआ तब राज्यों ने अनियमित विधान मण्डल स्थापित कर लिए और सन् १७७६ से सन् १७८० तक के मध्य में उन्होंने अपने संविधान बनाकर पूर्णतया संगठित शासनों की सृष्टि कर डाली। पीछे जाकर जिन सिद्धान्तों के आधार पर संघीय ढांचा बना उनमें से अधिकतर सिद्धान्तों की परीक्षा पहले एक या अनेक राज्यों में हो चुकी थी। राज्यों के प्रथम संविधान छोटे थे, परन्तु उन्हें बनाया गया था पूर्ण समझ कर। उदाहरणार्थ, राज्यों में विधि-निर्माण की, न्याय-पालन की और कार्य-पालन की शाखाएं पृथक्-पृथक् थीं, "आर्टिकल्स आव कानफेडरेशन" द्वारा स्थापित संघीय-शासन में ऐसा नहीं था।

"आर्टिकल्स आव कानफेडरेशन" में यह सिद्धान्त स्थिर कर लिया गया था कि प्रत्येक राज्य अपने अधिकार से स्वतन्त्र, स्वाधीन और स्वयम्प्रभु है और संयुक्त राज्य को राज्यों द्वारा दिये गये अथवा "प्रतिनिधि-रूपेण" प्राप्त अधिकारों के अतिरिक्त अन्य कोई अधिकार नहीं है। जब नया संविधान लिखा जाने लगा तब उसकी रचना इसी सिद्धान्त पर की गयी, अन्तर केवल इतना रहा कि नया संघ "अधिक पूर्ण" था, अर्थात् उसे राज्यों के प्रतिनिधि के रूप में अधिक अधिकार प्राप्त हो गये थे।

सन् १७८७ में जब प्रतिनिधि फिलेडेल्फिया में एकत्र हुए तब उन्हे केवल "आर्टिकल्स आव कानफेडरेशन" में संशोधन प्रस्तुत करने का अधिकार दिया

गया था। "आर्टिकल्स" (अनुच्छेदों) में लिखा था कि संशोधन राज्यों की सर्व-सम्मति से ही स्वीकृत हो सकते हैं। परन्तु जब प्रतिनिधियों ने कार्य आरम्भ किया तब उन्होंने देखा कि पूर्णतया नये शासन से कम में काम नहीं चलेगा। उन्होंने तब न केवल "आर्टिकल्स आव कानफेडरेशन" को, अपितु उस संशोधन सम्बन्धी अनुच्छेद को भी समाप्त कर डालने का निर्णय कर लिया जिसमें कि मूल संविधान को बदलने की विधि बतलायी गयी थी। उसके स्थान पर उन्होंने नवीन संविधान में उसे अपनाये जाने का अनुच्छेद भी लिखा, और प्रथम नौ राज्यों का नया संघ स्थापित करके उनसे उसे स्वीकृत कर लेने के लिए कहा। अन्य राज्य उसमें, जब वे तैयार हो जायं तब, सम्मिलित हो सकते थे।

"कन्वेन्शन" का मुख्य काम ऐसे शासन की योजना बनाना था जो प्रतिनिधियों द्वारा सौंपे गये उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सके और साथ ही उन आपत्तियों का उत्तर दे सके जो उसके विरुद्ध उठायी जायं। पश्चिमी यूरोप के देशों का संघ बनाने के वर्तमान प्रयत्नों को अमेरिकी लोग ऐतिहासिक-अनुभव-जन्य सहानुभूति की दृष्टि से देखते हैं। वे अपनी बाल्यावस्था में स्कूल में पढ़ चुके हैं कि संयुक्त-राज्य के संस्थापकों को लगभग इन्हीं समस्याओं से किस प्रकार उलझना पड़ा था।

जब "कन्वेन्शन" शुरू हुआ तब उसके सामने प्रस्तावों का एक विस्तृत मसविदा पेश किया गया। वे प्रस्ताव बड़े राज्यों के स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करते थे, और पीछे वे "वर्जीनिया योजना" के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके विरोध में छोटे राज्यों ने एक भिन्न योजना तैयार की, वह "न्यू जर्सी योजना" कहलायी। यह विवाद चलता रहा कि इन दोनों परस्पर-विरोधी योजनाओं में से कौन-सी अपनायी जाय।

दोनों योजनाओं में कुछ बातें तो समान थीं, जैसे कि अधिकारों की पृथक्ता। दोनों में शासन की कार्य-पालिका, विधि-निर्मात्री और न्याय-कर्त्री शाखाओं को पृथक्-पृथक् रखने की व्यवस्था थी। सबसे अधिक कठिन और विवादास्पद समस्या यह थी कि विधान मण्डल का रूप और छोटे तथा बड़े राज्यों के साथ उसका

सम्बन्ध किस प्रकार निर्धारित किया जाय। इस समस्या के कारण "कन्वेन्शन" भंग हो जाने का भय होने लगा। यह समस्या हमारे काल में संयुक्त-राष्ट्र-संघ के अनुमति-पत्र के सम्बन्ध में फिर खड़ी हो गयी है। भविष्य में भी जहां-कहीं छोटे और बड़े राज्य मिलकर किसी विवादास्पद प्रश्न पर कोई सम्मिलित काररवाई करना चाहेंगे, वहां यह समस्या खड़ी होती ही रहेगी।

"वर्जीनिया योजना" में, उच्च और निम्न दो सदनों वाले औपनिवेशिक शासन के सुपरिचित नमूने के अनुसार, दो सदनों की कांग्रेस का प्रस्ताव किया गया था। एक सदन तो जनता द्वारा निर्वाचित सदस्यों से मिलकर बनता, और दूसरे सदन का चुनाव पहले सदन के सदस्य राज्यों के विधान मण्डलों द्वारा नामज़द उम्मीदवारों में से करते। सबसे अधिक विवाद इस सुझाव पर था कि दोनों सदनों में राज्यों का प्रतिनिधित्व उनकी आबादी, उनके द्वारा दिये हुए करों अथवा इन दोनों के किसी मेल के आधार पर हो। इस सुझाव के अनुसार बड़े राज्यों को अपने बड़े होने का पूरा लाभ मिल जाता, जो उन्हें महाद्वीप की कांग्रेस में नहीं था, क्योंकि उसमें प्रत्येक राज्य का एक-एक ही मत था।

न्यू जर्सी की योजना में उस समय विद्यमान शासन में बहुत कम परिवर्तन करने की बात कही गयी थी। इस योजना में एक ही सदन की कांग्रेस का प्रस्ताव था और उसमें प्रत्येक राज्य को एक-एक ही मत का अधिकारी माना गया था, जैसा कि "आर्टिकल्स" में भी था।

कई सप्ताह तक प्रतिनिधियों में इस कठिन प्रश्न पर विवाद चलता रहा कि छोटे और बड़े राज्यों के एक ही शासन में सम्मिलित होने पर उनमें अधिकारों का उचित बंटवारा किस प्रकार हो? क्योंकि इस प्रश्न का कोई पूर्ण हल नहीं निकल रहा था, इसलिए ऐसा सन्देह होने लगा कि व्यवहार में आने योग्य संयुक्त शासन का संगठन भी हो सकता है या नहीं।

अन्त में कनेक्टिकट के विलिअम सेम्युअल जान्स्टन ने एक हल सुझाया, जो कि 'कनेक्टिकट समझौते' के नाम से विख्यात हुआ। हल यह था कि एक 'हाउस

ऑव रिप्रेज़ेण्टेटिव्ज़' अर्थात् 'प्रतिनिधियों की सभा' हो जिसमें राज्यों का प्रतिनिधित्व अपनी जन-संख्या के अनुपात से रहे, धन एकत्र करने के सव विवेयकों को आरम्भ करने का एकमात्र अधिकार इसी सभा को हो। एक दूसरा ऊपर का सदन हो। उसमें सव राज्यों का प्रतिनिधित्व एक-सा अर्थात् समान रहे। यह योजना अपना ली गयी।

यतः प्रत्येक विल को क़ानून का रूप प्राप्त करने के लिए "हाउस ऑव रिप्रेज़ेण्टेटिव्ज़" और सेनेट, दोनों में स्वीकृत होना पड़ता है, अतः व्यवहार में छोटे राज्य जिस विल को अपने लाभ का विरोधी समझें उसे वे सेनेट में उसके विरुद्ध मत देकर रोक सकते हैं। इसी प्रकार वड़े राज्य किसी विल को हाउस में अपनी मत-वहुलता के वल पर रोक सकते हैं। यह पद्धति इतनी भली-भाँति क्रियान्वित हो रही है कि सन् १७८७ में छोटे और वड़े राज्यों का जो स्वार्थ-संघर्ष आकाश में एक वड़ा काला वादल सा दिखाई पड़ रहा था, वह कठिनाई का उतना वड़ा कारण सिद्ध नहीं हुआ जितना संस्थापक लोग कल्पना करते थे। स्वार्थों के प्रादेशिक संघर्ष का रूप अव वहुधा दलीय अथवा उद्योग, कृषि, या खानों आदि के विभिन्न हितों के प्रतिनिधियों में संघर्ष का हो जाता है।

उदाहरणार्थ, आवादी के लिहाज़ से न्यू मेक्सीको और ऐरीजोना राज्य केलेफोर्निया से वहुत छोटे हैं। इन दोनों का उसके साथ वहुत समय से यह विवाद चल रहा है कि हूवर वांध वनाकर कौलौरेडो नदी का जो पानी रोका गया है उसका वंटवारा किस प्रकार किया जाय। परन्तु इस प्रश्न का निवटारा करने के लिए छोटे और वड़े राज्य कांग्रेस में अपने क्षेत्रफल के अनुसार विभक्त नहीं हुए।

संविधान का विधान यह था कि निम्न सदन के सदस्य जनता द्वारा अर्थात् मताधिकारी जनता द्वारा चुने जायं। परन्तु यह अधिकार राज्यों के ही हाथ में रह गया कि वे चाहें तो मताधिकार को कुछ सम्पत्ति के स्वामी और धार्मिक योग्यता से युक्त स्वतन्त्र गोरे लोगों तक सीमित कर दें।

वुडरो विल्सन ने अपनी पुस्तक "हिस्ट्री ऑव द अमेरिकन पीपल" अर्थात् 'अमेरिकी लोगों का इतिहास' में अन्दाज लगाया है कि आरम्भ के दिनों में ४० लाख में से केवल १ लाख २० हजार व्यक्तियों को मत देने का अधिकार रहा होगा।

अठारहवीं शताब्दी में यह पद्धति भी भयानक जनतन्त्री समझी जाती थी। अगले सौ वर्षों में मत देने का अधिकार अधिकाधिक प्रकार के लोगों को दिया जाता रहा। पश्चिम की ओर को सीमान्त का शीघ्र विस्तार होता गया और ज्यों-ज्यों नये राज्य बनते गये त्यों-त्यों सीमान्तवासी लोगों का प्रभाव देश को समानता की ओर धकेलता गया। सन् १८६० तक प्रायः सभी राज्यों ने इक्कीस वर्ष से ऊपर आयु के सब गोरे लोगों को मताधिकार दे दिया था। गृह युद्ध के पश्चात् संविधान में नीग्रो लोगों को भी मताधिकार देने का संशोधन कर दिया गया, परन्तु कई दक्षिणी राज्यों ने नीग्रो लोगों के मत देने के मार्ग में बहुत सी बाधाएँ सफलता पूर्वक खड़ी कर रक्खी हैं। सन् १९२० में संविधान में एक और संशोधन करके स्त्रियों को भी मताधिकार दे दिया गया।

सेनेट (उच्च सभा) को हाउस (प्रतिनिधि सभा) की अपेक्षा जनता से अधिक दूर रखने का विचार था। इसलिए संविधान में यह विधान रक्खा गया था कि प्रत्येक राज्य के दो सेनेटर उसके विधान-मण्डल द्वारा चुने जायें। इसका फल यह हुआ कि सेनेट साधारणतया हाउस की अपेक्षा अधिक परिवर्तन-विरोधी रहने लगी। सेनेट में बहुधा सम्पन्न व्यक्ति होते थे अथवा ऐसे व्यक्ति होते थे जिन्हें बड़े-बड़े व्यापारियों और महाजनों के साथ घनी सहानुभूति होती थी। परन्तु जनतन्त्र को अधिकाधिक जन-प्रतिनिधिक बनाने का दबाव बढ़ता गया। परिवर्तन-विरोधियों के विरोधी राजनीतिक लोगों ने भी इस परिवर्तन को बढ़ावा दिया। फल यह हुआ कि सन् १९१३ में फिर संविधान का संशोधन किया गया और राज्यों की जनता को अपने सेनेटर सीधे चुन लेने का अधिकार दे दिया गया।

सन् १९१३ से सेनेटरों की स्थिति, अपने राज्य के शासन का प्रतिनिधित्व करने के लिए वाशिंगटन में भेजे गये राजदूत या प्रतिनिधि की न रहकर, बहुत कुछ ऐसे कांग्रेस-सदस्य जैसी हो गयी है जिसकी पद-मर्यादा बढ़ा दी गयी हो।

हाल के वर्षों में सेनेट प्रायः हाउस की अपेक्षा कम परिवर्तन-विरोधी सिद्ध हुई है। बहुत से निरीक्षकों को तो ऐसा लगता है कि हाउस के सदस्य प्रभावशाली शक्तियों के दवाव में आकर जिन अविचार तथा अदूरदर्शितापूर्ण विधेयकों या प्रस्तावों के पक्ष में मत दे बैठते हैं उन्हें अस्वीकृत कर देने की आशा हाउस सेनेट से करता है। जब कभी मतदाता अधीर और सिरफिरे हो जाते हैं तब बहुधा सेनेट साहस करके जनता की चिल्लाहट का विरोध करती है और उसे आशा रहती है कि जनता की भावना बदल जायगी। सेनेटर अधिक स्वतन्त्र वृत्ति से काम करते हैं, क्योंकि उनका कार्य-काल छः वर्ष का होता है, जब कि उनकी तुलना में 'रिप्रेज़ेण्टेटिवों' को प्रति दो वर्ष पीछे मतदाताओं का सामना करना पड़ जाता है। 'मितव्ययिता' का लेखा कायम कर देने की धुन में हाउस बहुधा शासन के व्ययों में इतनी कटौती कर डालता है कि वे व्यवहार्य स्तर से भी नीचे चले जाते हैं। परन्तु कांग्रेस के सदस्यों को भरोसा रहता है कि शासन चलाने के लिए जितने धन की आवश्यकता होगी उतना सेनेटर फिर पास कर देंगे।

संविधान का मूल विधान यह था कि राष्ट्रपति को एक 'इलेक्टोरल कालिज' अर्थात् प्रत्येक राज्य के विशिष्ट व्यक्तियों से मिलकर संघटित निर्वाचक-मण्डल द्वारा चुना जाय—'इलेक्टोरल कालिज' का चुनाव प्रत्येक राज्य जिस प्रकार चाहे उस प्रकार कर ले; चाहे विधान-मण्डल द्वारा, चाहे जनता द्वारा और चाहे गवर्नर द्वारा। ऐसा कोई इरादा नहीं था कि राष्ट्रपति का चुनाव जनता करे। निर्वाचकों का चुनाव भी, जब तक राज्य ही वैसा निर्णय न करे, जनता द्वारा करवाने का इरादा नहीं था।

परन्तु इस मामले में लोकतन्त्रीय भावना की तीव्रता ने चुपचाप संविधान का अर्थ ही बदल डाला। कोई संशोधन तक स्वीकृत करने की परवाह नहीं की। प्रत्येक राजनीतिक पार्टी निर्वाचक चुनने के लिए अपने उम्मीदवार खड़े करती है, और वे निर्वाचक राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के चुनाव में अपनी ही पार्टी के उम्मीदवारों को मत देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं। निर्वाचकों को मत देने की स्वतन्त्रता नहीं होती। पार्टी के जिन निठल्लुओं को राष्ट्रपति चुनने की कोई खास तमीज नहीं होती वे भी बहुधा निर्वाचक बन जाने का अभिमान करने लगते हैं।

सन् १९४८ में आशंका हो गयी थी कि दक्षिणी राज्यों के कुछ निर्वाचक डिमोक्रेट उम्मीदवार बनकर भी, राष्ट्रपति पद के डिमोक्रेट उम्मीदवार ट्रूमन के विरुद्ध मत देकर, इस परम्परागत पद्धति को बिगाड़ न दें। ट्रूमन तो चुने गये, परन्तु सार्वजनिक अनवस्था और जनता की इच्छा की सम्भावित विफलता के भयों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट हो गया।

"इलेक्टोरल कालिज" अथवा निर्वाचक-मण्डल की एक और विशेषता, जिसका संविधान में विधान नहीं है, यह प्रथा है कि प्रत्येक राज्य में सब निर्वाचक उसी पार्टी के चुन दिये जाते हैं जो राज्य के चुनावों में जीतती है। पराजित पार्टी में से एक भी निर्वाचक नहीं लिया जाता, भले ही उसे जनता ने ४९ प्रतिशत मत क्यों न दिये हों। इसका परिणाम यह होता है कि निर्वाचकों का मत जनता के मत से बहुत ही भिन्न बन जाता है। शायद विजेता के पक्ष में जनता का मत ५५ प्रतिशत ही हो, परन्तु निर्वाचकों का मत उसे ८० या ९० प्रतिशत तक मिल जाता है। यह परिणाम ऊपर से देखने में 'सर्वसम्मत' दिखाई देता है और राष्ट्रपति की आवाज़ का बल इससे बहुत बढ़ जाता है, विशेषतः अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में।

परन्तु इसमें इस बात की भी सम्भावना है कि कोई उम्मीदवार कुछ राज्यों में केन्द्रित बहुमत के वोटों को प्राप्त कर ले, जब दूसरा उम्मीदवार एलेक्टोरल कलिजों से प्राप्त नाम मात्र के बहुमत के बल पर राष्ट्रपति का चुनाव जीत ले। उदाहरणार्थ सन् १८८८ में जनता का बहुमत ग्रोवर क्लीवलैण्ड के पक्ष में था, परन्तु राष्ट्रपति चुने गये थे बेन्जामिन हैरिसन। यह सम्भावना इस पद्धति की एक विशेष बुराई मानी जाती है, परन्तु इससे "एक दलीय" राज्यों का तुलनात्मक महत्व अवश्य समाप्त हो जाता है। प्रश्न किया जा सकता है कि जो राज्य द्वि-दलीय राजनीतिक संघर्ष में विशेष उत्साह नहीं दिखाता उसे भी राष्ट्रपति के चुनाव में उतना ही भाग मिलना चाहिए जितना कि स्वस्थ-द्वि-दलीय पद्धति पर चलने का अभिमान करने वाले राज्य को।

अमेरिकी लोकमत किसी ऐसी तर्क-सम्मत विधि को अपनाने का पक्षपाती प्रतीत होता है जिससे जनता का बहुमत क्रियान्वित होने का निश्चय हो जाय,

परन्तु जिसमें यह भय न हो कि कोई निर्वाचक जब चाहे तब अपने संवैधानिक अधिकार का दावा पेश करके अपनी इच्छानुसार मत देने लगे। परन्तु जबतक जनता की इच्छा विफल होने का कोई बड़ा प्रदर्शन नहीं हो जाता तबतक संविधान में इस प्रकार का संशोधन करने के प्रति जनता की उदासीन वृत्ति शायद चलती ही रहेगी।

शासन की किसी भी शाखा को उच्छृंखल न होने देने के लिए संविधान में सावधानतापूर्वक "नियन्त्रणों और सन्तुलनों की पद्धति" का समावेश किया गया है।

उदाहरणार्थ, कांग्रेस द्वारा स्वीकृत किसी बिल को राष्ट्रपति अपने 'वीटो' या निषेधाधिकार के द्वारा अस्वीकृत कर सकता है। तब वह विधेयक पुनः कांग्रेस के सामने जाता है और वह तबतक क़ानून का रूप धारण नहीं कर सकता जब तक दोनों सदन उसे दो-तिहाई के बहुमत से पुनः पास न कर दें।

कांग्रेस भी राष्ट्रपति के कई कामों का—प्रधान सेनापति के रूप में उनके संवैधानिक अधिकार के प्रयोग तक का—धन के व्यय की अनुमति देने से इनकार करके 'वीटो' या निषेध कर सकती है।

राष्ट्रपति द्वारा की गयी किसी सन्धि को सेनेट 'वीटो' अर्थात् निषेधाधिकार द्वारा निषिद्ध कर सकती है। शासन के सब महत्वपूर्ण पदाधिकारियों और संघ के सब न्यायाधीशों को नियुक्त तो राष्ट्रपति करता है, परन्तु उन नियुक्तियों के सेनेट द्वारा सन्तुष्ट होने की शर्त पर।

संविधान में यह विधान नहीं है कि सुप्रीम कोर्ट अर्थात् सर्वोच्च न्यायालय कांग्रेस द्वारा स्वीकृत कानूनों को असंवैधानिक बतलाकर निषिद्ध ठहरा सके। परन्तु घटनाओं की परम्परा ने न्यायालय को यह अधिकार अपने हाथ में लेने दिया है।

राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय के सदस्य और कार्यपालिका तथा न्यायपालिका शाखाओं के अन्य महत्वपूर्ण अधिकारी, 'इम्पीचमेण्ट' अर्थात् अभियोगारोपण द्वारा अपने पदों से पृथक किये जा सकते हैं। 'इम्पीचमेण्ट' की काररवाई में इस्तगासा

हाउस दायर करता है और न्यायालय का कार्य सेनेट करती है। राष्ट्रपति जॉन्सन सेनेट में केवल एक मत के कारण 'इम्पीचमेण्ट' से बच गये थे। सेनेट ने अबतक केवल चार मामलों में 'इम्पीचमेण्ट' के पक्ष में मत दिया है और वे चारों मामले संघीय न्यायालय के न्यायाधीशों के थे।

नियन्त्रणों और सन्तुलनों का सिद्धान्त, शासन की तीनों शाखाओं के अधिकारों की पृथक्ता के सिद्धान्त को काट देता है। परन्तु ये दोनों मिलकर व्यावहारिक समझौते का ऐसा मार्ग निकाल देते हैं जो अमेरिकी बुद्धि को खूब पसन्द आ जाता है। विधि-निर्माण, कार्य-पालन और न्याय-पालन के अधिकारों को एक दूसरे से सर्वथा पृथक् कर देना असम्भव है। परन्तु साथ ही यह देखना भी आवश्यक है कि उनमें से कोई से दो किसी भावी तानाशाह या गुप्त पुलिस-राज्य के हाथ में न जाने पावे। इन शाखाओं की आंशिक पृथक्ता और नियन्त्रणों और संतुलनों की योजना, देश को उस आपत्ति से बचाने के लिए की गयी थी जिसे आज हम 'एकवर्गाधिकारवाद' के नाम से पुकारते हैं, और अब वह उसमें सफल भी हुई है।

जिन लोगों ने संविधान की रचना की थी उन्होंने संघीय शासन के अत्याचार-पूर्ण कार्यों से नागरिकों की रक्षा करने के लिए किसी आम 'बिल ऑव राइट्स' अथवा अधिकार-सूची का विधान नहीं किया था। निश्चय ही उसमें जहां तहां ऐसे वाक्यांश थे जो उन कुछेक अन्यायों को रोकते थे जो भूत-काल में लोगों को ब्रिटिश राजा और पार्लमेण्ट के हाथों सहने पड़े थे। संविधान के प्रथम अनुच्छेद में शासन को 'बिल ऑव अटेण्डर' स्वीकृत करने पर निषेध लगा दिया है; अर्थात् उसे नागरिक अधिकारों के अपहरण का ऐसा कोई विधेयक बनाने से वर्जित कर दिया गया था जिसके द्वारा किसी व्यक्ति या उसके परिवार को बदला लेने की भावना से दण्ड देने के लिए चुना जा सके। 'एक्स-पोस्ट-फैक्टो' क़ानून अर्थात् ऐसे क़ानून बनाने का भी निषेध कर दिया गया था जिनका प्रभाव क़ानून बनने से पूर्व के कार्यों पर पड़ता हो, जिससे जो कार्य किये जाने के समय अपराध नहीं था। वह पीछे उस क़ानून द्वारा अपराध न ठहराया जा सके।

"हेबियस कार्पस" (बन्दी प्रत्यक्षीकरण) का अर्थात् बन्दी बनाये हुए व्यक्ति को न्यायालय में उपस्थित करवाने का अधिकार सुरक्षित रखा गया था, जिससे पुलिस किसी भी व्यक्ति को मनमाने ढंग से बन्दी न बना सके, जैसा रोम आदि बहुत से एकतन्त्राधिकारी देशों में होता देख चुके हैं। तृतीय अनुच्छेद में संघीय अपराधों के मुकदमों की सुनवाई जूरी द्वारा होना आवश्यक ठहराया गया है। आजकल कम्युनिस्ट लोग 'राजद्रोह' के अपराध पर किसी को भी निष्कासित अथवा 'पर्जिङ्ग' कर राजनीतिक शुद्धि की प्रक्रिया करते हैं उसे करने के लिए उन दिनों राजा लोग इस (राजद्रोह के अभियोग) का बहुत दुरुपयोग किया करते थे। उस दुरुपयोग को सावधानता पूर्वक रोक दिया गया था।

परन्तु जब संविधान स्वीकृति के लिए राज्यों के पास भेजा गया तब विरोधियों ने इसकी आलोचना यह कहकर की कि इसमें कोई पूरा "बिल ऑव राइट्स" अर्थात् अधिकार-सूची सम्मिलित नहीं है। कुछ राज्यों ने अपनी स्वीकृति इसी शर्त पर दी कि नयी कांग्रेस पहला काम यह करे कि संविधान में इस प्रकार की सूची जोड़ने के लिए संशोधन का काम हाथ में ले।

संविधान में प्रथम दस संशोधन उसमें अधिकारों की सूची जोड़ने के रूप में किये हो गये हैं। विस्तार की कई बातों में यह संयुक्त-राष्ट्र संघ की सभा द्वारा अपनायी गयी "मानव अधिकारों की घोषणा" से भिन्न है। अठारहवीं शताब्दि में जिस प्रकार के अन्याय अंग्रेजों ने अपनी सरकारों से सहे थे या जिसका उनके पुरखों ने दीर्घकालीन तथा कटुतापूर्ण संघर्ष के बाद अन्त कर दिया था, उसी की पृष्ठभूमि पर अमेरिकनों को उनके संविधान द्वारा अधिकार प्राप्त हुए थे। परन्तु हमारे समय में हिटलर और कम्युनिस्टों ने अन्य अन्यायों का आविष्कार कर लिया या प्राचीन तथा असभ्य काल के अन्यायों को पुनरुज्जीवित कर लिया है। सिद्धान्त अब भी वही है।

संविधान की मुख्य विशेषताएं यही थीं। इन्होंने एक ऐसा मजबूत ढांचा तैयार कर दिया है जिसपर स्वयंप्रभु जनता जो भी कुछ बनाना चाहे, अमेरिकी जनता की राजनीतिक शक्तियां वही बना सकती हैं। कुछ विशेषताएं तो; जैसे

कि कांग्रेस का निर्वाचन और उसके अधिकार, आज तक बिना किसी मौलिक परिवर्तन के वैसे ही चले आ रहे हैं। अन्यों का, जैसे निर्वाचक मण्डल के और सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारों का, रूपान्तर हो गया है। परन्तु संविधान प्रारम्भ में जो काम करने के लिए बनाया गया था—अर्थात् अमेरिकी जनता की स्वयंप्रभुता की रक्षा करते हुए उसकी आधीनता में एक ऐसा दृढ़ शासन स्थापित करने के लिए जो कि अमेरिकी जनता के नाम पर एक राष्ट्र की भांति कार्य कर सके—उसे वह निरन्तर करता चला जा रहा है।

अध्याय २

राजनीतिक दल

अमेरिकी जनता स्पष्ट रूप से दो पार्टियों की पद्धति पसन्द करती है। गत दो सौ वर्षों में जब कभी उसने देखा कि हमारे यहां केवल एक पार्टी रह गयी है तभी उसने उसे दो खण्डों में विभक्त कर दिया या कोई नयी पार्टी खड़ी कर दी और जब उसने देखा कि पार्टियां तीन हो गयी हैं तब उसने उनमें से एक का निर्वाचन में अन्त कर दिया।

औपनिवेशिक काल में ह्विग और टोरी, दो अत्यन्त विभिन्न राजनीतिक प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि थे—इतनी विभिन्न प्रवृत्तियों के कि उनमें विरोध के कारण सन् १७७५ में युद्ध छिड़ गया था। इस समय दोनों पार्टियां प्रायः एक दूसरी से मिलती जुलती हैं, यहां तक कि कभी-कभी उनकी चर्चा होने पर "जैसे नागनाथ वैसे सांपनाथ" कह दिया जाता है। प्रति दो वर्ष पीछे वे परस्पर सहमति से एक ऐसी लड़ाई लड़ती हैं कि उसमें दोनों पक्ष इतने सुरक्षित रहते हैं कि पराजित पक्ष की भी भारी क्षति नहीं होती।

अमेरिकी पार्टियों की विशेषताएं, देश के इतिहास और परिस्थितियों का परिणाम हैं। वे राजनीतिक नेताओं की किसी योजना का फल नहीं है। वास्तव में, अमेरिकी संविधान की एक विचित्र विशेषता यह है कि उसमें पार्टियों का ज़िक्र तक नहीं किया गया।

क्रान्ति से पहले पार्टियां आधुनिक रूप में संगठित नहीं थीं। परन्तु जो लोग साधारणतया ब्रिटिश राजा और उसके द्वारा नियुक्त गवर्नरों के पक्ष में रहते थे वे टोरी

कहलाते थे और दूसरे, जिनका झुकाव औपनिवेशिक विधान मण्डलों और स्वशासन के सिद्धान्तों के पक्ष में होता था वे प्राय: ह्विग कहलाते थे। टोरियों और ह्विगों के पारस्परिक संघर्ष का अन्त युद्ध के द्वारा हुआ था। ह्विग अथवा 'देशभक्त' न केवल युद्ध में जीत गये थे, वल्कि उन्होंने विरोधी पक्ष को सर्वथा समाप्त भी कर दिया था। टोरी देश से निकाल दिये गये और वे भाग कर कैनेडा अथवा वहामाज चले गये थे।

यद्यपि आज भी संयुक्त राज्य अमेरिका में परिवर्तन विरोधियों को कभी-कभी 'टोरी' कह दिया जाता है, परन्तु क्रान्ति के पश्चात् इस देश में इंगलैण्ड के राजा को पुन: प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न करनेवाली कोई पार्टी नहीं रही।

इसलिए अन्य सव क्रान्तिकारी देशों की भांति, संयुक्त राज्य अमेरिका की राजनीति का आरम्भ भी एकदलीय राजनीतिक प्रणाली से हुआ था। जार्ज वाशिंगटन और अन्य अनेक क्रान्तिकारी नेता चाहते थे कि वह वैसा ही रहे। वाशिंगटन ने अपने 'विदाई भाषण' में जनता को, पार्टियों के, "विशेषत: उन्हें प्रादेशिक भेदों के आधार पर स्थापित करने के" विरुद्ध सचेत किया था। उसने "साधारणतया पार्टी की भावना के हानिकारक परिणामों के विरुद्ध भी......अति गम्भीर" चेतावनी दी थी। उससे "कभी-कभी दंगा और विद्रोह तक भड़क उठते हैं।"

वाशिंगटन को ह्विगों और टोरियों के युद्ध की याद थी। उसने उस परिस्थिति की कल्पना कर ली थी जो देश के विविध भागों में पार्टियों के संगठित हो जाने पर उत्पन्न होती और जिसमें वे प्रतिद्वन्दी शासन स्थापित कर सेनाएं खड़ी कर लेतीं। पीछे सन् १८६१ में सचमुच ऐसा हुआ भी।

जेम्स मेडिसन ने "फेडरलिस्ट पेपर्स" में संविधान को स्वीकृति कर लेने की वकालत करते हुए नवीन संघीय शासन का एक लाभ यह भी वतलाया था कि उसकी रचना "पार्टी-वाजी का झगड़ा मिटाने और उसे नियन्त्रित करने के लिए ही की गयी है।

उदाहरणार्थ, राष्ट्रपति के चुनाव में निर्वाचक-मण्डल की कल्पना विशेष रूप से पार्टी-वाजी की राजनीति से वचने के लिए की गयी थी। वहुत से

संस्थापक राष्ट्रपति को एक प्रकार का निर्वाचित राजा मानते थे, जो आज के फ्रान्स के राष्ट्रपति या इंगलैंड के राजा की भाँति सब पार्टियों से पृथक् रहता है। संविधान की प्रथम रचना में यह निर्देश था कि प्रत्येक राज्य के निर्वाचक एक स्थान पर एकत्र होंगे और प्रत्येक निर्वाचक, अपनी प्रथम और द्वितीय पसन्द प्रकट किये बिना, दो व्यक्तियों को मत देगा। इस प्रकार जिस व्यक्ति को सबसे अधिक मत मिलेंगे वह राष्ट्रपति हो जायगा और उसके बाद वाला उपराष्ट्रपति। आशा थी कि इस पद्धति में इस बात की गारण्टी रहेगी कि राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति वही व्यक्ति बन सकेंगे जो प्रमुख लोगों की दृष्टि में नम्बर एक और नम्बर दो होंगे।

सन् १७८७ में भी संविधान लिखा जा चुकने पर लोगों में इस प्रश्न पर मतभेद था कि उसे स्वीकृति किया जाय या नहीं, यद्यपि तबतक वे निश्चित राजनीतिक पार्टियों में संगठित नहीं हुए थे। मोटे तौर पर व्यापारी, महाजन और परिवर्तन-विरोधी भूमिपति तो संविधान के पक्षपाती थे। उनका नेता ऐलेग्जेण्डर हैमिल्टन था। श्रमिक तथा किसान, विशेपतः स्थानीय राजनीतिक नेता, राज्यीय तथा स्थानीय स्वशासन का अधिकार छिन जाने के भय से, उसका विरोध कर रहे थे। संविधान बहुत थोड़े बहुमत से स्वीकृत हो सका था, वह भी केवल इस कारण कि मताधिकार जनता के अति न्यून प्रतिशत को, मुख्यतया जमीन-जायदाद के मालिकों को, प्राप्त था।

परन्तु परस्पर एक दूसरे का विरोध करने वाली पार्टियों का संगठन प्रायः वाशिंगटन के द्वितीय कार्य-काल की समाप्ति तक नहीं हुआ। इसके दो कारण थे। पहला वाशिंगटन की लोकप्रियता और दूसरा व्यापार तथा समृद्धि पर संविधान का अनुकूल प्रभाव। उक्त काल के पश्चात्, लोग इस प्रश्न पर परस्पर विरोधी राजनीतिक संगठनों में विभक्त होने लगे कि नया राष्ट्रपति कौन हो। एक पक्ष तो व्यापार, पूंजी और नगरों के मध्य-वर्ग के प्रतिनिधियों, 'फेडरलिस्टों' (अर्थात् संघ-पक्षपातियों) का था, जिसका सर्वाधिक प्रभाव उत्तर-पूर्वी राज्यों में था; और दूसरा पक्ष "रिपब्लिकनों" का था, जिनका नेता टामस जेफर्सन था। वे मुख्यतया

ग्रामीण जनता के—वर्जीनिया के भद्र-जनों से लेकर टेनसी के अग्रगामियों तक के—प्रतिनिधि थे। नगरों के श्रमिक भी उन्हीं के साथ थे।

जब वाशिंगटन ने यह विभाजन होता देखा तब वह बहुत दुःखी हुआ। परन्तु उसकी पुकार बेकार रही, क्योंकि स्वतन्त्र लोग आपसी झगड़ों को सुलझाने का मार्ग स्वयं ही तलाश किया करते हैं।

इस प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका का एकदलीय क्रान्तिकारी शासन शीघ्र ही बंट कर द्विदलीय पद्धति में परिणत हो गया।

सन् १७९६ में जीत 'फेडरलिस्टों' की हुई और उन्होंने जांन ऐडम्स को राष्ट्रपति चुना। सन् १८०० तक दोनों पार्टियां अच्छी तरह पृथक् हो चुकी थीं और तब राष्ट्रपति तथा उपराष्ट्रपति के पदों के लिए दोनों ने अपने-अपने उम्मीदवार पृथक्-पृथक् खड़े किए थे। इस बार जीत रिपब्लिकनों की हुई और उनके सभी निर्वाचकों ने अपना मत टामस जेफर्सन और आरौनबर्र के पक्ष में दिया। परन्तु चूंकि तब निर्वाचक अपने दो मतों में से कौन प्रथम और कौन द्वितीय यह प्रकट नहीं कर सकते थे, इसलिए दोनों विजेताओं को बराबर मत प्राप्त हो गये। संविधान के नियमानुसार इन दोनों में से एक का चुनाव 'हाउस' ने किया और उसने जेफर्सन को राष्ट्रपति चुना। परन्तु जेफर्सन की जीत 'हाउस' में पैंतीसवीं बार जाकर मत लेने पर हुई, जिससे यह प्रकट हो गया कि हारती हुई पार्टी भी 'हाउस' में मतों का जोड़-तोड़ करके जीतती हुई पार्टी की इच्छा को सुगमता से विफल कर सकती है।

इस उपहासास्पद परिणाम के कारण ही संविधान में बारहवां संशोधन किया गया, जिसके अनुसार अब निर्वाचक, राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति को अपना मत पृथक्-पृथक् देते हैं और जीते हुए उम्मीदवारों में फैसला कांग्रेस को नहीं करना पड़ता। परन्तु इस संशोधन से निर्वाचक-मण्डल बनाने का मूल प्रयोजन नष्ट हो गया। इसके द्वारा यह तथ्य मान लिया गया है कि पार्टियां विद्यमान हैं और निर्वाचक निरी रबर की मुहरें हैं जो कि पार्टियों द्वारा पहले से निश्चित उम्मीदवारों को ही मत देने के लिये बाधित हैं।

यहां यह समझा देना उचित होगा कि जेफर्सन की पार्टी जो आज की डिमोक्रेटिक पार्टी की पूर्ववर्ती मानी जाती है, आरम्भ में रिपब्लिकन पार्टी क्यों कहलायी थी।

सन् १८०० में जेफर्सनियनों ने अपने आपको "रिपब्लिकन" केवल इस कारण कहा था कि वे राजाओं के विरोधी थे। वे फ्रेंच क्रान्ति के भी पक्षपाती थे। उसे वे अमेरिकी क्रान्ति का अच्छा अनुकरण मानते थे। उनके विपरीत, 'फेडरलिस्ट' कुलीन फ्रेंचों को फांसी दिये जाने से और उनकी हत्याओं से क्षुब्ध हो उठे थे। फ्रांस के राजा से भी उनकी खासी सहानुभूति थी। उन्होंने जेफर्सनियनों पर 'डेमोक्रेट' अर्थात् फ्रेंच क्रान्ति का प्रेमी होने का आक्षेप किया। उस समय 'डेमोक्रेसी' शब्द का अर्थ था 'भीड़ का राज', और उसका प्रयोग उसी प्रकार किया जाता था जिस प्रकार हम "रेडिकलिज्म" शब्द का प्रयोग करते हैं, जिसका अर्थ है 'चरम परिवर्तन तक का पक्षपात।' पीछे, नेपोलियन के देहान्त के पश्चात्, इस शब्द की तीव्र भावना बहुत कुछ नष्ट हो गयी। परन्तु जब जेफर्सन राष्ट्रपति था तब वह अपने आपको उसी प्रकार 'डिमोक्रेट' नहीं कहता था जिस प्रकार आज के युग में फ्रेंकलिन रूज़वेल्ट "रेडिकल" कहलाना पसन्द न करता।

'फेडरलिस्टों' ने जो फेडरल अर्थात् संघीय शासन स्थापित किया था उसकी सफ़लता के कारण ही वे शीघ्र नष्ट हो गये। एक बार संघ की स्थापना हो जाने पर, देश का विस्तार अति शीघ्र होने लगा। लोग अपालेचियन पर्वतमालाओं में होकर ओहायो और टेनिसी घाटियों में उमड़ पड़ने लगे, और पश्चिमी देश के मतदाताओं की संख्या उत्तर-पूर्वी नगरों से कहीं अधिक हो गयी।

सन् १८०१ में राष्ट्रपति का पद ग्रहण करने के पश्चात् जेफर्सन ने भी अमेरिका के विस्तार की लहर को तीव्र करने में योग दिया। उसने बलशाली संघीय शासन के विरुद्ध अपनी पहली आपत्तियों को भुला दिया और साहस करके मिसिसिपी नदी की समूची पश्चिमवर्ती घाटी लूइज़याना को खरीद डाला।

'फेडरलिस्ट' मुकाबला करने लायक नहीं रहे। उनकी पार्टी मृतप्राय हो गयी और सन् १८२० में वे अपना उम्मीदवार तक खड़ा नहीं कर सके। देश एक बार

पुनः एकदलीय वन गया। इस समय को 'सद्भावना' का युग कहा जाता है, क्योंकि कुछ वर्ष तक विरोधी पार्टी रही ही नहीं थी। परन्तु धीरे-धीरे रिपब्लिकन नेताओं में ही मतभेद उत्पन्न होने लगे और शीघ्र ही द्विदलीय सिद्धान्त पुनः लौट आया। रिपब्लिकन दो गुटों में बँट गये। एक गुट का नेता जौनक्विन्सी ऐडम्स था। वह 'नेशनल रिपब्लिकन' कहलाता था और अधिक पुराने विचारों का पक्षपाती था। ऐडम्स सन् १८२४ में राष्ट्रपति चुना गया। परन्तु सन् १८२८ में दूसरा गुट, जो कि अपने आपको 'डिमोक्रटिक-रिपब्लिकन' कहता था, जीत गया और उसका प्रतिनिधि ऐण्डरू जैक्सन राष्ट्रपति हो गया।

सन् १८३२ में नेशनल-रिपब्लिकनों के उत्तराधिकारी ह्विग कहने लगे। इन ह्विगों का अठारहवीं शताब्दी के क्रान्तिकारी ह्विगों या 'देश भक्तों' या इंगलैण्ड के ह्विगों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। ये परिवर्तन- विरोधी थे और किसी ऐसे नाम की तलाश में थे जिसके सहारे मत बटोरे जा सकें। इस काल में 'फेडरलिस्ट-नेशनल रिपब्लिकन ह्विग' पार्टी पीछे रह गयी, क्योंकि सीमान्त के राज्यों की संख्या बढ़ती चली गयी और वे अपना मत जैक्सन-छाप राजनीति के पक्ष में देते थे परन्तु ह्विग दो सैनिक नेता चुनने में सफल हो गये, सन् १८४० में विलियम-हेनरी हैरिसन को और सन् १८४८ में जैक़ारी टेलर को।

सन् १८५० के पश्चात् दासता का प्रश्न अति तीव्र हो गया। ह्विगों और डिमोक्रेट रिपब्लिकनों, जो अब डिमोक्रेट कहलाने लगे थे, दोनों की पार्टियों में दासता के प्रश्न पर आन्तरिक मतभेद हो गया। उत्तरी और दक्षिणी डिमोक्रेटों में भी परस्पर विरोध हो गया। ह्विग पार्टी बिखर गयी और दासता के विरोध के आधार पर एक नयी पार्टी बनी, जिसने अपना नाम 'रिपब्लिकन पार्टी' रखा। उसने अपना उम्मीदवार अब्राहम लिंकन को बनाया। सन् १८६० में वह राष्ट्रपति चुना गया।

वाशिंगटन की चेतावनी के अनुसार सन् १८६० की दोनों पार्टियां "प्रदेशिक भेदों के आधार पर संगठित थीं" और भावना में इतना बही जा रही थीं कि

उनका मतभेद भड़कीला सिद्ध हो गया। उच्च तट-कर के पक्षपाती उत्तर-पूर्वी व्यवसायियों और निम्न तट-कर के समर्थक दक्षिणी कपास उत्पादकों में, दासता के भावना पूर्ण प्रश्न के अतिरिक्त, पुराना विरोध भी बहुत समय से चला आ रहा था। इन दोनों विरोधों ने राष्ट्र को भी इन्हीं भौगोलिक प्रदेशों में बांट दिया। इस कारण विरोधी पक्ष, गृह-युद्ध के लिए अपना-अपना पृथक् संगठन करने लगे, और लिंकन के निर्वाचित होते ही गृह-युद्ध छिड़ गया।

गृह-युद्ध के पश्चात् अमेरिकी लोग उस प्रकार फिर कभी विभक्त नहीं हुए। उनके प्रादेशिक विवाद इतने तीव्र नहीं हुए कि वे अन्य विवाद उनकी तुलना में गौण हो जायं, जिनके कारण जनता भिन्न प्रकार विभक्त होती है—जैसे कि श्रमिकों के कानून, राष्ट्रीय व्यय, टैक्स, सामाजिक सुरक्षा, अथवा ट्रस्टों के विरोध आदि के विवाद। सारांश यह है कि अमीरों और गरीबों, नगरनिवासियों और किसानों के विवाद, उत्तर और दक्षिण अथवा उत्तर-पूर्व और पश्चिम के विवादों की अपेक्षा अधिक प्रबल रहते आये हैं। इन विवादों के कारण गृह-युद्ध की पृष्ठ-भूमि नहीं बनने पायी।

संयुक्त राज्य अमेरिका क्रान्तियों से भी सुरक्षित रहा है। सन् १७७५ के पश्चात् आन्तरिक क्रान्ति के लिए वैसी पृष्ठ-भूमि नहीं बनी जैसी कि रूस में केरेन्सकी वाली क्रान्ति अथवा जर्मनी और इटली में हिटलर और मुसोलीनी वाली क्रान्तियों के लिए बन गयी थी। संयुक्त राज्य अमेरिका में भीड़ ने कभी जो दंगे किये भी वे देश की विशालता के कारण और देश के बड़े भाग में न फैलने के कारण स्वयं ठण्डे पड़ गये। शासन को उलट देने वाले वैसे अभियान के कभी वाशिंगटन पर हो जाने की कल्पना तक करना कठिन है जैसा कि मुसोलीनी ने रोम पर किया था और जिससे इटली का शासन उलट गया था।

इन भाग्यपूर्ण परिस्थितियों से यह भली प्रकार प्रकट हो जाता है कि आज की रिपब्लिकन और डिमोक्रेटिक पार्टियां किस प्रकार बनीं। लगभग सौ वर्ष तक द्विदलीय पद्धति के अनेक रूपों की परीक्षा करने के पश्चात् अमेरिकी जनता पार्टियों

के ऐसे मेल पर पहुंच गयी है जिसमें अनेक उलझनों से भरे राजनीतिक झगड़े तो चलते रहते हैं, परन्तु गृह-युद्ध तथा विद्रोह छिड़ जाने का भय नहीं रहता।

संयुक्त राज्य अमेरिका में जो द्विदलीय पद्धति आजकल प्रचलित है उसका निर्माण किसी योजना की अपेक्षा स्वतःप्रेरणा से अधिक हुआ है। इसके द्वारा बहुमत का ऐसा शासन संगठित हो जाता है जिस पर नियन्त्रण एक विजेता पार्टी का रहता है। अधिकतर समय, राष्ट्रपति, सेनेट और 'हाउस ऑव रिप्रेजेण्टेटिव्ज' (प्रतिनिधियों की सभा), तीनों पर एक ही पार्टी का नियन्त्रण रहता है। साथ ही, अल्पमत पार्टी इतनी बुरी तरह कभी पराजित नहीं होती कि वह आशा का सर्वथा परित्याग कर बैठे।

यह पद्धति, एक ओर तो युरोप में प्रचलित बहुदलीय शासनों से और दूसरी ओर ब्रिटेन की द्विदलीय पद्धति से, सर्वथा भिन्न है। अमेरिकी पद्धति का अपना ही विशिष्ट युक्ति क्रम है, जो किसी युरोपियन की समझ में तो आता ही नहीं, अंग्रेज की समझ में भी बहुत नहीं आता।

युरोपियन लोकतन्त्र के किसी भी नमूने में अनेक पार्टियां होती हैं और उनमें से प्रत्येक के कुछ स्पष्ट निश्चित सिद्धान्त रहते हैं। एक पार्टी क्रिश्चियन-सोशलिस्ट और दूसरी कैथोलिक कन्जर्वेटिव हो सकती है। इतिहास की विचित्र गति के कारण हो सकता है कि जो पार्टी अपने को रेडिकल-सोशलिस्ट कहती हो वह, सम्भव है कि, मध्य वर्ग के व्यापारियों की प्रतिनिधि हो। और, कम्युनिस्ट तो वहां सदा रहते ही हैं। उनका अनुशासन सर्वोत्तम है और, वे उसी का साथ देने को तैयार हो जाते हैं जो उनके बहकावे में आकर उनकी स्वार्थ-सिद्धि का साधन बनने की हामी भर ले।

बहुदलीय पद्धति की कल्पना इस आधार पर की गयी है कि प्रत्येक पार्टी को किसी सिद्धान्त का समर्थक होना चाहिए, जिससे कि जो भी कोई उस सिद्धान्त के पक्षपाती हों वे उस पार्टी में सम्मिलित हो जायं और आगे बढ़ने में उसकी सहायता करें। आधुनिक जीवन अनेक उलझनों से भरा हुआ है, और राजनीतिक, आर्थिक

तथा सामाजिक सिद्धान्त भी बहुत से हैं, इसलिए पार्टियों की अनेक शाखा-प्रशाखायें हो सकती हैं और होती भी हैं।

परन्तु संसदीय पद्धति के जनतन्त्रीय शासन को अपनी संसद में बहुमत का समर्थन प्राप्त करना पड़ता है। जब कभी प्रधान मन्त्री और उसके मन्त्रिमण्डल द्वारा प्रस्तुत कोई महत्वपूर्ण बिल स्वीकृत नहीं हो पाता तभी शासन का पतन हो जाता है। तब या तो प्रधान मन्त्री और उसके मन्त्रिमण्डल को पदत्याग कर देना पड़ता है और या, यदि उसके संविधान में वैसी व्यवस्था हो तो, वे संसद को भंग करके नया निर्वाचन करवा सकते हैं।

इसलिए युरोप के लोकतन्त्रीय देशों में शासन का संगठन करने के लिए कई पार्टियों को परस्पर मेल करना पड़ता है, जिससे कि उनका बहुमत हो जाय। इनमें से प्रत्येक पार्टी अपना 'दूध शुद्ध' होने का दावा करती है, परन्तु यदि वह संसदीय जनतन्त्र की समाप्ति करके तानाशाही की स्थापना न कर दे तो वह अकेली अपने 'शुद्ध दूध' के भरोसे देश का शासन नहीं कर सकती। लोकतन्त्रीय शासन में भाग लेने के के लिए उसे अपने 'शुद्ध दूध' को अन्य दो या तीन पार्टियों के मिलावटी माल से पतला करना पड़ता है। इस कारण परम्परा ही यह पड़ गयी है कि अनेक संयुक्त मन्त्रिमण्डल बनते और बिगड़ते हैं और कोई भी टिककर उन्नति के मार्ग पर स्थिर प्रगति नहीं कर पाता।

अमेरिकियों की दृष्टि से इस पद्धति में अधिक निरुत्साह करनेवाली बात यह है कि जहां अनेक पार्टियां होती हैं वहां कभी-कभी नरम या "मध्य-मार्गी" पार्टियों का ही एक मात्र मोर्चा ऐसा रह जाता है जो देश को स्वतन्त्र रख सकता है।

साधारणतया स्थिति का वर्णन यह कहकर किया जाता है कि दक्षिण पक्ष में तो फासिस्ट होते हैं, जो स्वतन्त्र शासन को उलटने और किसी नये मुसोलीनी या हिटलर को खड़ा करने का यत्न करते रहते हैं; और वामपक्ष में कम्यूनिस्ट होते हैं जो सत्ता हथियाने का यत्न करते रहते हैं; जैसा उन्होंने जेकोस्लोवेकिया में किया

था । इस स्थिति से स्पष्ट है कि लोकतन्त्र पक्षपाती पार्टियों की स्थिति मध्य में होती है । उनमें से कुछ का झुकाव दक्षिण की ओर को अधिक होता है और कुछ का वाम की ओर को ।

अनेक पार्टियों की पद्धति का वर्णन करने का यह तरीका दोषपूर्ण है क्योंकि इसमें इस बात का खतरा है कि दो एक तन्त्रवादी पार्टियां स्वातन्त्र्यप्रिय पार्टियों को एक दूसरे से विलग और दूर करने की प्रवृत्ति दिखलावें । उदाहरणार्थ, फासिस्ट या नव नाजी, कुछ ईमानदार परिवर्तन-विरोधियों को यह कहकर अपनी ओर घसीट सकते हैं कि सभी दक्षिण-पक्षीय हृदय से इन्हीं विचारों के हैं । इसके विपरीत, असावधान 'लिबरलों' (उदार विचारवालों) को कम्यूनिस्ट प्रायः यह नारा लगाकर बहका लेते हैं कि सभी 'वाम-पक्षियों' का एक संयुक्त मोर्चा होना चाहिए । ये जोड़-तोड़ यदि सफल हो जाएं तो राजनीतिक जीवन सर्वथा विरोधी दो पक्षों में बंट जाता है, और मतदाताओं को फासिस्ट या कम्यूनिस्ट एकवर्गाधिकार वादों में से एक का चुनाव करना पड़ जाता है । आत्मघात की दो विधियों में से एक को अपना लेने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग बचा नहीं है, इस भ्रम में फंसने से बचे रहने का उत्तम उपाय यह है कि ऐसी आलंकारिक भाषा का प्रयोग न किया जाय जिसके कारण स्वतन्त्र संसार खाई और खड्डे के मध्य में फंसा हुआ प्रतीत होने लगे ।

राजनीतिक प्रवृतियों की इस स्थिति को चित्रित करने का अच्छा उपाय एक ऐसी सीधी रेखा खींच देना नहीं है जिस के सिरों पर बैठ कर फासिस्ट और कम्यूनिस्ट, मध्य में बैठी हुई लोकतन्त्रीय शक्तियों पर आक्रमण कर रहे हों । वास्तविक स्थिति उस लम्बे पतले त्रिकोण के समान है जिसके शीर्ष पर तो लोकतन्त्रीय संस्थाएं और पार्टियां हों, और शेष दोनों कोणों पर प्रतिस्पर्धी एकवर्गाधिकार पक्षपाती शक्तियां जमी हुई हों । फासिस्ट अर्थात् चरम-प्रतिक्रियावादी और कम्यूनिस्ट अर्थात् चरम-परिवर्तन पक्षपाती, दोनों, एक-वर्गाधिकारवादी पुलिस-राज स्थापित करने का यत्न करते रहते हैं । वे लड़ते भी हैं तो बदमाशों के उन दो गिरोहों की तरह जिन में झगड़ा इस बात पर होता

है कि लूट पर अधिकार किसका रहे। वे बहुधा मिल भी जाते हैं, जैसे कि सन् १९३९ में हिटलर और स्टालिन मिल गये थे। जिस संसद में फासिस्ट और कम्यूनिस्ट पार्टियों की सदस्य-संख्या इतनी अधिक होती है कि वे भय का कारण बन सकें, वहां वे पार्टियां शासन को नष्ट कर देने की आशा में प्रायः मिलकर मत देती हुई दिखाई पड़ती हैं।

लोकतन्त्र विरोधी पार्टियों के सदस्यों की जहां भी लूट का अधिक अच्छा अवसर दिखाई पड़ता है वे अपनी पार्टी छोड़कर झट वहीं चले जाते हैं। उदाहरणार्थ, पूर्वी जर्मनी की कम्युनिस्ट सरकार को बहुत से भूतपूर्व नाजियों का भी खासा उपयोग दिखाई देता है, विशेषतः सेना में।

अमेरिकियों को अनेक पार्टियों की पद्धति में सबसे भयानक निर्बलता यह दीखती है कि प्रत्येक नये निर्वाचन में देश की स्वतन्त्रता एकमात्र इस बात पर निर्भर करने लगती है कि जीत लोकतन्त्रीय 'मध्यम' पार्टियों की हो। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक नया चुनाव स्वतन्त्रता और आपत्ति के मध्य में एक साम्मुख्य हो जाता है। इसमें एकमात्र विकल्प जलते तेल की कढ़ाई में से कूद कर आग में गिरने का रह जाता है। द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् युरोप के कई देश इसी स्थिति में पड़े हुए हैं। लोगों को अपने यहां का शासन पसन्द हो या न हो, उनके लिए कढ़ाई में पड़े रहने के सिवाय और कोई चारा है भी नहीं। यदि वे इससे बाहर निकलेंगे तो एकवर्गाधिकार की उस आग में गिर जायेंगे जिसमें पूर्वी युरोप के लोग भुन रहे हैं।

अमेरिकी पद्धति यद्यपि अपूर्ण है तथापि इसमें इतना गुण अवश्य है कि यह जनता को स्वतन्त्र शासन के विकल्पों में से चुनाव का अवसर प्रदान करती है। लोगों को यह सोचने का अवसर मिलता है कि समृद्धि को स्थिर रखने, या राष्ट्र की रक्षा-व्यवस्था करने, या अपव्यय और भ्रष्टाचार से बचकर चलने के लिए, दोनों में से कौन सी पार्टी अच्छी रहेगी। चुनाव की गरमी के क्षणों के अतिरिक्त, लोगों को विश्वास रहता है कि जिस पार्टी का हम विरोध कर रहे हैं यदि वही

जीत गयी तो वह भी कम से कम अमेरिका-प्रेमी और लोकतन्त्र-पक्षपाती तो रहेगी ही। बड़ी पार्टियों में ऐसी आत्मघाती एक भी नहीं जो यदि जनता की असावधानता से कभी पदारूढ़ पार्टी को पद-च्युत करने में सफल हो जाय तो देश को सोवियट रूस के सपुर्द करने की सोचने लगे।

परन्तु इस स्वतन्त्र चुनाव का मूल्य यह है कि दोनों पार्टियों को संयुक्त राज्य अमेरिका का उचित प्रकार शासन करने के लिए आवश्यक नेताओं, अनुयायियों और सिद्धान्तों से सम्पन्न होना चाहिए। विजेता पार्टी को न्यून या अधिक इमानदारी से, उन सब सुस्थापित सिद्धान्तों में विश्वास रखनेवाला होना चाहिए जिसका जनता अपने शासक से पालन करवाना चाहती है।

एक बार यह मान लेने पर कि अमेरिकी द्विदलीय पद्धति में दोनों पार्टियों के लिए प्रायः उन सब सिद्धान्तों और कार्यक्रमों को अपनाना आवश्यक है जिनकी मतदाताओं का कोई बड़ा भाग मांग करे, "जैसे नागनाथ वैसे सांपनाथ" की कहावत का प्रयोग अर्थपूर्ण और आवश्यक लगने लगता है। प्रत्येक पार्टी चुनाव से पहले ही मतदाताओं को यह दिखलाने का प्रयत्न करती है कि उसके शासन का रूप क्या होगा। इसलिए उसे उनकी अधिक महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूरी सूची भी तैयार करनी पड़ती है। इस कारण इसमें आश्चर्य की बात कुछ नहीं कि अमेरिकी मतदाताओं को प्रायः ऐसा लगता है कि रिपब्लिकन और डिमोक्रेटिक कार्यक्रम एक से हैं और अन्तर केवल उनके उम्मीदवारों में है। पार्टी का संगठन चुनाव जीतने और शासन पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए है, एक आदर्श के स्थान पर दूसरे की स्थापना करने के लिए नहीं।

परन्तु यह सर्वथा सत्य नहीं है कि पार्टियों के उम्मीदवार ही पृथक् होते हैं, उनके सिद्धान्त और कार्यक्रम प्रायः एक से होते हैं। नागनाथ सर्वथा वही नहीं होता जो कि सांपनाथ।

किसी अमेरिकी के लिए किसी विदेशी को यह समझाना कठिन है कि रिपब्लिकनों और डिमोक्रेटों में अन्तर क्या है। अंग्रेज द्विदलीय पद्धति का अभ्यासी

है परन्तु उक्त अन्तर वह भी सुगमता से नहीं समझ पाता । आन्दोलन के भाषणों के अतिरिक्त भी दोनों पार्टियों के परिवर्तन विरोधियों, उदार-विचारवालों, जिन्हें "जंगली गीदड़ के बच्चे" कहा जाता है उनमें; और दोनों की प्रादेशिक स्थितियों में कुछ अन्तर है ही । अल्पमत पार्टी प्रायः पदारूढ़ पार्टी की अपेक्षा बजट को अधिक कठोरता से घटाना चाहती और राज्यों के अधिकारों का अधिक पक्ष लेती है । अनेक स्थानीय अथवा प्रादेशिक स्वार्थों से भी एक पार्टी दूसरी की अपेक्षा अधिक प्रभावित होती है ।

'फेडरलिस्टों' और जेफर्सनियनों में पुराने अन्तर के अवशेष भी अभी शेष हैं । कुछ रिपब्लिकन व्यावसायिक स्वार्थों का और कुछ डिमोक्रेट श्रमिकों का अधिक ध्यान रखते हैं, परन्तु दोनों पार्टियों में बहुत से अपवाद भी हैं । व्यवहार में साधारणतया देखा जाता है कि वैदेशिक या आन्तरिक मामलों के महत्वपूर्ण बिलों पर कांग्रेस के बहुमत और अल्पमत, दोनों दलों में आन्तरिक मतभेद हो जाता है, परन्तु सदा एक ही प्रकार नहीं ।

दोनों पार्टियों के जो मतदाता, उम्मीदवार का विचार किये बिना, सदा रिपब्लिकन या डिमोक्रेट पक्ष में ही मत देते हैं उनका निर्वाचक-मण्डल में निश्चित बहुमत नहीं है । अमेरिकी लोग द्विदलीय पद्धति का जो रूप समझते हैं उसकी यह भी एक विशेषता है । यदि एक ही पार्टी की जीत निश्चित हो जाती तो मतदाताओं पर एक ही दलीय पद्धति लद जाती । तब एक पार्टी को दो भागों में विभक्त होना पड़ता, जैसा कि डिमोक्रेटिक-रिपब्लिकनों ने सन् १८२४ में किया था । जब द्विदलीय पद्धति ठीक प्रकार काम कर रही होती है तब चुनाव का निर्णय वे मध्यवर्ती निर्वाचक करते हैं जो स्वतन्त्र कहलाते हैं । वे दोनों पार्टियों के वचनों को तोल कर अपना मत देने का निश्चय करते हैं । प्रत्येक चुनाव में ये स्वतन्त्र मतदाता डिमोक्रेटों और रिपब्लिकनों में अन्तर के किसी प्रचलित विचार को ठीक मान कर चलते हैं । उनको उस समय जैसा भी लगता है उसके अनुसार ये रिपब्लिकनों को डिमोक्रेटों की अपेक्षा, अथवा उससे उलटा डिमोक्रेटों को रिपब्लिकनों की अपेक्षा, अधिक परिवर्तन-विरोधी मान लेते हैं । इसके अतिरिक्त समृद्धि, या

भ्रष्टाचार या शान्ति सम्वन्धी विचारों का भी इन पर प्रभाव पड़ता है। परन्तु सवसे अधिक ये यह देखते हैं कि राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार कौन व्यक्ति है।

कुछ राज्यों का 'ठोस' डिमोक्रेटिक और कुछ का 'ठोस' रिपब्लिकन होना संयुक्त राज्य अमेरिका में साधारणतया लोकतन्त्रीय पद्धति का दोष माना जाता है। संघीय निर्वाचन में इन राज्यों के सामने कोई विकल्प नहीं रहता, स्थानीय रूप से प्रवल पार्टी के प्रारम्भिक निर्वाचनों में ये प्रतिस्पर्धी उम्मीदवारों में से एक का चुनाव भले ही कर दें। परन्तु राष्ट्रीय निर्वाचनों में इन एकदलीय राज्यों की प्रवलता नहीं होती, इसलिए राष्ट्र में लोकतन्त्र सुरक्षित रहता है। भाग्यवश संयुक्त राज्य अमेरिका में किसी ऐसे 'ठोस' धार्मिक या जातीय समाज का प्रभाव नहीं है जो कि उम्मीदवारों या समस्याओं का विचार किये विना अपने मत सामूहिक रूप से दे। अमेरिकनों की दृष्टि में लोकतन्त्र का आधार ही यह है कि मतदाता निर्वाचनों का निर्णय उम्मीदवारों और नीतियों का स्वतन्त्र चुनाव कर के करें।

ब्रिटेन की द्विदलीय पद्धति कुछ भिन्न प्रकार की है। ब्रिटिश लोगों का विश्वास है कि 'लेवर' और 'कन्जर्वेटिव' पार्टियां अपनी नीतियों और सिद्धान्तों के कारण, डिमोक्रेटों और रिपब्लिकनों की अपेक्षा, एक दूसरे से अधिक भिन्न हैं। यदि ऐसा हो तो इसे कुछ स्पष्ट कर देना आवश्यक है।

शायद इसका उत्तम स्पष्टीकरण यह है कि किसी भी अच्छी द्विदलीय पद्धति में मतदाताओं को, विना किसी गृह-युद्ध के, दोनों में से एक पार्टी को चुनने की स्वतन्त्रता तो होती ही है, वे नीतियों और मार्गों का चुनाव भी यथा-सम्भव अधिक विविध प्रकारों में से करना चाहते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में राष्ट्रीय प्रगति की मुख्य दिशा के विषय में किसी भी प्रकार का विवाद नहीं है। वड़ी पार्टियों में से कोई भी तानाशाही या अर्थव्यवस्था के विनाश, या अन्य किसी आपत्ति के मार्ग को अपनाना नहीं चाहती। परन्तु यह एक चौड़ी सड़क है, जिसमें छोटी वड़ी गलियां तो हैं ही। कभी-कभी घूमकर छोटे रास्ते से निकल जाने का अवसर भी है। पार्टियों के रुख में वास्तविक अन्तर निर्वाचन में जनता के चुनाव का विषय वन जाता है।

विरोधी पार्टी निर्णतव्य प्रश्नों का निश्चय मतदाताओं की ऐसी आलोचनाओं और असन्तोषों को देखकर करती है जिनके सहारे उसे आशा हो कि वह उन्हें पदारूढ़ पार्टी का विरोधी वना सकेगी। परन्तु दोनों पार्टियां ऐसे प्रश्नों से वचकर चलती हैं जिनके कारण वहुसंख्यक मतदाताओं के बिदक जाने की सम्भावना हो। व्यवहार कुशल राजनीतिज्ञों द्वारा निर्णतव्य प्रश्नों के निश्चय का फल यह होता है कि पार्टियों में मतभेद तो यथेष्ट रहता है, परन्तु उन पर "संविधान को उलट देने" का आक्षेप नहीं आने पाता।

अमेरिकी पार्टियां यदि ब्रिटिश पार्टियों से अधिक भिन्न हैं तो इसका कारण यह है कि ब्रिटिश राजनीतिक नेता, जनता को इस प्रकार डराये बिना कि वे चुनाव हार जायं, चुनाव जीत जाने की दशा में अधिक बड़े परिवर्तन करने की प्रतिज्ञाएं कर सकते हैं। ब्रिटिश जनता अमेरिकनों की अपेक्षा कम उत्तेजित होती है, कम से कम तब से जब कि प्रथम विश्व युद्ध से कुछ पहले उतरी आयरलैंड में विद्रोह हो जाने का भय हो गया था। ब्रिटिश लोग एक भी गोली छोड़े बिना चर्चिल से कूदकर ऐटली पर जा सकते और फिर वापिस चर्चिल पर आ सकते हैं। अमेरिकी लोग शायद समाजवादियों की जीत का सामना इतनी शान्ति से न कर सकते, परन्तु वे भी गृह-युद्ध के बिना ही हूवर से रूजवेल्ट पर ट्रूमन से आईजनहावर पर छलांग लगा सकते हैं। व्यावहारिक द्विदलीय पद्धति में दोनों पार्टियों में अन्तर का यह यथासम्भव ठीक अन्दाजा है।

डिमोक्रेटिक और रिपब्लिकन पार्टियों में अनेक वेसुरे तत्व हैं परन्तु विभिन्न अनुपातों में दोनों पार्टियों को सदा अपने जाने का भय रहता है। परन्तु नेताओं की अगले चुनाव जीतने की इच्छा पार्टी को एकत्र वनाये रखने की शक्ति का काम करती है। कभी-कभी कोई विद्रोही नेता पार्टी से पृथक् होकर एक तीसरी लेड पार्टी वना लेता है, क्योंकि वह समझता है कि पार्टी अत्यन्त परिवर्तन-विरोधी हो गयी है। थियोडोर रूजवेल्ट ने सन् १९१२ में इसी प्रकार रिपब्लिकनों से पृथक् होकर "प्रोग्रेसिव' अथवा 'बुल-मुज' पार्टी वना ली थी। रार्वट ला शोलैट (वड़े ने) सन्

१९२४ में एक प्रोग्रेसिव की हैसियत से ही आन्दोलन किया था। वह भी रिपब्लिकन पार्टी से ही फूटकर पृथक् हुआ था। सन् १९४८ में दो पार्टियां डिमोक्रेटिक पार्टी से फूटकर बनी थीं। डिमोक्रेटिक पार्टी की आलोचना वालेस के अनुयायी 'प्रोग्रेसिव' उसे अति अपरिवर्तन-वादी वतलाकर, और 'डिक्सीक्रैट' उसे अत्यन्त चरम-परिवर्तन-पक्षपाती (रेडिकल) वतलाकर करते थे। इन दोनों फटवां पार्टियों में से कोई भी पुरानी पार्टी को नष्ट करके उसका स्थान नहीं ले सकी। परन्तु सन् १९१२ में 'बुल-मूजरों' के फट जाने के कारण रिपब्लिकन हार गये थे और उडरो विलसन चुनाव जीत गया था।

अन्य पार्टियों की आधार-भूत निर्वलता यह है कि वे झगड़े का आरम्भ सदा किसी सैद्धान्तिक कारण से करती हैं और उनकी ओर आकृष्ट केवल वे मतदाता होते हैं जो उस सिद्धान्त के भक्त होते हैं। इन फटी हुई खप्पच पार्टियों के अनेक अनुयायी स्पष्ट भाषा में नागनाथ और सांपनाथ को समाप्त करके पार्टियों का पुनर्गठन सिद्धान्तों के आधार पर करने का प्रतिपादन करते हैं।

वे सब परिवर्तन-विरोधियों को—दक्षिण-पन्थियों में पागलपन की सीमा पर पहुंचे हुए फासिस्टों तक को—एक 'कन्जर्वेटिव' (परिवर्तक विरोधी) पार्टी में, और सब उदार विचार वालों को,—जो कम्युनिस्टों का और वामपन्थियों में पागलों तक का स्वागत कर सकें—एक "प्रोग्रेसिव" अर्थात् प्रगतिशाली पार्टी में एकत्र देखना चाहते हैं। उनका विचार है कि मतदाताओं को सच्चे निर्वाचन का अवसर तभी मिल सकेगा।

परन्तु भेड़ों और वकरियों की छटाई के इस सुझाव का फल दोनों के एक दूसरे से विल्कुल दूर भाग खड़े होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा; और यह आत्मघात कर लेने का मूर्खतापूर्ण मार्ग है। कोई भी जीवित रहने योग्य जनतन्त्र किसी न किसी प्रकार ऐसी किसी दलीय पद्धति की खोज कर ही लेता है जिससे लोगों को अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने का अवसर मिल जाय; वह कितनी ही अपूर्ण क्यों न हो। अमेरिकी रिपब्लिकनों और डिमोक्रेटों की पद्धति, अनेक परस्पर विरोधी स्वार्थों को, एक दूसरे के नाश का प्रयत्न किए विना, एकत्र रहने के लिए

सहमत कर लेती है। यह त्रुटियों और तर्क-विरुद्ध समझौतों से परिपूर्ण है, परन्तु अब तक यह विनाश से बचती चली आयी है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में दो मुख्य पार्टियों के संचालक अनुभवी राजनीतिज्ञों में से अधिकतर इस विचार से सहमत नहीं हैं कि परस्पर विरोधी पार्टियों का संगठन तर्क के आधार पर किया जाय। यदि कुछ असन्तुष्ट मतदाता; फूटकर कोई तृतीय पार्टी खड़ी कर लें तो वे अपना द्वार उनके लिए बन्द नहीं कर देते। वे समझौते का मार्ग पसन्द करते हैं, जिससे तृतीय पार्टी के जितने भी मतदाता आ सकें उतने वापिस आ जायं। वे तृतीय पार्टी के केवल उन नेताओं के लिए दरवाजा बन्द करते हैं जिन्हें वे झगड़ालू समझते हैं और जिनसे भय होता है कि वे अन्य मतदाताओं को भी बहका ले जायंगे। विभिन्न विरोधी तत्वों को एकत्र करने की यह प्रवृत्ति ही द्विदलीय पद्धति का मुख्य बल है।

मुख्य संगठनों को चुनौती देने का यत्न करनेवाली इन तृतीय पार्टियों के अतिरिक्त, अनेक गौण पार्टियाँ भी अनिश्चित संख्या में होती हैं। इनमें से कुछ अपने प्रदेश में प्रभावशाली होती हैं। उदाहरणार्थ, इस शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में फार्मर-लेबर (किसान-मज़दूर) और प्रोग्रेसिव (प्रगतिशाली) पार्टियाँ मध्य-पश्चिम में राज्य विधान मण्डलों के चुनाव जीत गयी थीं।

अन्य गौण पार्टियों का क्षेत्र तो राष्ट्र-व्यापी होता है, परन्तु उन्हें कुछ लाख से अधिक मत कभी नहीं मिलते। उनके सदस्यों को राज्यों तक के चुनाव जीतने की आशा नहीं होती—यद्यपि मिलवौकी और ब्रिजपोर्ट नगरों पर सोशलिस्टों का नियन्त्रण बहुत समय तक रह चुका है। छोटी पार्टियों को आशा रहती है कि यदि हमारा नाम निर्वाचन में सामने आ गया और हमने अपने उत्साही अनुयायियों को; थोड़ी संख्या में भी क्यों न हो, संगठित कर लिया तो हम बड़ी पार्टियों को अपने संगठित मतों का लालच देकर अपना कार्यक्रम अपनाने के लिए प्रेरित कर सकेंगे। छोटी पार्टियों से एक लाभ यह होता है कि उनके सहारे छोटे संगठन भी अपने ऐसे विचारों का विज्ञापन कर सकते हैं जो अभी अपनाये जाने योग्य नहीं हुए। परन्तु उनके नेताओं को शासन में सम्मिलित करने का वचन कोई नहीं देता। उदाहरणार्थ,

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जो समाजवादी विचार प्रकट किए गये थे उनमें से अधिकतर आज विभिन्न नामों से, डिमोक्रेट और रिपब्लिकन, दोनों पार्टियों के आन्दोलनों का अंग बन चुके हैं। एक बार मद्य-निषेध के पक्षपातियों ने अपने विचार को संविधान के एक संशोधन के रूप में स्वीकृत करवा लिया था। कम्यूनिस्ट पार्टी बहुत कम मत प्राप्त कर पाती है; परन्तु यह अपने मत किसी प्रतिक्रिया-वादी उम्मीदवार को देकर या किसी उदार उम्मीदवार का अनचाहा समर्थन करके, निर्वाचन को शायद कुछ न कुछ प्रभावित कर लेती है।

अन्त में उन छोटी-छोटी टुकड़ियों की चर्चा कर देना भी आवश्यक है जो कि चुनाव में चुस्ती से भाग लेती और उस पर कुछ प्रभाव डाल लेती हैं, क्योंकि उसके बिना संयुक्त राज्य अमेरिका की दलगत राजनीतिक पद्धति का विवरण पूरा नहीं होगा। इन टुकड़ियों का नाम निर्वाचन में सामने नहीं आता। ये अपने उम्मीदवार को अप्रत्यक्ष रूप से खड़ा करती हैं, अर्थात् उसे किसी बड़ी पार्टी से नामज़द करवा देती हैं।

उदाहरणार्थ, अमेरिका में 'लेबर' या श्रमिक पार्टी नहीं है। इसका कारण यह है कि बहुत समय हुआ जब 'अमेरिकन फेडरेशन ऑव् लेबर' अर्थात् अमेरिकी श्रमिक-संघ ने निश्चय कर दिया था कि श्रमिकों के मत भी दोनों बड़ी पार्टियां आपस में बांट सकेंगी। श्रमिक नेता उन्हीं उम्मीदवारों का समर्थन करते लगते हैं जिन्हें वे अपना मित्र समझते हैं। किसी स्थान पर वे किसी रिपब्लिकन का समर्थन करते हैं तो किसी अन्य स्थान पर किसी डिमोक्रेट का। उनका विचार है कि श्रमिक मतों को एक असफल पार्टी के रूप में अलग बांध कर डाल देने की अपेक्षा जीतती हुई पार्टी को प्रभावित करके अधिक लाभ उठाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट नहीं है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में कोई पृथक् "श्रमिक मतदाता" है। अमेरिकी श्रमिक अपना मत अपनी यूनियन के नेताओं की सलाह से नहीं देते। इससे प्रकट होता है कि जिसे "वर्ग-चेतना" कहा ज़ाता है वह अमेरिका में उतनी प्रबल नहीं है जितनी युरोप के कई देशों में।

राजनीति में भाग लेने वाले संगठन और भी हैं। ये प्रायः व्यवसाय के आधार पर संगठित हैं। उनके नाम हैं—"युनाइटेड स्टेट्स चेम्बर ऑव कामर्स एण्ड नेशनल

असोसिएशन ऑव मेन्यूफेक्चरर्स" अर्थात् अमेरिका के व्यापारियों की सभा तथा निर्माताओं का राष्ट्रीय संघ; "द फार्म ब्यूरो फेडरेशन" या किसान-संस्था-संघ; "द ग्रेन्ज़" (ग्रामोण जमींदारों की पंचायत), और "द फार्मस् युनियन और एग्रिकलचर" (कृषि की उन्नति चाहनेवाली किसान-सभा); "द लीग ऑव विमेन वोटर्स ऐण्ड जनरल फेडरेशन ऑव् विमेन्स क्लब्स" (स्त्री मतदाताओं की लीग तथा स्त्री क्लबों का संघ); "अमेरिकन लीजन ऐण्ड वेटरन्स ऑव फारिन वार्स" (अमेरिकी सेना और विदेशी युद्धों से निवृत्त सैनिक); और "द डॉटर्स ऑव् द अमेरिकन रेवोल्यूशन" (अमेरिकी क्रान्ति की पुत्रियां)।

कर लगाने के प्रयोजन से कानून इन संगठनों को दो भागों में बांट देता है। एक ता वे जो अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए कानून-निर्माताओं पर प्रभाव डालने का यत्न करते हैं और दूसरे वे जो देश के लाभ के लिए सार्वजनिक समस्याओं का अध्ययन करते हैं। जिस आय पर संघीय आय-कर लग सकता है उसमें से राजनीतिक पार्टियों अथवा कानून-निर्माताओं को प्रभावित करने के लिए बनाये गये संगठन को दिया हुआ चन्दा घटाया नहीं जाता।

इस प्रकार प्रमुख राजनीतिक पार्टियों को अनेक प्रकार के प्रभावों और दबावों के उलझे हुए जाल में काम करना पड़ता है। वे न केवल प्रत्येक मतदाता की सम्भावित आवश्यकताए समझ कर उसे सन्तुष्ट रखने का यत्न करती हैं, उन्हें उन 'दुष्ट स्वार्थों' की पूर्ति भी करनी पड़ती है जो कि 'धुआं भरे कमरे' में बैठे व्यक्तियों की अदृश्य नकेल खींचते रहते हैं। दोनों पार्टियां नाना प्रकार की ऐसी छोटी पार्टियों और निजी संगठनां से घिरी रहती हैं जो कि न जाने किस-किस स्वार्थ की सिद्धि करना चाहते हैं और जिन में से प्रत्येक यह दावा करता है कि उसके पास हज़ारों मत बंधे-बंधाये तैयार हैं और जो कोई खरा वचन देगा वे उसकी भेंट कर दिये जायंगे। पार्टियों के नेताओं का काम न केवल यह देखना है कि किस-किस को मिलाकर क्या वचन देना ठीक होगा, अपितु अन्त में क्या काम करना ठीक रहेगा, जिससे मतदान में उनकी ही पार्टी जीते।

अध्याय ३

राजनीतिक दलों का विकास और उनकी कार्य प्रणाली

अमेरिकी राष्ट्रपति के निर्वाचन में जब राजनीतिक दलों ने पहले पहल भाग लिया तब उनके संगठन राष्ट्रव्यापी नहीं थे। तब जो राष्ट्रीय नेता राष्ट्रपति बनना चाहते थे उनकी परस्पर प्रतिस्पर्धा और राष्ट्रीय नीतियों के विषय में लोगों के मतभेदों के अतिरिक्त, संगठित पार्टियों जैसी कोई वस्तु नहीं थी। कांग्रेस ही परस्पर विरोधी भागों में विभक्त हो जाती थी और प्रत्येक भाग अपना कॉकस (सम्मेलन) करके अपना उम्मीदवार चुन लेता था। परन्तु शीघ्र ही इन 'कॉकसों' की लोक-प्रियता नष्ट हो गयी। पार्टियों के जो नेता कांग्रेस में नहीं थे वे भी चाहते थे कि चुनाव और नामजदगी में हमारी बात रक्खी जाय। वे एक ओर तो मतदाताओं को नाराज करना और खोना नहीं चाहते थे और दूसरी ओर उम्मीदवारों की नामजदगी अपने हाथों में रखना चाहते थे। उन्होंने अपनी इस इच्छा-पूर्ति के लिए जो प्रयत्न किये उनसे ही पार्टियों का विकास हो गया।

सन् १८२४ में डिमोक्रेटिक 'कॉकस' ने ऐण्डरू जैक्सन को नामजद नहीं किया। इससे मतदाताओं को निराशा हुई। चार वर्ष पश्चात् यह भूल सुधार दी गयी, जैक्सन चुन लिया गया; परन्तु नामजदगी की 'कॉकस' पद्धति की लोकप्रियता समाप्त हो गई। तब विरोधी पार्टियां 'कन्वेन्शनों' अर्थात् इसी प्रयोजन से बुलाये

गये विशेष सभा-सम्मेलनों में एकत्र होने लगीं। स्थानीय 'कन्वेन्शनों' में प्रतिनिधियों का चुनाव राज्य 'कन्वेन्शनों' के लिए, और राज्य 'कन्वेन्शनों' में राष्टीय 'कन्वेन्शन' के लिए होता था। ये 'कन्वेन्शन' क्रमशः स्थानीय, राज्यीय और राष्ट्रीय पदों के उम्मीदवारों का चुनाव भी करते थे। यह पद्धति एक प्रकार से लोकतन्त्रात्मक थी क्योंकि इसमें पार्टी के कार्यकर्ता-सदस्यों को विविध स्तरों पर एकत्र होने और मत देने का अवसर मिल जाता था। दूसरी ओर जो साधारण मतदाता पार्टी के कार्यकर्ता-सदस्य नहीं होते थे उन्हें निर्वाचन-दिवस के अतिरिक्त कभी कुछ कहने-सुनने का अवसर नहीं मिलता था। इसके विरुद्ध भी शिकायत हुई और कालान्तर में इसका परिणाम बहुत से राज्यों में 'प्राइमरी' अर्थात् प्राथमिक चुनावों की पद्धति अपनाये जाने के रूप में प्रकट हुआ।

अब प्रायः सब राज्यों में निर्वाचन-वर्ष के वसन्त में या ग्रीष्म के आरम्भ में 'प्रा मिक चुनाव' होते हैं, और उनमें पार्टियां स्थानीय और राज्यीय पदों और कांग्रेस की सदस्यता के उम्मीदवार चुनती हैं। कुछ राज्यों में राष्ट्रीय 'कनवेन्शन' के प्रतिनिधि भी प्राथमिक चुनाव में चुने जाते हैं। वे 'कन्वेन्शन' में कम से कम शुरू के कुछ मतदानों में राष्ट्रपति के किसी विशेप उम्मीदवार का समर्थन करने के लिए वचन-वद्ध हो सकते हैं। यह भी सम्भव है कि 'प्राथमिक' के मत-पत्र में एक स्थान ऐसा रक्खा जाय जहां मतदाता राष्ट्रपति पद के लिए अपनी पसन्द प्रकट कर सके।

परन्तु 'प्राथमिक' चुनावों की पद्धति अभी इतनी विकसित नहीं हुई कि रि ब्लिकन या डिमोक्रेटिक कन्वेन्शनों के एकत्र होने से पहले ही राष्ट्रपति पद के लिए उस पार्टी के उम्मीदवार का निश्चय हो जाय। जो उम्मीदवार प्राथमिक चुनावों में सफल होने के पश्चात् 'कन्वेन्शन' में नामजदगी प्राप्त नहीं कर पाते वे स्वभावतः चाहते हैं कि राष्ट्रपति का उम्मीदवार चुनने के लिए राज्यों के प्राथमिक चुनाव मण्लों की संख्या और अधिकार वढ़ जाय। इसके विपरीत, जिन पेशेवर रा नीतिज्ञों को 'कन्वेन्शन' चलाने का अभ्यास पड़ चुका है, वे चाहते हैं कि नि न्त्रण हमारे ही हाथ में रहे।

जबतक राष्ट्रपति पद के लिए पार्टी का उम्मीदवार नामजद करने का वास्तविक अधिकार राष्ट्रीय 'कन्वेन्शन' के हाथ में बना रहेगा तबतक जनता की रुचि उसमें एक राजनीतिक उत्सव के रूप से ही रहेगी।

जिन लोगों ने 'कन्वेन्शन' की अव्यवस्थित भीड़ और हल्ले-गुल्ले को देखा है वे प्रायः आश्चर्य करते हैं कि अमेरिका सरीखा महान् लोकतन्त्रीय राष्ट्र अपने राष्ट्रपति को ऐसे गड़बड़, भीड़ और हल्ले-गुल्ले में चुना जाना सहन भी कैसे कर लेता है। परन्तु ऐसा भ्रम उन्हें ऊपर के दृश्य को ही वास्तविक वस्तु समझ लेने के कारण होता है। 'कन्वेन्शन' में प्रतिनिधि राष्ट्रपति को चुनने के लिए एकत्र नहीं होते। वे वहां पार्टी के अन्य साथी सदस्यों से परिचय करने और जनता का उत्साह बढ़ाने के लिए एकत्र होते हैं। परन्तु अनुभवी राजनीतिक नेता इस दृश्य की ओट में ऐसे उम्मीदवार की खोज पर अपना ध्यान और शक्ति केन्द्रित किये रहते हैं जो पार्टी को संगठित रख सके और स्वतन्त्र मतदाताओं को आकर्षित कर सके। नेता लोग प्रतिनिधियों की इच्छा की भी उपेक्षा नहीं करते। वे छोटी-छोटी बैठकों में उनसे बातचीत करके उनकी इच्छा जानते रहते हैं। ये सभाएं टेलिवीजन के पर्दे पर नहीं दिखाई जातीं।

इसी समय प्रतिनिधियों का उत्साह बैण्ड-बाजों, फौजी कवायदों और अन्य प्रदर्शनों के द्वारा बढ़ाया जाता है। और ऋतु की स्वाभाविक गरमी तो वहां होती ही है। जब उम्मीदवार अन्तिम रूप में चुना जा चुकता है तब 'युद्ध का नाच' अपनी चोटी पर पहुंच जाता है, और वह तबतक चलता ही रहता है जबतक कि पराजित पक्षवाले भी जोशखरोश और हल्ले-गुल्ले में हारकर खुशियों और खेलों में शामिल नहीं हो जाते।

जो लोग इस हा-हू और उछल कूद को टेलिवीजन के पर्दे पर देखते हैं उनमें से बहुतों को यह हरकत असभ्यतापूर्ण लगती है। निःसन्देह यह वैसी ही है भी। परन्तु मानव जाति के विकास में युद्ध के नाचों का इतिहास बहुत पुराना और सफलता का इतिहास है। सारे संसार में असभ्य जातियां कबीलों को इकट्ठा करने

और सुस्त लोगों को उठाने तथा लड़ाई में लगाने के लिए अन्तः प्रेरणा से युद्ध के नाचों का प्रयोग करती रही हैं। जिन अनुभवी राजनीतिज्ञों ने राष्ट्रीय 'कन्वेन्शनों' की नींव डाली थी उनकी सूझ-बूझ की उपेक्षा शायद लापरवाही से नहीं की जा सकती ।

परन्तु टेलिवीजन के प्रयोग के कारण कन्वेन्शन के बहुत से कामों का रूप निश्चय ही बदल जायगा। इससे प्रतिनिधियों के दो-दो मण्डल भेजने की प्रथा में भी परिवर्तन हो जायगा। इनमें से प्रत्येक मण्डल आधे मतों का अधिकारी होता है। इस प्रथा के कारण मतदान असाधारण मन्द गति से हो पाता है, और शायद उन राजनीतिक नेताओं की दृष्टि से लाभदायक भी रहता है जो कि समय टालना चाह रहे होते हैं। इससे उन प्रतिनिधियों के आत्म विज्ञापन की भूख भी मिट जाती है जो कि सन् १९५२ में एक क्षुब्ध प्रतिनिधि नेता के कथनानुसार, 'टेलिवीजन के भूखे' होते हैं। परन्तु इससे टेलिवीजन के दर्शक ऊब जाते हैं और किसी को ऊबा देना निश्चय ही राजनीतिक चतुरता नहीं है। जब प्रतिनिधियों को यह पता लग जायगा कि टेलिवीजन का चित्र दूर-दूर तक दिखलाई पड़ता है और बहुत से बहरे नागरिक होठों को देखकर ही बात को समझ जाते हैं तब शायद कन्वेन्शन में उनका व्यवहार भी सुधर जायगा।

परन्तु राष्ट्रीय कन्वेन्शन करने की प्रणाली में चाहे जो परिवर्तन हो जाय, यह सन्दिग्ध ही है कि पार्टियों के नेता राष्ट्रपति की नामजदगी का नाटक उन लोगों के हाथ से निकल जाने देने के लिए कभी तैयार हो जायंगे जो अब कन्वेन्शन में उसे खेलते हैं।

कन्वेन्शन में पार्टी अपना 'प्लेटफार्म' या चुनाव-घोषणापत्र भी तैयार करती है। कन्वेन्शन के आरम्भिक दिनों में एक प्रस्ताव-समिति अपनी बैठकें करती है। वह श्रमिकों, व्यापारियों, स्त्रियों के क्लबों, नीग्रो लोगों, किसानों, युद्ध-निवृत्त सैनिकों और अन्य उन सब लोगों की बात सुनती है जो उसे यह विश्वास दिला सकें कि तनातनीवाले चुनाव-संघर्ष में बहुत से मतदाता हमारे कहने पर चलेंगे।

यदि समिति यह समझे कि प्रार्थी को 'प्लेटफार्म' में एक तख्ता या पैराग्राफ दें देने से पर्याप्त मत मिल सकेंगे तो वह वैसा कर देती है, परन्तु शर्त यह रहती है कि उससे "पार्टी के सिद्धान्तों का उल्लंघन न हो"। इसका अर्थ यह है कि जिस किसी बात से पार्टी के अनुयायी बिगड़ जायं और चुनाव के दिन बहुत से मतदाताओं के घर बैठ रहने का भय हो जाय वह पार्टी के सिद्धान्तों का उल्लंघन करने वाली है।

उदाहरणार्थ, सन् १९४८ के डिमोक्रेटिक कन्वेन्शन में 'मानवता के अधिकारों' अथवा अल्पसंख्यकों के साथ भी समानता का बरताव करने का कानून बनाने के 'तख्तों' का प्रबल विरोध किया गया था। एक ओर तो वे लोग थे जिनका तर्क था कि मानवता के अधिकारों का तख्ता मजबूत करके अल्पसंख्यक लोगों के लाखों मतों को खींचा जा सकेगा, और दूसरी ओर वे थे जो पार्टी के 'नियमित' लाखों सदस्यों के रूठ जाने का 'भय' प्रकट कर रहे थे। इसी प्रकार की युक्तियां मजदूरों और किसानों से सम्बद्ध नीतियों के विषय में दी जा सकती हैं, विशेषतः तब, जब कि इस 'तख्ते' में रुचि रखनेवाले, एक पक्ष को दूसरे से लड़ा सकें और इस प्रकार नेताओं को तुरन्त सीधा उत्तर देने के लिए विवश कर सकें।

निःसन्देह, "प्लेटफार्म कमेटी" अपनी बात यथासम्भव ऐसे शब्दों में प्रकट करती है जो खुश तो सबको और नाराज किसी को भी न करने वाले हों। वह गृह-नीति, सन्तुलित बजट, हलके टैक्सों, और अमेरिकी जीवन-पद्धति पर विशेष बल देती है।

वस्तुतः पार्टी "रिकार्ड पर चलती है, जिसका अर्थ व्याख्याताओं की भाषा में यह दावा होता है कि हमारी ही पार्टी अच्छी, खरी, मजबूत और भरोसे के लायक है। वे अपनी पार्टी की प्रशंसा करके, विरोधी पार्टी के ऐसे कामों का विशद वर्णन करते हैं जिनके कारण वह मतदाताओं में लोकप्रिय न रही हो। प्रत्येक पार्टी अपना परम्परागत व्यक्तित्व सुरक्षित रखने का और उसके मुकाबले में विरोधी पार्टी की दुर्दशा चित्रित करने का यत्न करती है। उदाहरणार्थ, रिपब्लिकन

अपनी पार्टी की तो कुशलता और ईमानदारी का चित्र खींचते हैं और अपने मुकाबले में डिमोक्रेटों को अकुशल और अर्ध-कम्यूनिस्ट बतलाते हैं। डिमोक्रेट मतदाताओं से कहते हैं कि हम जनता के मित्र और उन्नति के पक्षपाती हैं; और हमारे मुकाबले में रिपब्लिकन उन अमीरों के मित्र हैं जिन्हें 'बीसवीं शताब्दी में लातें झाड़ते और चिल्लाते चीखते हुए भी घसीटना पड़ रहा है।' दोनों पार्टियों में अनेक ऐसे प्रमुख सदस्य होते हैं जिनके व्यवहार से इन दावों का खण्डन हो जाता है; फिर भी मतदाता यही समझते हैं कि पार्टी की परम्परागत विशेषताओं में कुछ सत्यता है।

बहुत कम मतदाता 'प्लेटफार्म' पढ़ने का कष्ट करते हैं। राजनीतिक व्याख्याता अवश्य उसके उद्धरण देते रहते हैं। यदि उसमें कोई बात ऐसी हो जिससे बहुत से मतदाताओं के अप्रसन्न हो जाने की सम्भावना हो तो विरोधी पार्टी उसका उद्धरण देती है। परन्तु व्यवहार में 'प्लेटफार्म' की रचना उम्मीदवार के आन्दोलन भाषणों से ही होती है। वह अपनी पार्टी के 'प्लेटफार्म' का प्रत्यक्ष विरोध तो कभी नहीं करता; परन्तु उसकी व्याख्या करते हुए वह उन भागों को छोड़ देता है जिन पर वह जोर देना नहीं चाहता; और जिन्हें वह महत्वपूर्ण समझता है उनके विषय में वह अपने स्वतन्त्र वक्तव्य दे डालता है। निर्वाचन हो चुकने पर लोग राष्ट्रपति के भाषणों को पार्टी की प्रतिज्ञाएं मान कर चलते हैं और उससे आशा करते हैं कि वह कांग्रेस को मानकर या दबाकर उससे प्रतिज्ञाएं पूरी करवा लेगा।

इसलिए पार्टी का 'प्लेटफार्म' तैयार करने में पार्टी के कन्वेन्शन की विधि-निर्माण शक्ति का दर्जा दूसरा होता है, प्रथम स्थान राष्ट्रपति के ही कार्यक्रम का होता है। कन्वेन्शन के वास्तविक काम केवल दो हैं—उम्मीदवार का चुनाव और दलीय कार्यक्रम के प्रदर्शनात्मक उत्सवों के द्वारा पार्टी को एक कर देना।

उपराष्ट्रपति का चुनाव साधारणतया राष्ट्रपति पद के लिए नामजद व्यक्ति करता है और थके-थकाये प्रतिनिधि बिना विशेष विवाद के उसे स्वीकार कर लेते

हैं। उपराष्ट्रपति पद का उम्मीदवार प्रायः कन्वेन्शन में पराजित पक्ष को सन्तुष्ट करने की दृष्टि से चुना जाता है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि पार्टी के जीते हुए पक्ष को यह भय रहे कि राष्ट्रपति का देहान्त हो जाने पर शासन की सत्ता हाथ से चली जायगी। इस प्रथा के आलोचक बराबर यह मांग करते रहते हैं कि नामजदगी का ढंग ऐसा होना चाहिए कि वही व्यक्ति उपराष्ट्रपति पद के लिए नामजद किया जाय जो कि यदि राष्ट्रपति पद के लिए खड़ा किया जाता तो अपने बल से चुनाव जीत सकता।

प्रत्येक पार्टी की एक राष्ट्रीय समिति होती है, जो कन्वेन्शनों के मध्यवर्ती काल में उनका काम करती रहती है, क्योंकि वे तो प्रति चार वर्ष पश्चात् ही होते हैं। परन्तु समिति अपना अधिकतर कार्य राष्ट्रपति के चुनाव के वर्ष में ही करती है। राष्ट्रीय कन्वेन्शन के स्थान और समय का निश्चय भी यही समिति करती है; इसके ही कर्मचारी आन्दोलन-साहित्य तैयार करते और स्थान-स्थान पर वक्ताओं को भेजते हैं। राष्ट्रपति और कांग्रेस के चुनाव आन्दोलन के लिए धन-संग्रह भी यही समिति करती है।

समिति का गठन, प्रत्येक राज्य प्रदेश और अमेरिका के आधीन द्वीपों से एक पुरुष और एक स्त्री सदस्य लेकर किया जाता है। उनका चुनाव या तो राज्य के प्रतिनिधि करते हैं या राज्य के प्राथमिक मण्डल करते हैं। समिति के सदस्यों को अधिकतर कार्य अपने-अपने गृह-राज्य में ही करना पड़ता है। वहां वे सब काम राज्य-समितियों के सहयोग से करते हैं। राष्ट्रीय समिति के प्रधान को राष्ट्रपति पद का उम्मीदवार चुनता है, क्योंकि समिति को उसका ही आन्दोलन करना होताहै।

प्रधान के अतिरिक्त, समिति के अति महत्वपूर्ण पदाधिकारी सचिव और कोषाध्यक्ष हैं। समिति का प्रधान राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के साथ मिलकर आन्दोलन का कार्यक्रम तैयार करता, सचिव पत्र-व्यवहार आदि दफ्तरी काम सम्भालता, और कोषाध्यक्ष कोष का संग्रह करता है।

उम्मीदवारों और अन्य वक्ताओं के लिए आवश्यक सूचनाएं और जानकारी संग्रह करने के लिए समिति कुछ अनुसन्धान-कर्मचारी भी रखती है। ये सूचनाएं ऐसी होती हैं जैसे कि प्रत्येक जिले की आर्थिक, जातीय, धार्मिक और राजनीतिक विशेषतायें, कांग्रेस के उम्मीदवारों के निर्वाचन में मतदान का पुराना लेखा, और अन्य जानकारियां जिनको सहायता से वक्ता मतदाताओं को आकृष्ट तो कर सकें, परन्तु उन्हें खिजावें नहीं। समिति कुछ कुशल लेखक भी रखती है, जो कि अन्दोलनों के मध्य में कांग्रेस के विवादों में पार्टी का पक्ष पुष्ट करने के लिए, अति-व्यस्त कांग्रेस सदस्यों और सेनेटरों को भाषण तैयार करके देते रहते हैं।

कांग्रेस में प्रत्येक पार्टी की एक विशेष समिति चुनाव में कांग्रेस-सदस्यों की, और एक दूसरी समिति सेनेटरों की सहायता करने के लिए होती है। इन समितियों के पास अपना कोष भी होता है, और जिन स्थानों पर चुनाव की सफलता में सन्देह होता है वहां ये धन और वक्ता भेजने का प्रबन्ध करती हैं।

प्रत्येक राज्य में प्रत्येक पार्टी की एक राज्य-समिति होती है। ये समितियां स्वभावतः उन राज्यों में अधिक चुस्त होती हैं जिनमें चुनाव वस्तुतः अधिक संघर्षमय होता है। इस प्रकार यह संगठन बढ़ता हुआ जिलों, नगरों, कस्बों और अन्त में उन मुहल्लों तक पहुंच जाता है जिनमें चुनाव के केन्द्र बनाए जाते हैं, और उन सबकी पृथक् समितियां होती हैं।

मुहल्लों के काम को "दरवाजे की घण्टी बाजाना" कहते हैं। पार्टियों के कार्य-कर्ता, लोगों को व्यक्तिशः समझाते रहते हैं कि मताधिकारी बनने के लिए अपना नाम समय रहते रजिस्टर करवा लो। जब उम्मीदवार उनके नगर में आता है तब वे लोगों को उसकी सभाओं में जाने और अन्त के चुनाव के दिन मत देने के लिए भी प्रेरित करते रहते हैं। मुहल्ले से ऊपर के संगठनों का काम मुख्यतया मुहल्ला-कार्य-कर्ताओं के प्रयत्नों का सहारा लगाने का होता है। वे वक्ताओं, पुस्तक, पुस्तिकाओं, साहित्य, रेडियो और टेलिवीजन आदि के लिए धन संग्रह भी करते हैं जिससे मतदाताओं को प्रभावित किया जा सके।

देश के विस्तार का और जितने मतदाताओं तक पहुंचना पड़ता है उनकी विशाल संख्या का विचार करते हुए, राष्ट्रीय चुनाव लड़ने का व्यय वहुत भारी नहीं होता। समस्त व्यय के अधिकतर अनुमानों के अनुसार प्रति मतदाता पीछे व्यय लगभग २५ सेण्ट का अर्थात् १८-१६ आने का होता है और सारा व्यय २ से ३ करोड़ डालर तक वैठता है। उदाहरणार्थ, सन् १९४४ में डिमोक्रेटों ने अपना व्यय अधिकृत रूप से ७५ लाख डालर और रिपब्लिकनों ने १ करोड़ ३० लाख डालर बतलाया था। राष्ट्रीय-समितियों में से प्रत्येक को एक आन्दोलन में ३० लाख डालर से अधिक व्यय करने की अनुमति नहीं होती, परन्तु राज्यीय और स्थानीय समितियां अपना कोश स्वयं एकत्र करती हैं। इसके अतिरिक्त, अपने-अपने प्रिय उम्मीदवार को सफल बनाने के लिए सब प्रकार के लोग और संगठन धन तो अपनी गांठ से व्यय करते हैं, अपना समय भी मुफ्त देते हैं। हैच ऐक्ट के अनुसार फेडरल-सिविल-सर्विस के सदस्यों के लिए राजनीतिक आन्दोलन में भाग लेना निषिद्ध है, परन्तु अभी तक ऐसा कोई उपाय नहीं निकला जिसके द्वारा चुनाव-आन्दोलन में भाग लेने वाले प्रत्येक नागरिक को यह हिसाब देने के लिए विवश किया जा सके कि उसने अपना कितना समय और धन इस कार्य में व्यय किया।

यह शिकायत सदा ही होती रहती है कि दूसरी पार्टी ने वहुत धन व्यय किया। ऐसा कानून वनाने की मांग भी वार-वार की जाती है कि जिससे आन्दोलन व्यय इतना सीमित कर दिया जाय कि कम सम्पन्न पार्टी भी उसे सुगमता से उठा सके। परन्तु धन देकर मत खरीदने की प्रथा अब पहले जितनी आम नहीं रही; और यह विश्वास भी अनेक चुनाव-परिणामों से भ्रान्त सिद्ध हो चुका है कि अधिक सम्पन्न पार्टी अवश्य जीतती है।

सरकार द्वारा पार्टियों को आर्थिक सहायता दी जाने का प्रस्ताव भी कुछ लोग करते हैं परन्तु उसके स्वीकृत होने में बड़ी वाधा यह है कि लोग यह मानने में संकोच करते हैं कि राजनीति भी शासन का एक अवश्यक और विशेष अंग है। कांग्रेस यदि प्रत्येक प्रमुख पार्टी को डेढ़ या दो करोड़ डालर देना चाहे, जैसा कि वार-वार सुझाया भी जाता है, तो उसे पहले स्वयं जॉर्ज वाशिंगटन के समय से चला आया

यह विश्वास छोड़ना पड़ेगा कि पार्टियों में किसी प्रकार का अनौचित्य अवश्य है। कांग्रेस अपनी समितियों का संगठन और उनके संचालक पदाधिकारियों का चुनाव तो पार्टी के आधार पर करती है, परन्तु विधि-निर्माण के समय पार्टियों का जिक्र तक करने में उसे घबराहट होती है। पार्टियों को राजनीतिक पद्धति का आवश्यक अंग मानने में एक और बाधा यह है कि बहुत-से बड़े-बड़े चंदा देने वाले उसी ढंग को पसन्द करते हैं जो अब प्रचलित है। वे पार्टियों को अपनी सहायता के बिना स्वतन्त्रता-पूर्वक चलता देखने की अपेक्षा, उनके कामों के लिए धन एकत्र करना अधिक पसन्द करते हैं।

एक सुझाव यह है कि जो तीन-एक करोड़ उत्साही समर्थक अगले नवम्बर में पार्टी के उम्मीदवार को मत देने वाले हों उनमें एक डेढ़ करोड़ से एक-एक डालर एकत्र कर लिया जाय। परन्तु अनुभव बतलाता है कि उचित मात्रा में धन व्यय करके इस सुझाव पर अमल नहीं किया जा सकता।

टेलिवीजन के विकास के कारण राष्ट्रीय आन्दोलन के व्यय का प्रश्न और भी विकट हो गया है। लोग न केवल कन्वेन्शनों को टेलिवीजन में देखना चाहते हैं, वे आन्दोलन के समय प्रमुख उम्मीदवारों के दर्शन भी पर्दे पर करना चाहते हैं।

ज्यों-ज्यों पर्दे पर उम्मीदवारों के दर्शन करने की इच्छा बढ़ती जायगी त्यों-त्यों आन्दोलन का व्यय भी बढ़ता जायगा और यदि उसका हिसाब ईमानदारी से रखा गया तो यह असम्भव नहीं कि वह प्रति व्यक्ति चालीस या पचास सेण्ट तक पहुंच जाय।

यदि संगठन सुव्यवस्थित हो और अगले निर्वाचन तक भली प्रकार तथा निर्विघ्न चलता रहे तो उसे आमतौर पर "मशीन" कहा जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में राजनीतिक "मशीनों" के विकास के लिए परिस्थितियां अनुकूल हैं, क्योंकि प्रति दो वर्ष पीछे तो कांग्रेस के चुनाव आ जाते हैं, और राज्यों के तथा प्राथमिक मण्डलों के चुनाव बीच में भी होते रहते हैं। केवल बड़े राष्ट्रीय कन्वेन्शन चार वर्ष पश्चात् होते हैं। बीच में उनकी हलचल समाप्त-सी हो जाती

है। पार्टियों की राष्ट्रीय समितियां राष्ट्रपति के चुनावों के मध्य में अपना काम चुपचाप करती रहती हैं, और राज्योय तथा स्थानीय 'मशीनें' तो सदा ही काम में लगी रहती हैं।

'मशीन' का निर्माण ऐसे बहुत-से पेशेवर राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं से मिलकर होता है जिनकी आजीविका ही राजनीति से चलती है। उनकी तुलना में, जो सुधारक उसे केवल फुरसत के समय राजनीतिक आन्दोलन करके नष्ट कर देना चाहते हैं वे निरे शौकिया राजनीतिज्ञ होते हैं, और उनके 'मशीन' से पराजित हो जाने की ही सम्भावना अधिक रहती है। 'मशीन' के राजनोतिज्ञ ऐसे-ऐसे कठिन काम प्रायः प्रति-दिन करते रहते हैं जैसे कि समाज से सम्पर्क रखना, अपने शत्रुओं की गति-विधि का पता लगाते रहना, जिन लोगों के कानून-सम्मत या कानून-विरुद्ध स्वार्थों पर कानून का प्रभाव पड़ता हो उनसे मेल रखना, और विधि-निर्माताओं तथा शासकों को यह बतलाते रहना कि कौन-कौन क्या-क्या हैं, इत्यादि। 'मशीन' के कार्यकर्त्ता पुरस्कृत भी नाना प्रकार से होते रहते हैं। कुछ के नातेदारों को सरकारी नौकरियां मिल जाती हैं, और कुछ स्वयं ही सरकार के राजनीतिक चक्र में नाके के स्थानों पर तैनात हो जाते हैं। सम्भव है कि उन्हें उन व्यापारिक फर्मों से भी कुछ मिलता हो जो कोई लाइसेंन्स या सरकारी ठेका लेना चाहती हैं या केवल इतना चाहती हैं कि पुलिस उनकी ओर से आंख मीचे रहे।

सर्वाधिक-सुसंचालित मशीनों का संचालन एक 'मालिक' करता है। वह प्रायः कोई पद स्वीकार नहीं करता। जिन डोरियों से पदाधिकारियों को काबू में रखा जाता है वह उन्हीं में इतना उलझा रहता है कि रोजाना के दफ्तरी काम के लिए वह समय नहीं निकाल सकता। वह अपने गिरोह को कठोर अनुशासन में रखता है और बदले में उसका ऐसा मार्ग-प्रदर्शन करता और ऐसा मेल मिलाता है कि उसे अपनी सफलता का निश्चय हो जाता है।

जब किसी को कोई राजनोतिक काम निकालना हो तब "मालिक" से "मिलना चाहिए"। वह सब का मित्र होता है, विशेषतः गरीबों का, विदेशों से आये हुए वासाधियों का, और छोटे-मोटे अपराधियों का। 'मालिक' स्वयं भी प्रायः किसी

विदेश से आये हुए पिता का ही पुत्र होता, और गरीबों की किसी वस्ती में से उठकर अपनी संगठन-कुशलता और गरीबों के विषय में अपनी जानकारी के बल पर राजनीतिक 'मशीन' में ऊपर तक पहुंचा हुआ होता है।

प्रसिद्ध राजनीति-विशेषज्ञ जॉर्ज-प्लुंकिट को वहुधा यह कहते उद्धृत किया जाता है "यदि मेरे जिले में कोई परिवार ज़रूरतमन्द हो तो मुझे उसका पता धर्मार्थ संस्थाओं से भी पहले चल जाता है, और मैं और मेरे आदमी सबसे पहले उनके पास पहुंच जाते हैं। मेरे पास ऐसे मामलों की देख-भाल करने के लिए एक विशेष सेना है। इसका फल यह है कि गरीब लोग जॉर्ज डब्लू० प्लुंकिट को अपना पिता समझते और कोई भी कठिनाई होने पर उसके पास चले आते हैं और चुनाव के दिन उसे भूलते नहीं।"

राजनीतिक "मालिक" का काम ही दुखियों को सहारा देना है, वे चाहे गरीब हों चाहे अमीर। एक हाथ से तो वह किसी विदेश से आयी हुई ऐसी परेशान माता को सहायता देता है जिसका पुत्र कष्ट में हो, अथवा उस वृद्ध दम्पति को इन्धन या भोजन भेजता है जिसे सम्मानित धर्मार्थ संस्थाओं ने 'अपात्र' ठहरा दिया हो, अथवा पार्टी के किसी कार्यकर्ता के पुत्र की नौकरी पुलीस में लगवा देता है। इन कामों को उदारतापूर्वक करते हुए वह सदाचार या धर्म के वारीक विचारों में नहीं पड़ता। उसकी इन सेवाओं के कारण उसके ग्राहक हृदय से उसके प्रशंसक वन जाते हैं और उनके सब नातेदार अपने मत उसी उम्मीदवार को देते हैं जिसे वह अपना कृपा-भाजन बतलाता है।

दूसरे हाथ से वह अमीरों और उनके मित्रों की कठिनाइयां हल करता है— ठेकेदारों की, माल ढोने वाली कम्पनियों की, भूमिपतियों की, शराब के व्यापारियों की, या शायद उन कम प्रतिष्ठित नागरिकों की जिनका काम चल सकता है वशर्ते कि कानून सख्ती से लागू न किया जाय। वह टाउन हॉल या राज्य के वड़े दफ्तर में उन लोगों से "कह" देता है जो "मालिक" के मित्रों या अनुयायियों के मतों के वल पर चुने गये होते हैं। वह अपने धनी ग्राहकों से उनका कृतज्ञता-पूर्ण दान लेकर उसे अपने कार्यकर्ताओं और गरीबों में बांट देता है।

दुस्साहसी डाकुओं के ढंग की पुरानी राजनीतिक 'मशीन' अब परिस्थितियां बदल जाने के कारण खोखली पड़ गयी हैं। अब सामाजिक सुरक्षा बढ़ गई, विदेशों से आने वाले वासार्थियों के लिये नये कानून बन गये और नौकरियों में योग्यता का आदर अधिक होने लगा है। बड़े नगरों में अब ऐसे गरीब और परेशान विदेशी वासार्थी पहले से कम रह गये हैं जिनकी सेवा राजनीतिक पार्टियों के कार्यकर्ता, अपरिचित देश में एकमात्र दयालु मित्र के रूप में कर सकें। अब 'मेहरबानी' की ऐसी नौकरियां भी पहले से कम रह गयी हैं जिनका उपयोग पार्टी के कार्यकर्ताओं को इनाम देने के लिए किया जा सके। बहुत-से शहरों की पुलिस अब भी भ्रष्टाचारी है, और उससे 'मशीन' को सहारा मिलता है। परन्तु सारे देश को मिलाकर देखने पर सन् १९५२ के चुनावों में प्रकट हो गया था कि जिन बड़े नगरों में मन्दी के समय डिमोक्रेटिक 'मशीन' का बोलबाला था उनमें उसका बल प्रायः समाप्त हो चुका था।

दोनों बड़ी पार्टियों ने राजनीति में भाग लेने के 'शौकीन' लोगों की 'मशीन' संगठित करने के प्रयत्न भी किये हैं। पार्टियां अपने ऐसे उत्साही समर्थकों का स्वागत करती हैं जो केवल शौक के लिए, या सभा और कन्वेन्शन में जाने का या कभी नामजदगी मिल जाने का अवसर पाने के लिए, काम करें। सन् १९५२ में आइज़नहोवर और स्टीवन्सन, दोनों के व्यक्तित्व से बहुत-से उत्साही कार्यकर्ता आकर्षित हो गये थे। उनमें बहुतेरे युवक भी थे। सम्भव है इन 'शौकीन लोगों के संगठन, भविष्य में मत प्राप्त करने के लिए जनता तक पहुंचने में और भी अधिक उपयोगी सिद्ध हों। यदि ऐसा हुआ तो राजनीतिक शक्ति के स्रोतों में यह एक नया परिवर्तन होगा। भूतकाल में शक्ति का स्रोत वे असहाय निर्धन थे जिन्हें दया के मूल्य से खरीदा जा सकता था, और भ्रष्टाचारी 'मशीन' के व्यवहारकुशल कार्यकर्त्ता चुनाव-केन्द्रों में उनकी भीड़ लगा दिया करते थे। शक्ति का यह पुराना स्रोत अब सूखता जा रहा है, क्योंकि असहाय निर्धनों की संख्या घट गयी है। सन् १९५२ में शक्ति के स्रोत राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार व्यक्तियों में केन्द्रित हो गये प्रतीत होते थे। दोनों व्यक्तियों, को उम्मीदवार, 'मशीनों' को प्रसन्न करने के लिए नहीं, अपितु स्वतन्त्र मतदाताओं और मध्य-वित्त वर्ग के 'शौकीन' कार्यकर्ताओं को आकृष्ट करने के लिए बनाया गया

था। ये कार्यकर्ता कृतज्ञता या इनाम पाने की आशा से इतना प्रेरित नहीं थे, जितना कि ये अपने प्रिय उम्मीदवारों के प्रति हार्दिक प्रशंसा के भावों से प्रभावित थे। यदि यह परिवर्तन स्थायी हो गया तो सम्भव है कि इसका प्रभाव उन वहुत-से व्यावहारिक नियमों पर भी हो जाय जो कि राजनीति के क्षेत्र में परम्परा से चले आ रहे हैं।

चुनाव के दिन मतदान करवाने में राजनीतिक पार्टियां महत्वपूर्ण भाग लेती हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में कोई १ लाख ३० हजार क्षेत्र अर्थात् चुनाव-केन्द्र हैं। इनमें से प्रत्येक में ३०० से १००० तक मतदाता अपना मतपत्र डालते हैं। चुनाव का स्थान प्राय: किसी स्कूल या खाली गोदाम, या आग वुझाने के इंजन-घर, या पुलीस थाने में होता है। जव से स्त्रियों को मताधिकार मिला है तव से चुनाव के स्थान, सन् १९२० से पहले की अपेक्षा अधिकाधिक स्वच्छ रहने लगे हैं।

चुनाव-अधिकारियों का चुनाव तो दोनों मुख्य पार्टियां करती हैं, परन्तु उनको पारिश्रमिक राज्यों के कानूनों के अनुसार सरकारी कोष से दिया जाता है। वे मतदाताओं के नामों को जांचते हैं, यह देखते हैं कि प्रत्येक मतदाता को एक ही मतपत्र मिले, मतपत्र-पेटी या मत देने के यन्त्र पर दृष्टि रखते हैं कि किसी प्रकार का धोखा न होने पावे, और अन्त में शाम को देर तक वैठ कर मतों को गिनते और परिणाम की सूचना देते हैं। दोनों पार्टियां चुनाव के प्राय: प्रत्येक स्थान पर अपने निरीक्षक नियुक्त कर देती हैं कि वे किसी भी प्रकार की अनियमितता को तुरन्त वतला दें। इन निरीक्षकों को पारिश्रमिक पार्टी ही देती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में मतपत्र की गोपनीयता का सिद्धान्त भली-भांति स्थिर हो चुका है। हो सकता है कि कहीं-कहीं राजनीतिक 'मशीन' यह जांचने का प्रवन्ध कर दे कि मतदाता मत किस प्रकार डाल रहे हैं, परन्तु इस प्रवन्ध पर विरोधी पार्टी के निरीक्षकों द्वारा प्राय: आपत्ति की जाती है।

मतदान की अमेरिकी पद्धति की एक भारी त्रुटि "लम्वा मतपत्र" है। मतपत्र पर राज्य, जिले और नगर के पचास से सौ तक पदों का अंकित होना कोई असाधारण वात नहीं है। और हैरान मतदाता से उस पर ही निशान वनाने की आशा

रक्खी जाती है। एक बार एक मतपत्र बारह फुट लम्बा था और उस पर लगभग पांच सौ नाम थे। मतदाताओं को राज्य के गवर्नर के अतिरिक्त, कोई आधा दर्जन अन्य अधिकारियों, काउण्टी कमिश्नरों, जजों, कोषाध्यक्ष, जिला-अटर्नी और अन्य कई पदाधिकारियों के लिए मत देने को कहा जाता है। नगरों में उन्हें मेयर, ऐल्डरमैनों, स्कूल बोर्ड के सदस्यों, नगर की कचहरी के जजों, असेसरों, टैक्स कलेक्टरों और अन्य दर्जनों पदों का चुनाव करना पड़ता है।

केवल किसी पेशेवर राजनीतिज्ञ के लिए यह सम्भव हो सकता है कि वह इतने पदों में कुछेक से अधिक के नाम जानता हो; और उसके भी उन्हें जानने का कारण यह है कि उन्हें नामज़द करने में उसका हाथ होता है। मतदाता केवल राष्ट्रपति, गवर्नर (राज्यपाल), मेयर (नगर प्रमुख) और कुछेक अन्य पदों के लिए मत देते हैं, और शेष को वे या तो छोड़ देते हैं या आंख मींच कर मत दे देते हैं।

पुराने ढंग के राजनीतिज्ञ लम्बा मतपत्र इसलिए पसन्द करते हैं कि इससे उन्हें जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व से बचे रहने का अवसर मिल जाता है। जिन व्यक्तियों को वे किसी कारण पुरस्कृत करना चाहते हैं उन्हें वे ऐसे गौण पदों के लिए नामजद कर देते हैं जिन्हें जनता याद नहीं रख सकती या जिनकी उपयोगिता वह समझ नहीं सकती। फल यह होता है कि इन पदों का चुनाव जनता आंख मींच कर देती है। जनता द्वारा निर्वाचित हो जाने के पश्चात्, राजनीतिक नेताओं के ये मित्र उस गवर्नर या मेयर तक से स्वतन्त्र हो जाते हैं जो जनता द्वारा आंख खोलकर चुने होते हैं।

इस पद्धति के कारण राज्यीय या स्थानीय निर्वाचन, संघीय की अपेक्षा कम लोकतन्त्रीय होते हैं। राष्ट्र की दृष्टि से देखा जाय तो जनता केवल इन पदों के लिए मत देती है—राष्ट्रपति, कांग्रेस-सदस्य, और सेनेटर। ये सब व्यक्ति इतने महत्वपूर्ण हैं कि ये जनता की आंखों के सामने रहते हैं और वह उन्हें उनके कामों के लिए उत्तरदायी ठहरा सकती है।

बड़े मतपत्र की त्रुटियां दूर करने के लिए मतपत्र को छोटा करने का आन्दोलन बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में आरम्भ हुआ था। "शार्ट-बैलट आर्गेनाइजेशन" अर्थात्

लघु मतपत्र संगठन का प्रथम अध्यक्ष उडरो विलसन था। उसका अभिप्राय अधिकतर निर्वाचित पदों को नियुक्त पदों में वदल देने का था, जिससे कि राज्यों में भी निम्न कर्मचारियों की नियुक्ति, संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति के समान गवर्नर या मेयर कर दे और स्वयं प्रशासन का उत्तरदायी प्रमुख वना रहे। परन्तु राजनीतिज्ञों को अव भी लम्वा मतपत्र ही अच्छा लगता है। राज्यों के शासन में जनता की रुचि मन्द और अस्थिर होती है। इसलिए वहां इस दशा में वहुत कम उन्नति हो पायी है। परन्तु नगरों में अच्छी उन्नति हो गयी है। वहां सन् १९१० के पश्चात् अधिकाधिक नियुक्तियों पर मेयर का नियन्त्रण रहने लगा है। और कई नगरों में स्थानीय शासन का रूप कमीशन का या सिटी-मैनेजर का (अध्याय ९ देखिये) हो जाने के कारण मतदाताओं को छोटे मतपत्र का लाभ मिलने लगा है।

सम्भव है कि लम्वे मतपत्र के कारण मतदाताओं को विशेषतः स्वतन्त्र मतदाताओं की संख्या घटाने में कुछ सहायता मिली हो। जो मतदाता देख भाल कर चुनाव करना चाहता है वह मतपत्र पर दर्जनों अज्ञात नाम देख कर खीझ जाता है। परन्तु जिस मतदाता की पार्टी निश्चित हो उसे लम्वा मतपत्र अधिक स्वाभाविक लगता है।

समस्त मतदाताओं में से कोई तीन चौथाई के विषय में ख्याल है कि वे वंश परम्परा से किसी एक ही पार्टी के सदस्य चले आ रहे हैं और वे विरोधी पार्टी के किसी आदमी को मत देकर अपने हाथ मलिन करने के विचार मात्र तक से घृणा करते हैं। इसलिए चुनावों का फैसला, द्विदलीय राज्यों में तो शेष २५ प्रतिशत मतदताओं द्वारा होता है और एकदलीय राज्यों में उन छोटे-छोटे दलों द्वारा, जो कि पार्टी की सम्मानित परिधि के भीतर रहकर भी नामजदगियों पर झगड़ा करते रहते हैं। स्वतन्त्र मतदाताओं के इस भाग का महत्व सर्वाधिक है। इनकी संख्या वढ़ रही दीखती है, और इनके कारण ही राष्ट्रीय चुनावों को वह अनिश्चितता प्राप्त होती है जो कि लोकतन्त्रीय पद्धति का आधार समझी जाती है।

राष्ट्रीय संकट के समय राजनीतिक पार्टियां अपनी निर्वाचन शक्ति को अपने नेता अर्थात् राष्ट्रपति में या उस पद के उम्मीदवार में केन्द्रित कर देती हैं। उसे

ही देश परम्परागत मतदाताओं को चुनाव के दिन उनकी आराम कुरसियों पर से उठाकर मत देने के लिए बाहर लाना होता है। उसे ही, अपने प्रतिस्पर्धी अर्थात् विरोधी पार्टी के उम्मीदवार के मुकाबले में स्वतन्त्र मतदाताओं के मत जीतने पड़ते हैं।

निर्वाचन और पद-ग्रहण के पश्चात् विजयी राष्ट्रपति से आशा की जाती है कि वह कांग्रेस में अपनी पार्टी का नेतृत्व करेगा, जिससे कि वह जो कानून बनवाना चाहे सो बनवा सके। संकट के समय राष्ट्रपति चाहता है कि वह इतिहास में अपना नाम कर जाय। आन्दोलन की झोंक में की हुई अदूरदर्शिता पूर्ण प्रतिज्ञाओं और इतिहास के निर्माताओं के उत्कृष्ट कार्यो से तुलना का प्रसंग आने पर वह स्वभावतः भूत की अपेक्षा भविष्य पर दृष्टि रखकर चलना पसन्द करता है। इस प्रयत्न में उसे कांग्रेस के नेताओं, अपने से बहुधा ईर्ष्या करने वाले अपनी पार्टी के नेताओं और उन विरोधी नेताओं से भी भुगतना पड़ता है जो कि अब शायद गत चुनाव में पराजित, राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार अपने नेता के प्रभाव और नेतृत्व में रहना या न रहना चाहते हों।

संकट के समय सब पार्टियों का नेता बन जाने का अवसर यही होता है, और युवक अमेरिकनों को जीवन में एकमात्र समय यही दीखता है। बूढ़े अमेरिकनों का एक भिन्न प्रकार के समय की, सन् १९२० सरीखे की, याद है, जब कि प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् लोग थके हुए थे और किसी के चलाये कहीं भी जाना नहीं चाहते थे।

प्रायः देखा गया है कि जब अमेरिकी जनता का आपत्ति से सामना नहीं होता तब पार्टियां उम्मीदवारों के रूप में मतदाताओं के सामने ऐसे पुतले खड़े कर देती हैं जिन में नेतृत्व का गुण प्रायः एक भी नहीं होता। परन्तु जब आंधी का मौसम आता है तब वे न जाने किस रहस्यमय विधि से लिंकन और विलसन सरीखे पुरुष खोज निकालती हैं।

कुछ विद्यार्थियों का विचार है कि इस विधि में ऊपर-ऊपर से जो रहस्यमयता दीख पड़ती है, वह वास्तविक नहीं है। 'ह्वाइट हाउस' (राष्ट्रपति का कार्यालय

और निवास-भवन) सूचनाओं के संसार व्यापी जाल का केन्द्र है। वहां राष्ट्रपति को, देशी और विदेशी, गुप्त और प्रकट, सब जानकारियां, वह संक्षिप्त या विस्तृत जिस किसी भी रूप में चाहे, मिल सकती हैं। अनेक राष्ट्रपति ऐसे हो चुके हैं जो कि पहले साधारण मनुष्य जान पड़ते थे, परन्तु जब उन पर संसार की जानकारियों की तीव्र धारा छोड़ी गयी तब वे रातों-रात कुशल राजनीतिज्ञ बन गये। एक कल्पना यह भी है कि जब कोई गम्भीर संकट सामने नहीं होता तब राष्ट्रपति आलसी हो जाता है और उसमें महत्ता के कोई चिह्न दिखलाई नहीं पड़ते। परन्तु आन्धी के समय वही मनुष्य जाग कर अपने आसपास उपलब्ध साधनों से ऐसे बड़े-बड़े काम कर गुजरता है जिन की उसके मित्रों तक ने कभी कल्पना भी नहीं की होती।

सम्भव है कि आज की उत्तेजक घटनाओं के प्रभाव से मुख्य पार्टियों का संगठन और काम-काज के ढंग, परिवर्तन की प्रक्रिया में से गुजर रहे हों। सन् १९३० से निरन्तर संकट की जो स्थिति चल रही है और जिसके अभी कई वर्ष तक चलते रहने की सम्भावना है उसके कारण 'ह्वाइट हाउस' और कांग्रेस, दोनों में लोकप्रिय नेतृत्व और राजनीतिज्ञता के असाधारण गुणों की अपेक्षा होने लगी है। रेडियो और टेलिवीजन के कारण अब ऐसे अवसर बहुत कम रह गए हैं कि 'अन्धकारमय' कमरों में गुप्त रूप से किये हुए रहस्यमय कामों से भी किसी को यश की प्राप्ति हो जाय। रहन-सहन का दर्जा ऊंचा हो जाने के कारण अब वह 'भीड़' छंट गयी है जो कभी स्थानीय राजनीतिक "मालिकों" की कृतज्ञ रहा करती थी, और जो पीछे से राष्ट्रपति रूजवेल्ट को अनुगामी बन गयी थी, क्योंकि वह आवश्यकता के समय उसका मित्र सिद्ध हुआ था। आज शायद वही लोग अच्छे सुन्दर मकानों में रहते हैं और अपना मत देने की मांग की जाने पर सर्वथा भिन्न प्रकार का मूल्य चाहते हैं। चुनावों में धन शक्ति अब भी बहुत है और दोनों पार्टियों पर चंदा देने वालों का प्रभाव प्रत्यक्ष है। परन्तु मतदाता भ्रष्टाचार को बुरा मानने लगे प्रतीत होते हैं, शायद भूत-काल की अपेक्षा कहीं अधिक।

अब पार्टियां अपने अनुयायियों को निम्नतम स्तरों पर संगठित करने के लिए नये से नये उपाय सोचने लगी हैं। राजनीति-विज्ञान वेत्ता पार्टियों के नेताओं को

अधिक अच्छे उपायों से पार्टियां संगठित करने के लिए प्रेरित करने लगे हैं, जिससे वे उनके "प्लेटफार्मों" की तैयारी वाद-विवाद आदि की लोकतन्त्रीय विधियों से कर सकें। वे कहते हैं कि 'कन्वेन्शनों' को लोकतन्त्रीय पद्धति से करने पर पार्टी के सदस्य उनमें एकत्र होने लगेंगे और कांग्रेस में तथा राज्यीय विधान मण्डलों में भी उनके प्रतिनिधि अपना मत अधिकाधिक पार्टी के ही पक्ष में देने लगेंगे। लक्षणों से प्रतीत होता है कि पार्टियों के कुछ नेता नये उपायों पर विचार करने लगे हैं और सम्भव है कि कई दृष्टियों से पुरानी परम्परागत विधियों में परिवर्तन हो जाय।

अध्याय ४

शासन

संविधान में लिखा है कि "एक्जेक्यूटिव (कार्यपालिका) के अधिकार राष्ट्रपति में निहित होंगे।" ये 'कार्यपालिका के अधिकार' क्या हैं, इस प्रश्न पर कांग्रेस और राष्ट्रपति में सदा किसी न किसी प्रकार का संघर्ष चलता रहता है। राष्ट्रपति के अधिकारों की अनिश्चितता तथा उनके एक ही व्यक्ति के हाथ में रहने के कारण, यह सम्भावना रहती है कि कहीं उसे किसी ऐसी असाधारण परिस्थिति में अपना पद और अधिकार ग्रहण न करना पड़े जिसके लिए कोई नियम निर्धारित नहीं किये गये।

निश्चय ही, संविधान ने राष्ट्रपति को निश्चित कुछ अधिकार दिये हैं। वह किसी बिल के विरुद्ध अपने 'वीटो' अर्थात् निषेधाधिकार का प्रयोग कर दे तो वह कांग्रेस के समस्त मत-बल से षष्ठांश के समान हो जाता है, क्योंकि यदि राष्ट्रपति 'हां' कह दे तब तो बिल कांग्रेस के बहुमत मात्र से पास हो सकता है, और यदि वह 'ना' कर दे तो कांग्रेस के दो तिहाई मतों की अवश्यकता पड़ती है।

वैदेशिक मामलों में पहल राष्ट्रपति ही करता है। राष्ट्रपति ने जो सन्धि की हो उसे सेनेट कार्यान्वित होने से अवरुद्ध तो कर सकती है, परन्तु वह स्वयं न तो कोई सन्धि कर सकती है और न राष्ट्रपति को किसी से कोई सन्धि करने के लिए विवश कर सकती है।

इसी प्रकार, शासन की 'एक्जेक्यूटिव' (कार्यपालिका) शाखा और सैनिक विभागों के उच्च अधिकारियों की नियुक्ति करना राष्ट्रपति का काम समझा जाता

है। परन्तु उन नियुक्तियों की पुष्टि सेनेट करती है। बहुधा ऐसा होता है कि कोई सेनेटर नौकरी के किसी उम्मीदवार की ओर राष्ट्रपति का ध्यान आकृष्ट करता है, और राष्ट्रपति बिना इस बात पर गम्भीरतापूर्वक विचार किए उसे इनकार नहीं कर सकता कि 'ह्वाइट हाउस' (अर्थात् राष्ट्रपति की सरकार) को उस सेनेटर के समर्थन की आवश्यकता कहाँ तक पड़ेगी। "सेनेटर का शिष्टाचार" नाम का एक रिवाज भी है। इसके अनुसार बहुमत दल का कोई सेनेटर अपने राज्य में किसी संघीय पद पर किसी व्यक्ति की नियुक्ति को यह कहकर रोक सकता है कि यह आदमी मुझे "व्यक्तिशः नापसन्द" है। तब उसके साथी सेनेटर भी उस नियुक्ति को पुष्ट करने से इनकार करके "शिष्टाचार" का पालन करते हैं। परन्तु इस रिवाज के कारण, जब रिपब्लिकन पार्टी के लोग पदारूढ़ हों तब व दक्षिणी राज्यों में संघीय पदों पर अपनी नियुक्तियां करने में, और जब डिमोक्रेटों की बारी आती है तब वे उत्तर के रिपब्लिकन राज्यों में वैसा करने में संकोच नहीं करते।

अंग्रेज विचारक जान लॉक के विचारों ने संयुक्त राज्य अमेरिका के संस्थापकों को बहुत प्रभावित किया था। उसने अपनी पुस्तक "ट्रिटिज़ेज ऑव गवर्नमेण्ट" (शासन के निबन्ध) में इंगलेण्ड के कानूनी "विशेपाधिकारों" अर्थात् राजा द्वारा अपने अधिकारों के विशिष्ट तथा तर्क-विरुद्ध प्रयोग के रूप का वर्णन किया है। लॉक ने कहा है—

"विशेपाधिकार हमारे चतुरतम और उत्कृष्टतम राजाओं के हाथ में सदा सबसे अधिक रहता था, क्योंकि प्रत्यक्ष ही उनके व्यवहार का लक्ष्य प्रधानतया जनता के हित के अतिरिक्त और कुछ होता था। इसलिए जब ये राजा कानून की लीक से हट कर अथवा उसके विपरीत भी कोई कार्रवाई कर देते थे तब जनता उनसे संतुष्ट होने के कारण, वह जो कुछ भी करते थे उससे अपनी सहमति प्रकट कर देती थी... उसका यह निर्णय ठीक ही होता था कि राजा अपने कानूनों के विरुद्ध कुछ नहीं करते, क्योंकि वे सब कानूनों के आधार और लक्ष्य—जनहित—के अनुकूल ही कार्य करते थे।"

लॉक का कथन यह भी था कि विधि-निर्माण का अधिकार सर्वोपरि है और "जनता ने एकबार उसे जिन हाथों में सौंप दिया वे पवित्र और अपरिवर्तनीय" हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका का बहुत सा राजनीतिक इतिहास, इंगलैण्ड के समान, इन परस्पर-विरोधी सम्बन्धों में व्यावहारिक संगति लगाने का ही इतिहास है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में 'एक्जेक्यूटिव' अर्थात् कार्यपालक शासकों के अधिकारों की सीमाओं का निर्धारण, अधिकाधिक मात्रा में, राष्ट्रपति के सम्बन्ध में जनता का जो मत होता है उसके अनुसार ही होता आया है; विशेषतः तब से जब से कि रेडियो और टेलिविजन ने राष्ट्रपति को जनता के अधिक निकट सम्पर्क में ला दिया है। परन्तु हमारे आरम्भिक इतिहास में भी, राष्ट्रपति कभी-कभी "कानून की लीक से हटकर अथवा उसके विपरीत" काररवाई कर लेते थे।

उदाहरणार्थ, सन् १७९३ में जब फ्रांस ने इंग्लैण्ड से युद्ध की घोषणा कर दी तब राष्ट्रपति वाशिंगटन ने संयुक्त राज्य अमेरिका की तटस्थता घोषित कर दी थी। उसने अपना मत यह बना लिया था कि फ्रान्स के साथ अमेरिका की मित्रता की सन्धि वहां लागू नहीं होती जहां फ्रान्स आक्रान्ता हो। मैडीसन ने तब वाशिंगटन पर संवैधानिक अधिकार के बिना आचरण करने का और इंगलैण्ड के राजा के विशेषाधिकार का अनुकरण करने का आक्षेप किया था।

पुनः सन् १८०३ में, राष्ट्रपति जेफर्सन को अकस्मात ही नेपोलियन से ल्यूइजियाना का प्रदेश खरीद लेने का अवसर मिल गया। यदि इस अवसर का लाभ तुरन्त ही न उठा लिया जाता तो नेपोलियन का मन बदल जाने की पूरी सम्भावना थी। जेफर्सन ने उसे खरीद लिया। उसने निजी बातचीत में माना भी था कि यह "काम संविधान की सीमा से बाहर का" था, परन्तु उसे आशा थी कि कांग्रेस उसे खरीदने के लिए धन देकर उसकी सहायता करेगी। कांग्रेस ने उसका साथ दिया; और यही कारण है कि आज भी मिसिसिपी घाटी के पश्चिमी आधे पर संयुक्त राज्य अमेरिका का ही अधिकार है।

अब्राहम लिंकन ने सम्भवतः संविधान की उपेक्षा, अन्य किसी राष्ट्रपति की अपेक्षा अधिक भिन्न प्रकार की थी, और अमेरिकी जनता उसके इस कार्य का स्मरण

करके उसकी निन्दा नहीं करती। उदाहरणार्थ, लिंकन ने संविधान के बावजूद, "हेबियस-कॉर्पस" के (अर्थात् किसी बन्दी को अदालत में पेश करने की प्रार्थना करने के) अधिकार का प्रयोग स्थगित कर दिया था, और कारण यह बतलाया था कि सारे संविधान को नाश से बचाने के लिए वैसा करना आवश्यक था। उसने प्रश्न किया था, "क्या एक के अतिरिक्त शेष सब कानून अ-पालित ही रहेंगे, और क्या उस एक कानून का उल्लंघन न होने देने के लिए शासन को छिन्न-भिन्न हो जाने दिया जायगा? और ऐसा करने के पश्चात् भी यदि शासन उलट गया तो क्या वह शासकों की प्रतिज्ञा का भंग नहीं होगा, जबकि हमारा विश्वास है कि एक कानून की उपेक्षा कर देने से शासन की रक्षा हो सकती है?"

सन् १९१७ में, संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रथम विश्व-युद्ध में सम्मिलित होने से पूर्व, उडरो विलसन ने कांग्रेस से अमेरिकी व्यापारिक जहाजों को शस्त्रसन्नद्ध करने का अधिकार प्राप्त करने का यत्न किया था। जब कांग्रेस नहीं मानी तब उसने अपने सेनापतित्व के अधिकार का प्रयोग किया और अपनी कुछ सेना को व्यापारिक जहाजों पर तैनात कर दिया।

संविधान के अनुसार, युद्ध की 'घोषणा' करने का अधिकार कांग्रेस का है, और सम्भवतः इस विधान का अभिप्राय यह था कि युद्ध छेड़ने न छेड़ने का निर्णय कांग्रेस किया करे। परन्तु व्यवहार में देश का कोई भी शक्तिशाली अंग ऐसी स्थिति में आ सकता है कि वह संयुक्त राज्य अमेरिका को युद्ध में फंसा दे। यहां तक कि सन् १९०३ में सैन फ्रान्सिस्को के शिक्षण-बोर्ड तक ने, केलिफोर्निया में प्रचलित जन-भावना का लिहाज करके, यह आज्ञा दे दी थी कि स्कूलों में जापानी बालकों को गोरे बालकों से पृथक् रक्खा जाय। इस आज्ञा के कारण जापान में साधारण जनता की भावनाएं भयंकर रूप में भड़क उठीं। तब राष्ट्रपति थिओडोर रूज़वेल्ट ने अपने मन्त्रिमण्डल का एक सदस्य जापानियों को यह विश्वास दिलाने के लिए सैन फ्रान्सिस्को भेजा कि मैंने तुम्हारे अपमान का प्रतिकार करने का यत्न कर देखा है, यद्यपि मुझे उक्त आज्ञा वापस लेने के लिए शिक्षण-बोर्ड को विवश करने का कोई अधिकार नहीं है।

अपने अधिकार के अन्तर्गत कोई भी कार्रवाई करके और युद्ध की परिस्थिति उत्पन्न करके, राष्ट्रपति भी युद्ध को देश के द्वार पर लाकर खड़ा कर सकता है। उदाहरणार्थ, उडरो विलसन ने सन् १६१७ में ब्रिटिशों और जर्मनों द्वारा अमेरिका की तटस्थता के अधिकारों के उल्लंघन का प्रतिवाद ऐसे शब्दों में किया था कि उनसे प्रकट होता था कि अमेरिकी जनमत धीरे-धीरे तटस्थता से हटकर जर्मनी विरोधी होता जा रहा है। जब उसने कांग्रेस से युद्ध की घोषणा करने के लिए कहा तब उसके लिए इनकार करने का अवसर ही नहीं रहा था। इसके विपरीत, सन् १८१२ में कांग्रेस का बहुमत इंगलैण्ड से युद्ध करने का प्रबल पक्षपाती था। कुछ ऐतिहासिकों का मत है कि राष्ट्रपति मैडीसन को सन् १८१२ के युद्ध में उसकी इच्छा के विरुद्ध घसीट लिया गया था।

वतुस्तः, राष्ट्रपति को युद्ध अथवा शान्ति के प्रश्नों का निर्णय, बहुधा, कांग्रेस या अमेरिकी जनता द्वारा उन पर विचार की प्रतीक्षा किए बिना करना पड़ जाता है। राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट ने पर्ल-हार्बर पर जापान के आक्रमण से पहले कई बार हिटलर के विरुद्ध शीघ्र-शीघ्र ऐसी काररवाइयां की थीं जो विलम्ब करने से शायद न की जा सकतीं। ग्रीनलैण्ड के तट पर एक जर्मन चौकी पर अधिकार कर लेने और आइसलैण्ड की रक्षा के लिए सेनाएं भेज देने की काररवाई भी इन्हीं में से एक थी। बर्लिन पर रूसियों की घेरा-बन्दी और दक्षिणी कोरिया पर कम्यूनिस्ट आक्रमण के समय राष्ट्रपति ट्रूमन को भी ऐसी ही आकस्मिक आपत्तियों का सामना करना पड़ा था। ये दोनों आक्रमण भी उसी प्रकार स्वतन्त्र संसार को टटोलने के लिए किए गए थे, जैसे कि जापानियों, जर्मनों और इटालियनों ने किए थे और जिनका परिणाम द्वितीय विश्व-युद्ध हुआ था। यदि बर्लिन और कोरिया में रूसियों को तुरन्त ही जवाब न दिया जाता तो संसार तृतीय विश्व-युद्ध के मार्ग पर जा पड़ता। संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति ही अपने अधिकार का प्रयोग करके इन आकस्मिक संकटों का सामना कर सकता था, अन्य कोई नहीं।

राष्ट्रपति को जब कोई कार्रवाई करने का संवैधानिक अधिकार हो तब भी विरोधी कांग्रेस उसे अपनी नीति कार्यान्वित करने के लिए धन देने से इनकार करके

उसका मार्ग अवरुद्ध कर सकती है। राष्ट्रपति ट्रूमन ने जब "नाटो" (नार्थ-ऐटालाण्टिक-ट्रीटी-औरगेनाइज़ेशन) की आरम्भिक रक्षा-सेना को सहारा लगाने के लिए अमेरिकी सेनाएं युरोप भेजी थीं तब उन्होंने वैसा सेनापति की हैसियत से किया था। भूत-काल में अन्य भी कई राष्ट्रपति ऐसा कर चुके थे। जब उन्हें विदेशों में सेना भेजना उचित जान पड़ा तब उन्होंने अपने अधिकार का प्रयोग करके वैसा कर दिया। राष्ट्रपति ट्रूमन के ऐसा करने पर कांग्रेस में बड़ा विवाद हुआ था कि राष्ट्रपति को सेनाएं युरोप भेजने का अधिकार है या नहीं; और उनके कई विरोधियों ने तो व्यय में कटौती का प्रस्ताव करके उनके हाथ बांध देने का भी यत्न किया था परन्तु यह संघर्ष संवैधानिक कम और राजनीतिक अधिक था।

कांग्रेस के साथ राष्ट्रपति के सम्बन्धों का रूप, 'एक्जेक्यूटिव' (कार्यपालकों) और विधि-निर्माताओं में अधिकार-प्राप्ति तथा राजनीतिक लाभ-प्राप्ति के उलझन-भरे संघर्षों का मिला-जुला रूप है। संसदीय पद्धति में प्रधान मन्त्री के दल के प्रायः सभी सदस्य उसका समर्थन ही करते हैं, क्योंकि यदि वह किसी महत्वपूर्ण प्रश्न पर पराजित हो जाय तो वह और उसका दल दोनों, पद-च्युत हो जाते हैं। परन्तु कांग्रेस में 'ह्वाइट हाउस' के किसी भी प्रस्ताव पर दोनों दल साधारणतया बंट जाते हैं। कुछ सदस्य तो राष्ट्रपति से सहमत या असहमत होते हैं, और अन्य, उसकी नीतियों के पक्ष या विपक्ष में मत केवल दलीय कारणों से देते हैं। वास्तव में जिन शक्तियों का प्रभाव पड़ रहा होता है उनका परिचय संविधान को पढ़ने से नहीं मिल सकता। यदि राष्ट्रपति कांग्रेस में, और विरोधी दल में भी मित्र बनाने की कला में कुशल हो तो वह बहुतेरे मत केवल मित्रता के द्वारा प्राप्त कर सकता है। यदि राष्ट्रपति को केन्द्रीय सरकार में नियुक्तियां करनी हों और उसने नियुक्त व्यक्तियों के नामों की घोषणा अभी न की हो तो वह,अपने शत्रुओं को भी अपने समर्थक पोषकों को नौकरी दिलवाने की सुविधा देकर उनके मत खरीद सकता है। प्रायः देखा जाता है कि जिस कांग्रेस सदस्य को अपने सिद्धांतों के कारण राष्ट्रपति का पक्ष लेना पड़ता है उसे अपने समर्थकों को नौकरियों पर लगवाने का उतना अवसर नहीं मिलता जितना कि राष्ट्रपति के विरोधी दल के किसी-किसी सदस्य को मिल जाता है। तेल उसी धुरी में डाला जाता है जो आवाज करती है।

इसीलिए कहते हैं कि प्रत्येक राष्ट्रपति जब पहले पहल 'ह्वाइट हाउस' में पहुँचता है तब वह "हनीमून" (सुहाग यात्रा) करता है। उस समय उसके हाथ में बहुतेरी नौकरियां होती हैं जिनसे वह अपने शत्रुओं को शान्त कर सकता है। ज्योंही उसकी नौकरियों का खजाना घटता है त्योंही कांग्रेस और 'ह्वाइट हाउस' में परम्परागत संघर्ष फिर छिड़ जाता है ; और तभी से राष्ट्रपति को अपनी आकर्षण-शक्ति और जनता के समर्थन पर निर्भर रहना पड़ता है।

राष्ट्रपति फ्रेंकलिन रूज़वेल्ट ने अपनी "अंगीठी के पास बैठकर बातचीत करने" का सिलसिला शुरू करके रेडियो का प्रयोग प्रभावशाली ढंग से करने की परम्परा डाली थी। कई बार क्रुद्ध और गुर्राती हुई कांग्रेस के साथ कठिन संघर्षों में रूज़वेल्ट अपनी बात स्वीकृत करवा लेने में सफल हुए थे, क्योंकि कांग्रेस में उसके शत्रुओं को अपने राज्य की जनता का भय लगा रहता था।

इसके विपरीत, यदि राष्ट्रपति अपने दल के किसी कांग्रेस-सदस्य या सेनेटर को छाँटने का यत्न करे, तो उनका समर्थन करने के लिए जनता खड़ी हो जाती है। सन् १९३८ में रूज़वेल्ट ने कुछ ऐसे डिमोक्रेटों को मतदाताओं से हरवाने का प्रयत्न किया था जो उसकी नीति का विरोध करते थे, परन्तु वे सभी प्रबल बहुमत से पुनर्निर्वाचित हो गये थे। जब राष्ट्रपति की पार्टी मतदाताओं के पास जावे तब उसे पार्टी का संगठित मोर्चा तोड़ने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। हां, वह कभी-कभी, विशेषतः गुप्त रूप से, दल के किसी भीतरी शत्रु के विरुद्ध अपने प्रभाव का उपयोग कर सकता है।

राष्ट्रपति की दलगत छंटनियों का सर्वत्र विरोध होने का कारण प्रत्यक्ष वही तर्क है जिससे अमेरिकी द्विदलीय पद्धति का समर्थन किया जाता है और जिसके प्रति जनता की गहरी और स्वाभाविक आदर बुद्धि है।

अमेरिका का मन्त्रिमण्डल वैसा नहीं है जैसा कि ग्रेट ब्रिटेन के संसदीय लोकतंत्र का मन्त्रिमण्डल होता है। अमेरिका में प्रशासकीय विभागों के अध्यक्ष कांग्रेस के सदस्य नहीं होते हैं और वे 'हाउस' के सदन में प्रश्नों का उत्तर देने के लिए नहीं जाते। राष्ट्रपति अपने मन्त्रिमण्डल का चुनाव करते हुए कई प्रकार की उलझनों और

आवश्यकताओं पर विचार करता है। कार्यदक्षता तो उनमें से केवल एक होती है। मन्त्रिमण्डल के पद उन राज्यों अथवा प्रदेशों में देख-भालकर वितरित किये जाते हैं जहां मतदाताओं के मत प्राप्त करना आश्यक होता है। महत्वपूर्ण धार्मिक और आर्थिक समूहों का भी इस वितरण में ध्यान रक्खा जाता है। मन्त्रियों को ठोस डिमोक्रेटिक दक्षिणी राज्यों अथवा मैन और वार्मोण्ट जैसे ठोस रिपब्लिकन राज्यों से शायद ही कभी लिया जाता है, क्योंकि जिन राज्यों की जनता सदा एक ही पक्ष में मत देती है उनकी स्थानीय देशभक्ति का लिहाज करना राजनीतिक साधनों का अपव्यय मात्र सिद्ध होता है।

नियमित विभागों के अध्यक्ष मन्त्रिमण्डल के सदस्य होते हैं और वे प्रायः पूर्णतया राष्ट्रपति के नियन्त्रण में काम करते हैं। राष्ट्रपति मन्त्रिमण्डल के किसी सदस्य को कोई ऐसा कर्तव्य पालन करने से इनकार करने पर पृथक् भी कर सकता है जो संवैधानिक अधिकारों पर आधारित हो। प्रारम्भ में केवल 'स्टेट' (वैदेशिक) और युद्ध विभाग स्पष्ट रूप से राष्ट्रपति के अधीन रखे गये थे। ये दोनों विभाग राष्ट्रपति के संवैधानिक अधिकारों की ही शाखा समझे जाते थे। कोश-विभाग का सचिव अपने कार्यों का विवरण कांग्रेस के सामने प्रस्तुत करता था, क्योंकि उसके कर्तव्य कांग्रेस के अधिकारों पर आधारित थे। परन्तु राष्ट्रपति वाशिंगटन ने धीरे-धीरे मन्त्रिमण्डल को राष्ट्रपति के नियन्त्रण में लाना आरम्भ किया, और अब तो साधारणतया सभी विभागों पर राष्ट्रपति के अधिकार का कोई विरोध नहीं करता। इसके विपरीत, कांग्रेस अपने अधिकारों के आधार पर नये-नये कर्तव्यों की सृष्टि करके उन्हें सीधा ही मन्त्रिमण्डल के किसी सदस्य को या किसी ब्युरो के प्रमुख को सौंप सकती है। इस प्रकार के कर्तव्य पालन करने वाले अधिकारी पर राष्ट्रपति का अनुशासन अथवा नियन्त्रण कहां तक चल सकता है यह अभी पूर्णतया निश्चित नहीं हुआ है।

कांग्रेस ने बहुत-सी आपत्कालिक और स्वतन्त्र एजन्सियों की भी स्थापना की है, जैसे कि उसने सन् १९३५ में बेरोजगारों को रोजगार दिलाने के लिए 'वर्क्स प्रोग्रेस-ऐडमिनिस्ट्रेशन' (निर्माण-उन्नति-शासन) की और निजी उद्योगों की कुछ प्रथाओं का नियन्त्रण करने के लिए "फेडरल-ट्रेड-कमिशन" (संघीय-व्यवसाय

आयोग) की की थी। राष्ट्रपति के साथ इन एजन्वियों के सम्बन्धों के विषय में अनेक प्रश्न उठे हैं, परन्तु उनको कोई स्पष्ट रूप न्यायालय भी नही दे सके।

"रूरल-इलेक्ट्रिफिकेशन ऐडमिनिस्ट्रेशन" (ग्राम विद्युत विस्तार प्रशासन) सरीखी कुछ एजन्सियां सार्वजनिक सेवक हैं और उनको किसी साधारण विभाग में अन्तर्भुक्त करके, राष्ट्रीय शासन के प्रमुख के रूप में राष्ट्रपति ही उनका नियन्त्रण कर सकता है। अन्य कुछेक इतनी स्पष्टता से राष्ट्रपति के नियन्त्रण में नहीं रक्खी जा सकतीं। "सिविल-ऐविएशन बोर्ड" (नागरिक उड्डयन बोर्ड) और"फेडरल कम्युनिकेशन्स कमीशन" (संघीय-संचार आयोग) को क्रमशः वायुयानों और रेडियो-स्टेशनों के संचालन के नियम बनाने का अधिकार दिया गया है और उनकी शक्ति कानून की होती है। इन एजन्सियों का कर्त्तव्य है कि ये लोगों के विचारों का पता लगाकर वस्तुस्थिति को जानें और अपने निर्णय कांग्रेस द्वारा निर्धारित व्यापक सिद्धान्तों के अनुसार करें। साधारणतया इन एजन्सियों को अपने अनुशासन अथवा नियन्त्रण में रखने का राष्ट्रपति को उतना अधिकार नहीं है जितना कि संघ के सरकार कर्मचारियों को।

"फेडरल ट्रेड कमीशन" (संघीय व्यवसाय आयोग) सरीखी कुछ एजन्सियां अर्ध न्यायिक होती है। यह कमीशन विविध पक्षों की बात सुनकर यह निर्णय दे सकता है कि फलां व्यावसायिक संगठन कानून विरोधी आचरण कर रहा है और उसे अपना रास्ता बदलना पड़ेगा। सुप्रीम कोर्ट (सर्वोच्च न्यायालय) ने निर्णय दिया है कि "फेडरल ट्रेड कमीशन" के किसी कमिश्नर को राष्ट्रपति केवल इस कारण पृथक् नहीं कर सकता कि उसका कोई काम उसे नापसन्द है।

विधि, कार्य-पालन और न्याय से सम्बद्ध विविध संस्थाओं के विशिष्ट मिश्रण का यह सिद्धान्त न्यायालयों की समझ में भी नहीं आया परन्तु इसके व्यावहारिक पक्ष को समझना उतना कठिन नहीं। अधिकारियों का चुनाव राष्ट्रपति ही करता है, वे चाहे उसके नियन्त्रण में रहें या नहीं, और उनकी पुष्टि सेनेट करती है। इस व्यवस्था की राजनीतिक वास्तविकता "फेडरल पावर कमीशन" (संघीय-शक्ति-आयोग) के उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी। यह कमीशन अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त प्राकृतिक

गैस के अन्तर राज्योय वितरण का भी नियन्त्रण करता है। गैस कम्पनियां गैस का जो मूल्य वसूल करना चाहती थीं उसे इस कमीशन ने स्वीकृत नहीं किया था। इस पर कम्पनियों ने कांग्रेस से अपील की और वहां एक विल पास करवा लिया, जिसके अनुसार इस प्रश्न का निर्णय कमीशन के हाथ में नहीं रहा। राष्ट्रपति ने इस विल के विरुद्ध अपने निषेधाधिकार का प्रयोग कर दिया, और कांग्रेस उसके निषेधाधिकार का प्रभाव अपने दो-तिहाई वहुमत से समाप्त करने में सफल नही हो सकी। इसके पश्चात् एक ऐसे कमिश्नर का कार्य-काल समाप्त हो गया जिसने कम्पनियों से विरुद्ध मत दिया था, परन्तु वह पुनः नियुक्त कर दिया गया। कम्पनियों ने सेनेट को मना लिया कि वह उस कमिश्नर की पुर्ननियुक्ति की पुष्टि नहीं करेगी। अन्त को कम्पनियों का पक्षपाती एक व्यक्ति कमिश्नर नियुक्त किया गया और उसकी पुष्टि सेनेट ने भी कर दी। इससे कमीशन का वहुमत वदल गया और उसने कम्पनियों की इच्छा को अपना लिया और यह संघर्ष समाप्त हो गया। इस कहानी का निचोड़ यह है कि कोई भी कमोशन या न्यायालय अतन्तोगत्वा निर्वाचन के परिणाम का ही अनुसरण करता है, यदि तुरन्त नहीं तो अन्त में अपने सदस्यों में परिवर्तन के पश्चात्। जिन असैनिक-कर्मचारियों को नीति-निर्धारण के अथवा राजनीतिक अधिकारियों के काम नहीं करने पड़ते उनकी नियुक्ति राजनीतिक विचार से नहीं की जाती। इनमें चपरासियों और द्वारपालों से लेकर अनुसन्धान विशेषज्ञों और निरोक्षकों तक रोजमर्रा का काम करने वाले कर्मचारी सम्मिलित होते हैं। यदि इनकी कोई राजनोतिक पसन्द-नापसन्द हो तो उसकी पूर्ति के लिए कानून इनको अपने निवास के राज्य में मतदान की अनुमति प्रदान करता है। परन्तु ये राजनीति में सक्रिय भाग नहीं ले सकते।

परन्तु राजनीति कभी-कभी असैनिक कर्मचारियों की कार्यकुशलता में भी हस्तक्षेप कर देती है।

कांग्रेस घ्यान न भी दे तो भी वड़ी शक्तियां ऐसी हैं जो नागरिक अथवा असैनिक कर्मचारियों की कुशलता पर अनुकूल ग्रौर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। ग्रनुकूल प्रभाव उन वहुसंख्यक विशेषज्ञ निरीक्षकों का और ऊपर के अधिकारियों का पड़ता है जो

जानते हैं कि सरकारी कर्मचारियों को व्यवस्था में किस प्रकार रखना चाहिए। ऊंचे अफसर भी यह जानते होते हैं और वे विशेषज्ञ व्यवस्थापकों का समर्थन करते रहते हैं। सन् १९४७ में राष्ट्रपति ने एक शासकीय आज्ञा दी थी कि व्यवस्था में उत्तमता को बढ़ानेके लिए कुशलता को उन्नत करनेकी टेकनिकल विधियोंका आदान-प्रदान किया जाय। पीछे यह पद्धति और भी तीव्रता से अमल में लाई गयी। इस आज्ञा में कहा गया था कि शासनाधिकार एजन्सियों को दे दिया जाय, प्रवन्ध का ऐसा दर्जा कायम किया जाय कि कार्य अधिक अच्छा होने लगे, और जिस प्रकार अत्यन्त आधुनिक बीमा कम्पनियों और बैंकों में विशेषज्ञों द्वारा निरीक्षण किया जाता है उसी प्रकार सरकारी विभागों में भी किया जाय। संघीय शासन में कई स्तरों पर उच्च कुशलता दृष्टिगोचर होती है, और उसकी विधियों का अनुकरण बहुत से निजी व्यापारिक संगठन भी करते हैं।

शासन की कुशलता पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली आन्तरिक शक्ति का काम वे अधिकारी करते हैं जो कि अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के साथ व्यवहार करने की आधुनिक विधियों को नहीं जानते। निजी व्यापारिक संस्थाओं में भी यही बात देखी जाती है। कुछ अधिकारी राजनीतिक कारणों से, या सैनिक योजनाएं बनाने या वैदेशिक मामलों में उच्च योग्यता के कारण नियुक्ति किये जाते हैं। सम्भव है कि उनको प्रवन्ध की कला का ज्ञान तनिक भी न होता हो। राष्ट्रपति अपने मन्त्रियों का चुनाव केवल इस आधार पर नहीं कर सकता कि उन्हें किसी बड़े संगठन को अल्पव्यय में संचालित करने का ज्ञान है या नहीं।

शासन-संचालन के व्यय में कांग्रेस द्वारा रुचि लेने का परिणाम प्रायः नागरिक कर्मचारियों की कुशलता घट जाने के रूप में प्रकट होता है। प्रवन्ध की आधुनिक विधियों का आधार; जैसा कि अत्यन्त सफल निजी व्यापारी संगठनों से प्रमाणित होता है, कर्मचारियों के साथ शिष्ट व्यवहार करने की नीति है। इस शिष्टता का एक नमूना पूर्वाह्न में जलपान के लिए 'छुट्टी' दे देना है। शिष्टतापूर्ण प्रवन्ध का फल, अल्प व्यय में अधिक उत्पादन होता है। परन्तु ये विधियां सुगमता से राजनीतिक आक्षेपों का लक्ष्य बन जाती हैं।

कोई भी राजनीतिज्ञ, सरकारी कर्मचारियों पर प्रमाद और बेईमानी के कठोर आक्षेप करके, मत तो प्राप्त कर सकता है परन्तु लेखा ठीक-ठीक रखने पर पता चला है कि कांग्रेस में किसी एजन्सी के विरुद्ध केवल एक आक्षेप-पूर्ण भाषण के कारण एक लाख डालर तक की हानि हो सकती है।

इसके विपरीत, जिन एजन्सियों का प्रमुख अधिकारी अच्छा व्यवस्थापक नहीं होता उनकी जांच यदि कांग्रेस न्याय और ईमानदारी से करवाये तो अपव्यय के प्रकट हो जाने के कारण धन की बचत हो जाती है।

असैनिक कर्मचारियों सम्बन्धी नीतियों में सुधार की आशा, ऐसे प्रमुख व्यवसायियों की सहायता लेने से भली प्रकार पूरी हो सकती है जो कुशलता के आधुनिक सिद्धान्तों को समझ चुके हैं। जब इस प्रकार के व्यक्ति पर्याप्त संख्या में इस समस्या पर इस प्रकार ध्यान देने लगेंगे कि कांग्रेस पर भी उनका प्रबल प्रभाव पड़े तब वे राजनीतिक आक्षेपों-प्रत्याक्षेपों को निरुत्साहित कर सकेंगे। उनसे यह आशा भी की जा सकती है कि वे शासन के अच्छे व्यवस्थापकों के साथ अपनी टेकनिकल जानकारी का बड़े पैमाने पर आदान-प्रदान करें और उनको आवश्यक सहायता दें।

संघीय (केन्द्रीय) शासन की विशालता सदा चिन्ता का विषय बनी रही है; अपने भारी व्यय के कारण ही नहीं, अपनी "नौकरशाही" के कारण; उससे भी अधिक। नौकरशाही शब्द का प्रयोग अमेरिकी भाषा में यह प्रकट करने के लिए किया जाता है कि सहस्रों व्यक्तियों को नौकरी पर लगाने वाली शासन की विशाल एजन्सियां गड़बड़ में कहीं अदृश्य न हो जायं, और कांग्रेस का अथवा राष्ट्रपति तक का उन पर ध्यान भी न जाय। यह सन्देह भी है, और वह निष्कारण नहीं है, कि इनमें से कई एजन्सियां बहुत समय पूर्व किसी विशिष्ट संकट का सामना करने के लिए आरम्भ की गयी थीं और वे अब तक स्वतन्त्र रूप में चली आ रही हैं, क्योंकि किसी को उनका पता नहीं लगा और इसीलिए उन्हें अपना कार-बार समेट लेने के लिए नहीं कहा गया।

एक और विश्वास यह है, और वह अपेक्षाकृत अधिक साधार है, कि विविध समयों पर स्थापित की हुई विविध एजन्सियों ने अपना काम इतना फैला लिया है

कि एक ही काम को कई-कई एजन्सियां करने लगी हैं। कभी-कभी कोई-कोई एजन्सी अपने वर्तमान रूप में गलत विभाग का कार्य कर रही प्रतीत होती है, और उस काम का सम्बन्ध उसी प्रकार के अन्य कार्य के साथ ठीक प्रकार नहीं जोड़ा जाता।

हाल में सब राष्ट्रपतियों ने शासन-विभाग को पुनर्गठित करने का प्रयत्न किया है, जिससे वह अधिक कुशल और तर्क-संगत बन जायं। राष्ट्रपति हूवर ने युद्ध-निवृत सैनिकों की बिखरी हुई एजन्सियों को एकत्र करके "वेटरेन्स ऐडमिनिस्ट्रेशन" (युद्ध-निवृत्त विभाग) का संगठन कर दिया था। उन्होंने सन् १९३२ में "रिआर्गेनिजेशन ऐक्ट" (पुनर्गठन कानून) बनवाया था, जिससे उनको, कांग्रेस की देख-रेख में, विविध विभागों को परिवर्तित करने का अधिकार प्राप्त हो गया था। परन्तु इस प्रकार की सब नयी योजनाएं कांग्रेस के सामने उपस्थित की जाती थीं और यदि कांग्रेस उन्हें साठ दिन के भीतर अस्वीकृत नहीं कर देती थी तो उन पर कानूनी छाप लग जाती थी।

सन् १९३२ में हाउस प्रतिनिधि सभा पर डिमोक्रेट पार्टी का अधिकार हो गया, और उसने श्री हूवर की योजनाओं को स्वीकार न करके, पुनर्गठन का काम डिमोक्रेटिक दल के नये राष्ट्रपति के लिए छोड़ देना पसन्द किया।

राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने सन् १९३६ में एक समिति पुनर्गठन का अध्ययन करने के लिए नियुक्त की। उन्होंने सन् १९३७ में अति परिवर्तनकारी सिफारिशें कीं, और उनका राष्ट्रपति के विरोधियों ने प्रबल विरोध किया। सन् १९३९ में एक बहुत नरम बिल पास हुआ, और उसके अनुसार राष्ट्रपति कुछ परिवर्तन कर सके। उदाहरणार्थ, उन्होंने बजट को राष्ट्रपति के शासन-कार्यालय के आधीन कर दिया। युद्ध-काल में उन्होंने मकानों और जहाजों की एजन्सियों को "नैशनल-हाउसिंग-एजन्सी" (राष्ट्रीय-भवन-एजन्सी) और "वार-शिपिंग-ऐडमिनिस्ट्रेशन" (युद्ध-पोत-शासन) के रूप में दृढ़ कर दिया, और युद्ध-काल के विशेषाधिकारों के अनुसार भी अन्य अनेक सुधार किए।

राष्ट्रपति ट्रूमन ने सन् १९४७ में एक "रिआर्गेनिजेशन ऐक्ट" (पुनर्गठन कानून) बनवाकर, उसके अनुसार भूतपूर्व राष्ट्रपति हूवर की अध्यक्षता में एक द्विदलीय

कमीशन नियुक्त किया। हूवर-कमीशन ने पूर्ण अध्ययन के पश्चात् कुछ सुझाव दिये, जिनसे, हूवर के अनुमान के अनुसार, सरकार को ३ अरब डालर प्रतिवर्ष की बचत हो सकती थी। 'हूवर' विवरण का जनता ने अच्छा स्वागत किया। राष्ट्रपति ट्रूमन ने कोई बीस योजनाएं कांग्रेस के सामने उपस्थित कीं, और कांग्रेस ने उनमें से तीन चौथाई को रहने भी दिया। सन् १९५३ में कांग्रेस ने "रिआर्गेनिजेशन ऐक्ट" अर्थात् पुनर्गठन कानून की अवधि राष्ट्रपति आइजनहॉवर के लिए भी बढ़ा दी।

ब्यूरो और एजन्सियों को पुनर्गठित करने के लाभ इतने प्रभावशाली कभी नहीं हुए कि जनता उनका उत्साह-पूर्वक समर्थन करती, परन्तु उनसे शासन के अनेक प्रमुख दोष अवश्य दूर हो गए। परन्तु "कोर ऑव इंजिनीयर्स" (इंजिनीयरों की टुकड़ी) सरीखी कुछ एजन्सियों को कांग्रेस में इतना प्रबल राजनीतिक समर्थन प्राप्त है कि कोई भी राष्ट्रपति उनके विरोध की परवाह न करके उनमें परिवर्तन करने में अब तक सफल नहीं हो सका।

मितव्ययिता, अर्थात् जिस वस्तु की जनता को आवश्यकता नहीं उसे न खरीदना, कांग्रेस का काम है; परन्तु व्यय घटाने का यश प्राप्त करने की कांग्रेस की इच्छा को कोई भी राष्ट्रपति ऐसा 'चुस्त' बजट तैयार करके विफल कर सकता है जिसमें कि ऐसी कोई बात हो ही नहीं जिसकी जनता को आवश्यकता नहीं है। दूसरी ओर कुशलता अर्थात् न्यूनतम व्यय में अधिकतम सिद्धि कर लेना, राष्ट्रपति का काम है। इसमें कांग्रेस पाई-पाई की कटौती करके और किन्हीं विशिष्ट स्वार्थों को प्रसन्न रखने के लिए अपव्यय-पूर्ण व्यवस्थाएं करके, किसी हद तक राष्ट्रपति को असफल कर सकती है। परन्तु राष्ट्रपति हूवर और उनके उत्तराधिकारियों के विषय में यह कहा जा सकता है कि औसतन उन सब ने अच्छे संगठन और आधुनिक प्रबन्ध की दशा में कुछ प्रगति की है।

अध्याय ५

काँग्रेस क्या है ?

संयुक्त राज्य अमेरिका की कांग्रेस और पार्लमेण्ट या संसद में बड़ा अन्तर यह है कि कांग्रेस में शासन की 'एक्जेक्यूटिव' (कार्यपालिका) शाखा के प्रतिनिधि शामिल नहीं होते। इंगलैण्ड में जिस प्रकार प्रधानमन्त्री और उसका मन्त्रिमण्डल सदन के सदस्य होते हैं उस प्रकार अमेरिका में राष्ट्रपति और उसका मन्त्रिमण्डल कांग्रेस के नहीं होते। कांग्रेस राष्ट्रपति को 'इम्पीचमेण्ट' की कारवाई के अतिरिक्त अन्य किसी प्रश्न का उत्तर देने के लिए विवश नहीं कर सकती, और न यदि वह किसी सरकारी बिल को पास करने से इनकार कर दे तो कोई संवैधानिक संकट खड़ा होता है। उसके कारण राष्ट्रपति न तो त्याग पत्र देता है और न वह कांग्रेस को बरखास्त करके जनता को नये निर्वाचन के लिए विवश कर सकता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के शासन में जनता का प्रतिनिधित्व एक ओर तो कांग्रेस करती है और दूसरी ओर राष्ट्रपति। प्रत्येक को एक दूसरे के विरुद्ध जनता का समर्थन पाने के लिए उससे अपील करने का अधिकार तो होता ही है, साधन भी होते हैं, और वे उनका उपयोग भी करते हैं। परिणाम यह होता है कि 'एक्जेक्यूटिव' अर्थात् शासन की कार्यपालिका शाखा और कांग्रेस अर्थात् शासन की विधि-निर्मात्री शाखा में संघर्ष का रूप प्रत्यक्ष युद्ध और विरामसन्धि में बदलता रहता है। जब कांग्रेस पर राष्ट्रपति के दल का नियन्त्रण होता है तब भी यही क्रम चलता है। एक और परिस्थिति, जो कि संसदीय पद्धति में उत्पन्न नहीं हो सकती, तब सामने आती है

जब कि जनता राष्ट्रपति तो एक पार्टी का चुन देती है और कांग्रेस दूसरी को। तब शासन की कार्यपालिका और विधि-निर्मात्री शाखाएं आप से आप एक दूसरे की विरोधी हो जाती हैं।

इस प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका की कांग्रेस, पार्लमेण्ट या संसद की अपेक्षा ज्यादा गैर-जिम्मेवार रहती है, क्योंकि राष्ट्रपति के दल के ही सदस्य, राष्ट्रपति के पदत्याग पत्र देने का समर्थन न करते हुए भी, शासन के किसी प्रस्ताव के विरुद्ध मत दे सकते हैं।' उत्तरदायित्व के इस अभाव के कारण कांग्रेस के आन्दोलनकारी नेताओं को सस्ती नामवरी कमाने का प्रोत्साहन होता रहता है, पदारूढ़ दल यह अनुभव नहीं करता कि उसका जीवन या मृत्यु कठोर अनुशासन पर निर्भर करता है।

उडरो विलसन जब कालेज में प्रोफेसर थे तब उन्होंने संविधान में ऐसा परिवर्तन कर देने का विचार प्रस्तुत किया था, जिससे कांग्रेस को भी संसद के अधिकार और उत्तदायित्व प्राप्त हो जाये। उनका तर्क यह था कि यदि कांग्रेस के सामने राष्ट्रपति का बिल स्वीकृत करने अथवा संकट खड़ा करने का विकल्प रहेगा तो वह अपना काम अधिक गम्भीरता से करेगी और जनता भी उसके काम को अधिक समझने का यत्न करेगी। जब विलसन राष्ट्रपति हो गए तब उन्होंने कांग्रेस के द्वारा अड़ंगा लगाया जाने पर संकट खड़ा कर देने का विचार किया था। वह उपराष्ट्रपति और अपने मन्त्रियों सहित पद त्याग कर सकते थे, और तब उस समय के कानून के अनुसार राष्ट्रपति का उत्तराधिकारी कोई भी न रहता और कांग्रेस को नयी कार्यपालिका का चुनाव करना पड़ता। परन्तु उन्हें युद्ध का सामना करना पड़ गया और वह शासन की निर्धारित प्रणाली के विरुद्ध नहीं जा सके। संयुक्त राज्य अमेरिका में कांग्रेस को संसद में परिवर्तित कर देने की कोई प्रत्यक्ष सार्वजनिक मांग नहीं है।

शासन की शाखाओं में अधिकारों के इस विभाजन का एक परिणाम यह है कि सेनेट भी उतना महत्वपूर्ण संस्था बन गया है जितना कांग्रेस। अन्य देशों में शासन की कार्यपालिका शाखा का नियन्त्रण द्वितीय सदन करता है इसलिए उसकी प्रवृत्ति सब अधिकार अपने हाथ में लेने की और उच्च सदन को बूढ़े राजनीतिज्ञों की विवाद-

सभा के रूप में छोड़ देने की रहती है। उदाहरणार्थ, इंगलैण्ड में "हाउस-ऑव-लार्ड्स" से 'वीटो' का अर्थात् किसी विल को निषिद्ध कर देने का अधिकार छीन लिया गया है। वह किसी विल के विरुद्ध मत प्रकट करके उसे विलम्बित कर सकता है, परन्तु अंतिम निर्णय "हाउस ऑव कामन्स" का ही रहता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में सेनेट भी उतनी ही शक्तिशाली है जितना कि हाउस; और कुछ मामलों में तो हाउस से भी अधिक।

अमेरिका के राजनीतिक जीवन में दो सदनों के विधान मण्डल की परम्परा की जड़ें बहुत गहरी हैं। औपनिवेशिक शासनों के समय भी दो ही सदन थे और अब भी, नेब्रास्का को छोड़कर, सब राज्यों में दो ही दो सदन हैं। परन्तु अब भी कोई एक सदन की कांग्रेस बनाने के पक्ष में आन्दोलन करने की कल्पना नहीं करता। इसका प्रधान कारण यह है कि संयुक्त राज्य अमेरिका आज भी वड़े और छोटे राज्यों का एक संघ है। वड़े और छोटे राज्यों को इस प्रकार मिलाने की समस्या का अभी तक ऐसा कोई हल नहीं सुझाया गया जिससे कि अमेरिका के लोग सन्तुष्ट हो जायं।

सब विलों को दो विभिन्न सदनों में से गुजरना पड़ता है। इसके कारण आपत्काल में विलम्ब नहीं होता, क्योंकि तब सब लोग राष्ट्रपति के नेतृत्व में चलने के पक्षपाती बन जाते हैं। परन्तु साधारण काल में साधारण कानून मन्द गति से बनते हैं। एक ही प्रकार के विचारों को बार-बार दुहराया जाता है, इससे विरोधियों को प्रस्तावों की तुलना करने की अनेक सुविधाएं मिल जाती हैं। अमेरिका की जनता की भावना शासन मात्र के विरुद्ध अविश्वास की है। ऐसा होते हुए भी विवादास्पद कानून सुगमता पास नहीं होते। इस बात पर कोई आश्चर्य नहीं किया जाता। कहावत भी है 'एक से दो मुंड भले'।

यद्यपि संविधान में सुधार करके यह नियम कर दिया गया है कि सेनेटरों का निर्वाचन राज्य-विधान मण्डलों के स्थान पर साधारण मतदाता ही करेंगे, तो भी सेनेट और 'हाउस-ऑव-रिप्रेजेण्टटिव्ज़' के वातावरण में अन्तर रहता है। सेनेटर औसत कांग्रेस-सदस्यों की अपेक्षा कुछ वर्ष बूढ़े होते हैं। कांग्रेस सदस्य बहुधा बढ़कर सेनेट में पहुंच जाते हैं। परन्तु ऐसे व्यक्ति बहुत कम मिलेंगे जिन्होंने सेनेट का सदस्य

रह चुकने के पश्चात् कांग्रेस का चुनाव लड़ा हो। सेनेटरों का पद अधिक प्रतिष्ठित समझा जाता है उनकी संख्या केवल ६६ है। और कांग्रेस-सदस्यों की ४३५। सेनेट के सदस्यों को अपनी बात प्रकाशित करने के अनेक अवसर मिलते हैं और उनका उपयोग भलाई या बुराई के लिए किया जा सकता है।

सेनेट को विदेशों के साथ की हुई सन्धियों और राष्ट्रपति द्वारा की हुई नियुक्तियों को पुष्ट करने का अधिकार है। इस कारण बहुत-से सेनेटर वैदेशिक सम्बन्धों और शासन के संगठन पर विशेष ध्यान देते हैं। उनमें से कई एक विषयों के प्रतिष्ठित और प्रमाणिक ज्ञाता बन गये हैं।

सेनेट और हाउस के आधे से अधिक सदस्य वकील हैं। कोई वकील कांग्रेस के एक कार्य काल तक उसका सदस्य रहने के बाद यदि पुनर्निर्वाचन में हार जाय तो वह अपना कानूनी पेशा फिर अपना सकता है और साधारणतया उसकी वकालत पहले से अच्छी चलने की सम्भावना रहती है। इसके अतिरिक्त, कांग्रेस के सदस्यों के लिए कानून दफ्तरों में साझीदार बने रहना खिलाफ-कानून नहीं है; और जिन लोगों का नए कानूनों में कुछ स्वार्थ होता है वे ऐसे वकीलों को अपना वकील बनाये रखने के लिए फीस देते रहते हैं। सरकारी कर्मचारी या कार्यपालिका शाखा के अधिकारी यदि इस प्रकार का सम्बन्ध बनाये रखे, तो बुरा माना जाता है।

एक स्कूल के एक विद्यार्थी ने एक बार कहा था कि "हमारा शासन वकीलों का है, मनुष्यों का नहीं।" यह अत्युक्ति है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अर्थ-नीति और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग जैसे बड़े-बड़े प्रश्नों में भी कांग्रेस के मत पर, इंजिनियर, व्यापारी या पत्रकार की विचारशैली की अपेक्षा प्रायः वकील के चिन्तन की छाप अधिक रहती है।

कांग्रेस और राष्ट्रपति दो बड़े साधन हैं जिनके द्वारा राष्ट्र के राजनीतिक दल देश पर शासन करते और सत्ता-प्राप्ति के लिए संघर्ष करते हैं। राष्ट्रपति एक व्यक्ति होता है, इसलिए दल में उसकी स्थिति अधिक निश्चित होती है, और वह उसके पुनर्निर्वाचन में अथवा इतिहास में जो स्थान प्राप्त करना चाहता हो उसकी

प्राप्ति में सहायक होती है। दूसरी ओर कांग्रेस में राष्ट्रपति के ही दल में सदा कुछ व्यक्ति ऐसे भी रहते हैं जो किसी न किसी प्रकार राष्ट्रपति की नीतियों का विरोध करते रहते हैं। उसमें कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो यह समझते हैं कि हमारा पुनर्निर्वाचन स्थानीय स्वार्थों पर निर्भर करता है, और वे स्वार्थ दल की साधारण नीति के विरोधी हो सकते हैं। इसलिए पदारूढ़ दल कांग्रेस के प्रायः सभी मत-विभाजनों में बंटा रहता है; और यही हाल विरोधी दल का रहता है।

कांग्रेस का उत्तरदायित्व केवल प्रति दो वर्ष पश्चात् परखा जाता है, और तब भी साधारणतया कुछ अनिश्चित रूप में। बहुत से कांग्रेस सदस्यों के मत का आगामी चुनाव पर प्रायः सामूहिक रूप से कोई स्पष्ट प्रभाव नहीं पड़ता, यद्यपि किसी कांग्रेस-सदस्य का अपने जिले में निर्णायक प्रभाव हो सकता है। यही कारण है कि दलों में अनुशासन का अभाव रहता है। बहुत से कांग्रेस-सदस्य ऐसे 'सुरक्षित' जिलों के होते हैं जो बार-बार उन्हीं को चुनकर भेज देते हैं, बशर्ते कि वे अपने जिले के लोगों को नाराज न करें; और उनके ऐसा करने की सम्भावना कठिनाई से ही हो सकती है। वे अपने राष्ट्रीय दल से प्रायः सर्वथा स्वतन्त्र होते हैं; हाँ, यदि उनका दल चुनाव हार जाय तो कांग्रेस की किसी समिति का अध्यक्ष बनने का अवसर भी उनके हाथ से निकल जाता है। इसलिए जो राज्य और जिले स्थानीय परिस्थितियों में परिवर्तन न होने के कारण उन्हीं प्रतिनिधियों को बार-बार चुनकर भेजते रहते हैं उनमें स्वयंप्रभु जनता के प्रति कांग्रेस का उत्तरदायित्व केवल छाया के रूप में रहता है। स्वयंप्रभु जनता कांग्रेस के विषय में अपना मत प्रकट करने के लिए चेतन तभी दिखाई पड़ती है जब संघर्ष तीव्र हो, और उसमें जब किसी उम्मीदवार का सम्बन्ध उन प्रश्नों के साथ जुड़ा हो जिन्हें कि जनता महत्वपूर्ण समझती है।

जो राज्य किसी एक पार्टी का प्रभाव न होने के कारण संदिग्ध माने जाते हैं और जिनके मतदाता मत देते समय अपने आप को किसी पार्टी से बंधा हुआ नहीं समझते, उनमें साधारणतया चुनाव का निर्णय उन्हीं के स्वतन्त्र मतों से होता है।

और यदि राज्य में किसी एक दल का प्रभाव अधिक हो तो स्वतन्त्र मतदाता उसके साथ मिलकर उसके प्रारम्भिक निर्वाचनों में अपना प्रभाव बढ़ा सकते हैं।

परन्तु जैसा कि लावेल मेलेट ने अपनी पुस्तिका "हैण्डबुक आव पालिटिक्स" (राजनीति का गुटका) में बतलाया है, स्वतन्त्र निर्वाचिक बहुधा अपने मतों को बांट कर अपनी शक्ति को व्यर्थ खो देते हैं। स्वतन्त्र मतदाता प्रायः उदार होते हैं। वे सुगमता से यह विश्वास कर लेते हैं कि उनका कर्त्तव्य प्रारम्भिक निर्वाचनों में सर्वोत्तम उम्मीदवार को ही मत देने का है। किसी बात पर अपना 'प्रतिवाद' प्रकट करने के लिए वे अपने बहुत से मत किसी छोटे उप-दल को दे बैठते हैं। यदि यही समत वे बड़े दलों में से किसी के उम्मीदवार को दें तो चुनाव पर उनका निर्णयाक प्रभाव पड़ सकता है।

जो राजनीतिज्ञ नियमित रूप से पार्टियों का काम करते हैं वे स्वतन्त्र मतदाताओं के इस स्वभाव का लाभ कभी-कभी बड़ी चतुराई से उठा लेते हैं। जब उन्हें स्वतन्त्र मतदाताओं का डर होता है तब वे चुप-चाप किसी ऐसे अतिरिक्त उम्मीदवार का समर्थन करके उनके मतों को व्यर्थ कर देते हैं जो जीत तो नहीं सकता 'परन्तु सर्वोत्तम व्यक्ति' को मत देना चाहने वालों के मत अवश्य खींच लेता है।

यदि शक्ति का पासंग स्वतन्त्र मतदाताओं के हाथ में हो तो उसका सफलता-पूर्वक उपयोग करने का उपाय यह है, जैसा कि मेलेट ने भी बतलाया है, कि वे परस्पर मिलकर निर्णय कर लें कि जो व्यक्ति इस समय पदारूढ़ है वह यदि पुनर्निर्वाचन के लिए खड़ा होगा तो वह उन्हें पसन्द होगा या नहीं। यदि वे उसे पसन्द करें तो मिलकर उसे सफल बना सकते हैं, और तब इसके पुरानेपन और प्रभाव, दोनों में वृद्धि हो जायगी। यदि वे उसे पसन्द न करें तो उन्हें मिलकर उसके ऐसे प्रतिस्पर्धी को मत देना चाहिए जिसके 'सर्वोत्तम' उम्मीदवार न होने पर भी जीतने की सम्भावना सब से अधिक हो। कोई उम्मीदवार कितना ही नापसन्द क्यों न हो वह जब पदारूढ़ व्यक्ति को हराकर कांग्रेस में जायगा तब उसे 'नया' माना जायगा. उसके साथ पुरानेपन का प्रभाव नहीं होगा।

स्वयंप्रभू जनता के साथ उसके विधि-निर्माता प्रतिनिधियों के ये सम्बन्ध कितने ही भयंकर रूप से शिथिल क्यों न प्रतीत हों, "स्वतन्त्रता की घोषणा" में जनतन्त्र का जो यह मौलिक सिद्धान्त घोषित किया गया है कि शासकों को सब न्यायसंगत अधिकार शासितों से ही प्राप्त होते हैं, उसके साथ इनकी संगति अवश्य बैठ जाती है। जिन राज्यों और कांग्रेस के जिलों में सदा एक ही दल की जीत होती है, उनमें शासित जनता की व्यापक सहमति बिना अधिक विवाद के उसी दल के पक्ष में दी हुई रहती है। वह जब चाहे तब इस कोरे चेक को वापिस भी ले सकती है। इसके अतिरिक्त लोकतन्त्रीय शासन की एक बड़ी विशेषता यह है कि न केवल उन्हें जो अपना मत नहीं देते अपितु उन्हें भी जो कि मत देते हैं परन्तु हार जाते हैं, जीतने वालों द्वारा शासित होने के लिए चुपचाप सहमत हो जाना चाहिए। कांग्रेस की निर्वाचन प्रणाली में अन्य निर्बलताएं चाहे जो हों, उससे यह परिणाम तो निकल ही आता है।

यदि जनता राष्ट्रपति के काम का लेखा देखकर उसे पसन्द करेऔर 'ह्वाइट हाउस' पर दोबारा उसके दल का अधिकार हो जाय तो इससे उसके दल के कांग्रेस-सदस्यों को लाभ होता है। कांग्रेस-चुनाव के कड़े मुकाबले में भी उसी पक्ष का पल्ला भारी रहनेकी सम्भावना होती है जो राष्ट्रपति के चुनाव में जीता हो। इसे राष्ट्रपति के "कोट की पूंछ पर सवार होना" कहते हैं। 'कोट की पूंछ' के सिद्धान्त का उपयोग निःसन्देह कांग्रेस-सदस्यों और सेनेटरों की निष्ठा अपने दल के नेता के प्रति दृढ़ करने में तो होता ही है। यदि वे उसकी अधिक हानि करेंगे तो उससे उनको अपनी भी हानि होगी। यह एक स्मरण रखने योग्य तथ्य है कि ह्वाइट हाउस पर जिस पार्टी का अधिकार होता है वह उन मध्य-वर्ती चुनावों में जिनमें कि राष्ट्रपति नहीं चुना जाता, सदा कुछ स्थान खो बैठती है।

कांग्रेस में दल का नेता प्रायः उन सदस्यों में से चुना जाता है जो राष्ट्रपति का समर्थन करते हैं, परन्तु कुछ समितियों के प्रधान ह्वाइट हाउस के पूर्ण विरोधी भी हो सकते हैं। यद्यपि उन्हें अपने क्षेत्र में बहुत अधिकार होते हैं। उदाहरणार्थ, सन् १९५३ में राष्ट्रपति आइजनहोवर का शासन आरम्भ होने के समय, हाउस की "वेज

एण्ड-मीन्स-कमिटी (उपाय-तथा-साधन समिति) के चेयरमैन ने टैक्स घटाने से पहले बजट को सन्तुलित करने की राष्ट्रपति की नीति का तीव्र विरोध किया था।

इस प्रकार की अनुशासनहीनताओं के कारण आगामी चुनाव में दल में फूट पड़ जाने का भय रहता है, और इस कारण दल के संगठन को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए अनेक सुझाव पेश किये गये हैं। कई बार दोनों सदनों के दलीय 'काकसों' अर्थात् नीति-निर्धारक सम्मेलनों ने यत्न किया है कि उनके सदस्य दल के निर्णय पर ही चलें। परन्तु जो पहले कोई प्रतिज्ञा किये हुए होते हैं अथवा जिन्हें उस निर्णय के अनुसार मत देने में अन्य कोई आपत्ति होती है, उनके लिए बचाव का कोई मार्ग निकल ही आता है। अनुशासन का पालन कराने के प्रयत्नों की सफलता में बाधा यह है कि जो उसका भंग करते हैं उनके लिए दण्ड की व्यवस्था कुछ नहीं है। सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि राष्ट्रीय दल के नेता किसी भी व्यक्ति को उसके राज्य में उसके दल से निकाल नहीं सकते। यदि वह अपने आप को डिमोक्रेट कहता है परन्तु मत रिपब्लिकनों के साथ देता है तो उसे वैसा करने से तबतक कोई नहीं रोक सकता जबतक कि उसके राज्य की जनता उसे निर्वाचित करती रहे। दल अधिक से अधिक इतना कर सकता है कि उसे समितियों में से निकाल दे, जैसा कि रिपब्लिकनों ने सन् १९५३ में सेनेटर मौर्स को किया था।

सब मिलाकर अनुशासन-हीनता उस द्विदलीय पद्धति का तर्कसंगत परिश्रम है जो कि अमेरिका की कांग्रेस में प्रचलित है। उसमें संसदीय अधिकारों और उत्तर-दायित्वों के लिए कोई स्थान नहीं है।

राष्ट्रपति के विरोधी दल का प्रायः कांग्रेस के दोनों सदनों में अल्पमत रहता है, परन्तु सदा नहीं। अल्पमत का कर्तव्य निरा विरोध करना है, यह विचार केवल अंशतः सत्य है। निःसन्देह विरोधी दल का कर्तव्य है कि वह संदिग्ध प्रश्नों पर पूर्ण विवाद करे और शासन के संदिग्ध कार्यों की पूरी-पूरी जांच करवाये। परन्तु अल्पमत दल के आन्तरिक मतभेदों और राष्ट्रपति तथा बहुमत दल के पारस्परिक विरोधों के कारण विरोधी दल उलझन में फंस जाता है। प्रत्येक दल के कुछ सदस्य

अधिकतर प्रश्नों पर अपने ही दल के विरुद्ध मत देने को तैयार रहते हैं। अल्पमत दल के अतिनिष्ठावान सदस्य भी बहुधा यह सोचने लगते हैं कि हमें राष्ट्रपति का या उसके दल का विरोध करना चाहिए या नहीं।

सन् १९३३ से सन् १९५२ तक रिपब्लिकनों की नीति साधारणतया राष्ट्रपति का विरोध करने की थी। जब राष्ट्रपति को कांग्रेस में किसी कठिनाई का सामना करना पड़ता था तब रिपब्लिकन मत-विभाजन में दक्षिण के डिमोक्रेटों का साथ दिया करते थे, जो राष्ट्रपति के अपने ही दल में उसके विरोधी थे। बहुत समय तक इस नीति का चुनावों की हार जीत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि जनता कांग्रेस के डिमोक्रेटिक दल की अपेक्षा राष्ट्रपति की पक्षपाती अधिक थी। अन्त में जाकर यह नीति सफल तभी हुई जब मतदाता शासन की आलोचना से प्रभावित होने लगे।

जब राष्ट्रपति को ऐसी कांग्रेस का सामना करना पड़ता है जो कि विरोधी दल के नियन्त्रण में हो तब कांग्रेस और ह्वाइट हाउस का साधारण विरोध तीव्र रूप धारण कर लेता है। परन्तु इसकी भी सीमा है। कुछेक "पागल" सदस्यों को छोड़ कर कोई भी राजनीतिज्ञ राष्ट्रपति के विरोध में युद्ध को इतना लम्बा नहीं खींचता कि उससे राष्ट्र की सुरक्षा ही जोखिम में पड़ जाय। कानूनन राष्ट्रपति का विरोध करनेवाली कांग्रेस को अधिकार होता है कि वह शासन का व्यय अस्वीकृत कर दे, और विरोधी सेनेट चाहे तो राष्ट्रपति के मन्त्रिमण्डल की नियुक्ति अस्वीकृत कर सकती है, परन्तु अन्तिम परिणाम की दृष्टि से कांग्रेस के समझदार सदस्य चरम सीमा तक जाना अच्छी राजनीति नहीं समझते। फलतः युद्ध सर्वग्रासी नहीं होने पाता।

उदाहरणार्थ, श्री ट्रूमन को अस्सीवीं कांग्रेस से मार्शल योजना स्वीकृत कराने में सफलता मिल गयी थी, क्योंकि रिपब्लिकनों के नेता सेनेटर वेन्डनबर्ग ने अपनी पार्टी का मार्ग-प्रदर्शन बुद्धिमता से किया था। उसने अपने दल को समझाया कि ऐसे मामले पर लड़ाई ठानना उचित नहीं जिससे उसे लाभ कम और हानि अधिक हो सकती है। यदि यह योजना अस्वीकृत हो जाती और इटली में सन् १९४८ के चुनावों में कम्यूनिस्ट पार्टी जीत जाती तो संयुक्त राज्य अमेरिका में इटली के संकट के लिए

उत्तरदायी उन लोगों को ठहराया जाता जिन्होंने मार्शल योजना को स्वीकृत नहीं होने दिया था।

परन्तु आन्तरिक मामलों में अस्सीवीं कांग्रेस के नियन्त्रण-कर्त्ता रिपब्लिकनों और डिमोक्रेट राष्ट्रपति में जो आतंक-युद्ध छिड़ा रहता था वह कोई छोटा-मोटा नहीं था। राष्ट्रपति चाहता था कि जो प्रस्ताव कुछ भी लोक-प्रिय हों उन्हें कांग्रेस पास कर दे। इनमें कुछ प्रस्ताव ऐसे भी थे जिन्हें शायद डिमोक्रेटिक कांग्रेस भी पास न करती। तब रिपब्लिकन कांग्रेस बहुत से डिमोक्रेटों की सहायता से श्री ट्रूमन के प्रत्येक प्रस्ताव को अस्वीकृत करने लगी तब उनको आन्दोलन करने के लिए एक नया आधार मिल गया। फल यह हुआ कि यद्यपि रिपब्लिकन श्री ट्रूमन की अधिकतर नीतियों को रोकने में सफल हो गए परन्तु उनका दोष ट्रूमन पर नहीं डाल सके, और वह चुनाव जीत गए।

इसके विपरीत, जब सन् १९३२ में राष्ट्रपति हूवर को विरोधी कांग्रेस का सामना करना पड़ा तब डिमोक्रेटों ने मन्दी दूर करने के उसके अन्तिम प्रयत्नों को भी सफल नहीं होने दिया और उस असफलता का दोष भी उसके ही सिर पड़ा। ऐसी स्थिति इतनी अधिक बार हो चुकी है कि यह साधारण विश्वास सा बन गया है कि जिस राष्ट्रपति का दल मध्यवर्ती निर्वाचन में कांग्रेस पर से अपना नियन्त्रण खो देगा, वह दो वर्ष पश्चात् के चुनाव में भी अवश्य हार जायगा।

यह कुछ विचित्र बात लगती है कि कांग्रेस और राष्ट्रपति के संघर्ष की, दोनों पार्टियों के बीच के निरन्तर संघर्ष टक्कर होती रहने पर भी, शासन अपने सभी कार्य करवा लेता है। कारण यह है कि यहां संघर्ष के जिन रूपों का वर्णन किया गया है वह राजनीतिक पक्ष का महत्त्व प्रकट करने के लिए ही किया गया है, परन्तु बहुत से प्रभाव ऐसे होते हैं जिनका फल अन्त में परस्पर सम्मति और व्यावहारिक कार्यवाही के रूप में प्रकट होता है। ऐसा एक प्रभाव यह तथ्य है कि दोनों ही दलों में उदार और अनुदार विचारों के लोग होते हैं। राष्ट्रपति को सदा विरोधी दल से भी कुछ न कुछ सहायता मिल जाती है। यह चाहे तर्क-विरुद्ध प्रतीत होता हो, परन्तु इसके

कारण विरोधी दलों में सर्वग्रासी युद्ध नहीं होने पाता। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जो लोग कांग्रेस में नेता के पद तक पहुंचते हैं उनमें बहुसंख्या ऐसे व्यवहार-निपुण राजनीतिज्ञों की होती है जो समझौते की कला में कुशलता के कारण ही शक्ति प्राप्त किये होते हैं।

अध्याय ६

काँग्रेस की कार्य-प्रणाली

प्रति दो वर्ष पश्चात् नयी कांग्रेस चुनी जाती है। उदाहरणार्थ, बयासीवीं कांग्रेस सन् १९५० में और तिरासीवीं सन् १९५२ में चुनी गई थी। प्रत्येक नये निर्वाचन में 'हाउस' के सब और 'सेनेट' के एक तिहाई सदस्य चुने जाते हैं।

कांग्रेस का अधिवेशन वर्ष में कम से कम एक बार अवश्य होना चाहिए। इसकी बैठक ३ जनवरी को नियम-पूर्वक होती है। नयी कांग्रेस अपने प्रथम अधिवेशन में अपना 'संगठन' करती, अर्थात् बहुमत दल में से अपने पदाधिकारी चुनती और समितियों के अध्यक्ष तथा सदस्य नियुक्त करती है।

सेनेट का अध्यक्ष संयुक्त राज्य अमेरिका का उपराष्ट्रपति होता है और मत-विभाजन के समय पक्ष-विपक्ष में समान मत आने पर निर्णायक मत देता है। उसके अन्य कर्तव्य अनिश्चित हैं। 'ह्वाइट-हाउस' चाहे तो उपराष्ट्रपति से सेनेट के साथ सम्पर्क रखने का काम ले सकता है अथवा उसे मन्त्रिमण्डल की बैठक में सम्मिलित रखकर उसे राष्ट्रपति के कर्तव्यों का निर्वाह करने का अभ्यास भी करवा सकता है। जो उपराष्ट्रपति पहले सेनेटर रह चुका हो वह कभी-कभी अपने भूतपूर्व साथियों को प्रभावित भी अच्छी तरह कर सकता है।

सेनेट एक स्थानापन्न अध्यक्ष भी चुन लेती है, जो उपराष्ट्रपति की अनुपस्थिति में कार्य करता है। सेनेट के अन्य निर्वाचित पदाधिकारी 'सेक्रेटरी' और 'सारजेण्ट-एट-आर्म्स' होते हैं, जो उसका रोजाना का काम चलाते हैं। उनके

अतिरिक्त पादरी, और बहुमत तथा अल्पमत दलों के सेक्रेटरी भी होते हैं। यदि निर्वाचन में राजनीतिक काया पलट ही न हो जाय तो समितियों के प्रधान आदि, सेनेट के अधिकतर पदाधिकारी, पुरानी कांग्रेस के ही चलते रहते हैं।

पदाधिकारियों, समितियों के अध्यक्षों, और बहुमत-दल की समिति के सदस्यों को बहुमत-दल का 'कॉकस' नामजद करता है। साधारणतया, उन सबको पूरी सेनेट प्रथम बार के निर्वाचन में ही चुन लेती है। अल्पमत-दल अपने जिन सदस्यों को समितियों में रखवाना चाहता है उनका चुनाव वह स्वयं करता है। चुनाव के समय सदस्यों के पुरानेपन का लिहाज बहुत अधिक किया जाता है। किसी समिति का अध्यक्ष प्रायः सदा बहुमत-दल का वही सदस्य होता है। जो उस समिति में सबसे अधिक समय तक काम कर चुका होता है। पुरानेपन के कारण ही किसी-किसी सेनेटर को अपनी समिति के पदों पर नियुक्तियों का अधिकार भी प्राप्त हो जाता है।

'हाउस' का अध्यक्ष स्पीकर कहलाता है। उनका निर्वाचन सदस्य करते हैं और वह सदा 'हाउस' के बहुमत-दल का कोई व्यक्ति होता है। यदि राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति का देहान्त हो जाय तो राष्ट्रपति का प्रथम उत्तराधिकारी 'स्पीकर' ही होता है। कांग्रेस में सबसे अधिक शक्तिशाली पद उसका ही है।

यद्यपि इस पद का नाम इंगलैण्ड की परम्परा से लिया गया है, परन्तु स्पीकर के काम वही नहीं हैं जो इंगलैंड में। इंगलैण्ड का 'हाउस ऑव् कामन्स' अपने 'स्पीकर' का चुनाव, अध्यक्षीय कार्य में उसकी निष्पक्षता और योग्यता के कारण करता है। परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका की कांग्रेस में स्पीकर दलीय नियन्त्रण का एक सबसे महत्वपूर्ण साधन होता है। उदाहरणार्थ, कांग्रेस के दोनों सदनों में विचार विनिमय के लिए हाउस की समितियों के सदस्य वही नियुक्त करता है। इन सदस्यों का काम यह होता है कि सेनेट के अपने समान प्रतिनिधियों के साथ मिल कर हाउस और सेनेट के एक ही विषय के बिलों में अन्तर को दूर कर दें। इनकी

संयुक्त रचना को साधारणतया दोनों सदन स्वीकार कर लेते हैं, और इस कारण बहुत से अति महत्वपूर्ण प्रश्नों में से कइयों का निर्णय इस बात पर निर्भर रहता है कि संयुक्त विचार-विनिमय के लिए स्पीकर किसे चुनता है।

स्पीकर अपनी इच्छानुसार निर्णय कर सकता है कि सदन में किसे भाषण करने दिया जाय और किसे नहीं। यदि यह सन्देह हो कि किसी बिल पर विचार करने के लिए किन्हीं दो समितियों में से कौन सी उपयुक्त है तो स्पीकर निर्णय दे सकता है कि बिल किसके सपुर्द किया जाय; और इस प्रकार वह बिल उसकी समर्थक या विरोधी समिति के हाथ में पहुँच सकता है। स्पीकर चाहे तो अपने स्थान पर किसी को नियुक्त करके स्वयं सभा में सम्मिलित होकर विवाद में भाग ले सकता है।

सन् १९१० से पूर्व तक, मेन राज्य के टॉमस बी. रीड और इलिनॉय राज्य के 'अंकल जो' कैनन के हाथों में पड़कर स्पीकर का कार्य कठोर लौह शासन में परिणत हो गया था। स्थायी समितियों के सब सदस्यों की नियुक्ति स्पीकर कैनन स्वयं करता था। नियम-समिति का अध्यक्ष भी वह स्वयं ही रहता था। इस समिति को अधिकार था कि वह चाहती तो किसी बिल पर काररवाई को रोक सकती थी। सन् १९१० में डिमोक्रेट और पश्चिम के 'विद्रोही' रिपब्लिकन मिलकर, स्पीकर को नियम-समिति से पृथक् रखने में सफल हो गये, और बाद को उन्होंने उससे स्थायी-समितियां नियुक्त करने का अधिकार भी छीन लिया।

सेनेट के समान, हाउस में भी प्रायः मुख्य पदों पर, विशेषतः समितियों के अध्यक्षों और अधिकारी समितियों के सदस्यों की नियुक्तियां करते हुए पुरानेपन का अत्यधिक विचार किया जाता है। इसका फल यह होता है कि कांग्रेस में प्रायः अति महत्वपूर्ण पदों पर ऐसे बूढ़े व्यक्ति नियुक्त हो जाते हैं जो अपने 'सुरक्षित' राज्यों से अपने जीवन-भर बार-बार निर्वाचित होकर आते रहते हैं।

पदाधिकारियों और समितियों के अतिरिक्त, सेनेट और हाउस दोनों में दलों के अपने-अपने संगठन होते हैं, और उनका कानून बनाने पर प्रभावशाली नियन्त्रण रहता है।

प्रत्येक सदन में प्रत्येक दल का संगठन होता है। डिमोक्रेट उसे 'कॉकस' कहते हैं और रिपब्लिकन "कॉनफरेन्स"। दल अपने सदस्यों को न केवल अधिकृत पदों के लिए नामजद करते हैं, वे सदन के लिए अपना नेता और सहायक नेता अर्थात् सचेतक भी चुनते हैं। सदन का नेता सदन में अपने दल की कार्य-शैली का निर्देशक होता है। वही निश्चय करता है कि कौन सदस्य कब क्या बोलेगा, और काम को शीघ्र निबटाया जाय या लम्बा खींचा जाय। सचेतक सब सदस्यों को अपनी दृष्टि में रखता है और जब 'वोट' के लिए उनकी आवश्यकता होती है तब उन्हें ले आता है।

बहुमत-दल की 'हाउस' में एक मार्ग-निर्देशक समिति भी होती है। सदन का नेता ही उसका भी नेता होता है। वह नियम-समिति के निकट सम्पर्क में रहती है, और दल की 'कानफरेन्स' का 'कॉकस' जिस बिल का समर्थन करने का निश्चय करती है उसे आगे बढ़ाने का यत्न करती है। सेनेट में दोनों दलों की मार्ग-निर्देशक समितियां होती हैं, परन्तु उनका बल थोड़ा होता है, क्योंकि सेनेटर सुगमता से वश में नहीं आते।

दलों के संगठन का विधि-निर्माण पर प्रबल प्रभाव होता है, यद्यपि वे सदा ही उसका नियन्त्रण नहीं कर पाते। जब कोई बात 'दल' की बात बन जाती है, तब यह प्रभाव विशेष रूप से प्रकट होता है क्योंकि प्रत्येक दल दूसरे दल के विरोध में अपना मार्ग निश्चित कर लेता है। ऐसे मामलों में दल के संगठन विवाद के संचालन तथा सदस्यों को एकत्र करने के द्वारा सहायता करते हैं। परन्तु बहुधा विचाराधीन प्रश्न के कारण दोनों दलों में आन्तरिक मतभेद खड़े हो जाते हैं, और तब दलीय सगठन अधिक पुराने और प्रभावशाली सदस्यों की इच्छा पूरी करने का यत्न करते हैं। यह कोई असाधारण बात नहीं कि दोनों दलों का नियन्त्रण करने वाले, दोनों दलों के युवक सदस्यों के विरुद्ध अनियमित रूप से मिल कर एक हो जायं। उदाहरणार्थ, श्री ट्रूमैन के समय दोनों दलों के पुराने लोगों में राष्ट्रपति के विरुद्ध परस्पर सहयोग के चिह्न बहुधा दृष्टिगोचर हुआ करते थे।

जो यात्री वाशिंगटन जाते और सेनेट या हाउस की कार्रवाई दर्शकों की गैलरी में बैठकर देखते हैं वे सदन का दृश्य देख कर बहुधा स्तब्ध रह जाते हैं। साधारणतया जब किसी सदस्य का भाषण हो रहा होता है तब अधिकतर आसन खाली पड़े रहते हैं। जो सदस्य उपस्थित होते हैं वे भी कुछ पढ़ते रहते या घूम फिरकर एक दूसरे के साथ बात-चीत करते रहते हैं। कुछेक का ध्यान स्पीकर पर लगा रहता है और वे बार-बार उसे टोकते रहते हैं, कभी-कभी उसका पक्ष लेने के लिए, परन्तु अधिकतर उसकी युक्तियों को काटने के लिए। फिर मत विभाजन या 'कोरम' के लिए सब सदस्यों को नाम लेकर पुकारा जाता है। तब सारा भवन और कार्यालयों की इमारतें घण्टियों से गूंज जाती हैं और सदस्य अपने नाम की पुकार का उत्तर देने के लिए आकर तुरन्त एकत्र होने लगते हैं। शीघ्र ही वे पुनः बिखर जाते हैं, और फिर उदासीनता का साधारण वातावरण छा जाता है।

प्रायः सभी सेनेटरों और कांग्रेस-सदस्यों को बहुत समय तक काम करना पड़ता है। उनके उत्सुक निर्वाचक उन्हें इतना परेशान किये रहते हैं कि किसी शान्त व्यक्ति का तो धीरज ही छूट जाय। सदन के दृश्य से कांग्रेस कार्य-प्रणाली का ठीक-ठीक चित्र प्रकट नहीं होता। वहां का अधिकतर समय किसी ऐसे बड़े विवाद में व्यतीत नहीं होता जिसका राष्ट्र के सब लोगों पर अथवा कांग्रेस के कुछ ही सदस्यों पर प्रभाव पड़े। अधिकतर समय सदन ऐसा स्थान बना रहता है जहां कि सदस्य अपने नाम की पुकार का जवाब देने, लेखे पर आने के लिए एकाध भाषण कर देने या किसी दूसरे सदस्य के भाषण में टोका-टाकी करने, या कभी-कभी ऐसे सदस्यों से दो बातें करने के लिए जाता है जिनकी सहायता की उसे किसी आगामी कानून के सम्बन्ध में अपेक्षा हो। सदन एक बाजार है परन्तु जो माल वहां बिकता है वह कहीं और ही तैयार होता है, मुख्यतया समितियों और गोष्ठी-कक्षों में।

सेनेट और हाउस, दोनों में विधि-निर्माण के मुख्य-मुख्य विषयों की स्थायी समितियां होती हैं। सन् १९४६ में कांग्रेस का पुनर्गठन हुआ था और तब सेनेट की स्थायी समितियां घटाकर उससे १५ और हाउस की ४८ से १९ कर दी गई थीं।

उद्देश्य यह था कि एक ही काम कई-कई समितियों में बंटा न रहे और प्रत्येक सदस्य कम समितियों से सम्बद्ध रहकर अपना ध्यान अपने काम पर अधिक केन्द्रित कर सके। यह सुधार उतना परिवर्तनकारी नहीं निकला जितना कि यह तब लगता था, क्योंकि समितियां तुरन्त ही नयी-नयी उपसमितियां नियुक्त करने लगीं।

अनेक संयुक्त-समितियां भी होती हैं, जो दोनों सदनों के सदस्यों से मिलकर बनती हैं। ये छपाई और आर्थिक विवरण आदि अपेक्षाकृत ऐसे शुष्क विषय पर विचार करती हैं जिनमें कि महत्वाकांक्षी राजनीतिज्ञों को राजनीतिक क्षेत्र में आगे बढ़ने की दृष्टि से उतना आकर्षण नहीं लगता जितना कि टैक्स लगाने अथवा सशस्त्र सेनाओं आदि के कामों में। संयुक्त-समितियां विचार की पुनरावृत्ति से बचती हैं, परन्तु जो विषय राजनीतिक विवाद में उलझे हुए होते हैं उन पर उन्हीं तर्कों से दो बार पृथक विचार का समर्थन किया जाता है जो कि कांग्रेस में दो सदन रखने के समर्थन में प्रस्तुत किये जाते हैं।

सन् १९४६ में पुनर्गठन के समय, कांग्रेस ने यह निश्चय किया था कि वह विशेष समितियों की नियुक्तियों में अपव्यय नहीं करेगी। पिछले वर्षों में उनकी नियुक्तियां बहुत हुई थीं, विशेष जांच के लिए। उनका एक लाभ यह था कि जो सदस्य कांग्रेस को किसी प्रश्न की जांच के लिए सहमत कर लेता था, साधारणतः वही समिति का अध्यक्ष बना दिया जाता था और उन पर काम करने का भरोसा किया जा सकता था।

उदाहरणार्थ, सेनेटर ट्रूमन द्वितीय विश्व-युद्ध के संचालन की जांच करने के लिए नियुक्त एक समिति के अध्यक्ष थे और उन्होंने अयोग्यता अथवा पक्ष पात के अनेक मामलों को सफलता पूर्वक रोक दिया अथवा नहीं होने दिया था। इसी काम के कारण उन्होंने उपराष्ट्रपति का पद अर्जित किया और 'व्हाइट हाउस' में पहुंच गए।

यद्यपि सन् १९४६ के पश्चात् विशेष समितियां कम नियुक्त की गई हैं, तथापि विशेष अथवा स्थायी उपसमितियां इसी प्रकार के कामों के लिए कभी-कभी नियुक्त होती रही हैं।

कानून बनाने की साधारण विधि में समितियों को बहुत समय तक भारी अध्ययन करना पड़ता है। बहुत से महत्वपूर्ण बिल राष्ट्रपति द्वारा सुझाये जाते हैं, और जिस विभाग का उनसे सर्वाधिक सम्बन्ध होता है वह प्रायः प्रस्तावित विधेयक का मसविदा भेज देता है। परन्तु यह मसविदा प्रारम्भिक मात्र होता है। जिस समिति के सुपुर्द कोई विधेयक किया जाता है वह उसे कांग्रेस के सामने भेजने से पहले अपना सन्तोष भली प्रकार कर लेती है कि वह अपने अन्तिम मसविदे के एक-एक शब्द की जिम्मेवारी ले सकती है या नहीं।

समितियां बहुधा अन्य लोगों के भी विचार सुनती हैं। यह सुनवाई विषय के अनुसार कभी गुप्त होती है, कभी खुली। इन सुनवाइयों में शासन-विभागों के अध्यक्षों और उनके विशेषज्ञों से भी पूछताछ की जाती है, परन्तु इससे सदा सब बातें जानने में सफलता प्राप्त नहीं होती, क्योंकि साधारणतया कांग्रेस के सदस्य विशेषज्ञों की अपेक्षा उस विषय से कम परिचित होते हैं। यही बात 'लाबिइस्टों' अर्थात् किसी बिल में रुचि रखनेवाले व्यक्तियों द्वारा किए हुए वकीलों से पूछताछ के विषय में कही जा सकती है। 'लाबिइस्टों' का मुख्य काम समितियों के सामने विवाद करने का होता है, परन्तु 'लाबिइस्ट' मेलजोल बढ़ाने में भी निपुण होते हैं और वे बहुधा कांग्रेस के सदस्यों के साथ बातचीत करने के अवसर निकाल लेते हैं। सरकारी कर्मचारियों और 'लाबिइस्टों', दोनों को, कुछ सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है। परन्तु उनकी गवाहियों में बहुत-सी उपयोगी और सच्ची सूचनाएं भी रहती हैं, निःसन्देह उनका लक्ष्य उस पक्ष को लाभ पहुंचाना ही रहता है जिसका वे समर्थन कर रहे होते हैं। समितियां जो सामग्री संग्रह करती हैं उसमें से बहुत-सी का महत्व राजनीतिक होता है कि कौन बिल को पास कराना और कौन रोकना चाहता है, और किस पक्ष का राजनीतिक प्रभाव सबसे अधिक है।

कांग्रेस के बहुत कम सदस्यों को राजनीतिक विषयों के अतिरिक्त अन्य किसी का विशेषज्ञ बनने का समय मिलता है, और चूंकि अब शासन के काम अधिकाधिक पेचीदा होते जाते हैं, इसलिए कांग्रेस भी यह अनुभव करने लगी है कि अपने मार्ग प्रदर्शन के लिए उसे भी विशेषज्ञों की अपेक्षा है। अधिकतर समितियों के पास अपने ही कर्मचारी होते हैं जिनमें एक या अनेक विशेषज्ञ भी सम्मिलित रहते हैं।

प्रत्येक सदन का एक विधि-विशेषज्ञ कार्यालय होता है। वह समितियों और सदस्यों के लिए विधेयकों के मसविदे बना देता है और यह ध्यान रखता है कि नये कानून की प्रत्येक बात पहले से विद्यमान कानूनों के साथ संगत हो।

हाल के वर्षों में कांग्रेस ने अपने पुस्तकालय में कानूनों का हवाला अथवा प्रतीक बतलानेवाले विशेषज्ञों की सेवाएं बहुत बढ़ा ली हैं। इनमें अनेक विषयों के विशेषज्ञ भी सम्मिलित हैं। उनसे आशा की जाती है कि वे सब सम्बद्ध तथ्यों की सूचना बिना किसी राजनीतिक पक्षपात के देते रहेंगे। कांग्रेस के कुछ सदस्य इस सुविधा का उपयोग अपने भाषणों अथवा समिति के काम के लिए तथ्यों की खोज करते रहने में करते हैं।

कांग्रेस अपना काम किस प्रकार करती है, इस विषय के किसी भी विवरण को पढ़ या सुनकर यही प्रतीत होगा कि वह किसी भी मामले में ठीक परिणाम पर नहीं पहुँच सकती, परन्तु वह बहुधा वही काम करती है जिसकी उस समय आवश्यकता होती है और जिसे लोग चाहते हैं। सन् १९३३ के पश्चात् कांग्रेस को संसार में हलचल मचा देने वाले जो निर्णय करने पड़े उनकी संख्या उसके प्रत्येक अधिवेशन में निरन्तर बढ़ती चली गई। परन्तु यह असम्भव ही लगता है कि कांग्रेस के बुद्धिमान् और देश भक्त सदस्य इन सब महत्वपूर्ण समस्याओं के पूर्ण ज्ञाता बन गये होंगे, क्योंकि उनपर कार्य का अत्याधिक भार रहता है। फिर भी 'न्यू डील' (राष्ट्रपति रूजवेल्ट की आर्थिक-नीति का नाम) के प्रारम्भिक वर्षों से लेकर 'मार्शल योजना' और रक्षा के नवीन कार्यक्रम तक जितने भी नये कानून बने उनका बहुत बड़ा अनुपात सफल रहा और उसे दोनों दलों ने स्वीकार कर लिया। कहीं न कहीं से कांग्रेस का मार्ग-प्रदर्शन होता ही रहता है। ऐसा कहें तो शायद ठीक ही होगा कि मुख्य मार्ग-प्रदर्शक शक्ति राजनीति की वह पद्धति है जिसके द्वारा अमेरिकी जनता अपनी आवश्यकताओं, इच्छाओं और निर्णयों को प्रकट करती है। कांग्रेस की कार्य-प्रणाली में ऊपर-ऊपर से जो अनवस्था दिखलाई पड़ती है उस के बावजूद वह जनता की इच्छा को शासन के कार्यों का रूप देने का एक नाजुक यन्त्र है।

परन्तु कांग्रेस की आयोग्यता की आलोचना निरन्तर होती रहती है और कुछ अधिक समय वीत जाने पर कांग्रेस को भी अपना सुधार आप करने की धुन सवार होती रहती है। इस प्रकार की सबसे अन्तिम धुन उसे सन् १६४६ में सवार हुई थी। यह सेनेटर लाफोलेट और कांग्रेस-सदस्य मोनरीनी की अध्यक्षता में नियुक्त एक विशेष संयुक्त समिति द्वारा अमेरिकी-राजनीति विज्ञान-संघ की एक रिपोर्ट के अध्ययन के पश्चात् हुई थी। सन् १६४६ में पुनर्गठन में समितियों की संख्या तो कम कर दी गई थी, परन्तु 'टैकनिकल' कर्मचारियों की संख्या बढ़ा दी गई, सदस्यों के वेतन ऊँचे कर दिये गए, और सरकार के विरुद्ध छोटे-छोटे दावों तक का भुगतान करने के लिए प्रत्येक के सम्बन्ध में एक पृथक् विल (विधेयक) पास करने के क्षोभ-जनक काम से कांग्रेस को मुक्त कर दिया गया था। परन्तु इस पुनर्गठन की भी यह कहकर आलोचना की गई थी कि इससे सब आवश्यक सुधार तो हुए नहीं, और एक ऐसे अवसर को हाथ से निकल जाने दिया गया जो शायद पुनः शीघ्र नहीं आयेगा।

पुराने सदस्यों का लिहाज करने की प्रथा हृदय से नापसन्द की जाती है, विशेषतः उदार विचार के लोगों द्वारा, क्योंकि दोनों ही दलों में वृद्धतम व्यक्तियों की प्रवृत्ति अपरिवर्तन वादी होती है। ये बूढ़े व्यक्ति अधिकार के पदों पर बैठ तो जाते हैं, परन्तु कभी-कभी किसी महत्वपूर्ण समिति के अध्यक्ष के निर्बल और असमर्थ होने का भयंकर उदाहरण भी सामने आ जाता है।

पुराने सदस्यों का लिहाज करने की प्रथा के पक्ष में प्रधान तर्क यह दिया जाता है कि कांग्रेस का संगठन करते समय चुनाव की अधिकतर समस्याएं इससे स्वयमेव सुलझ जाती हैं। संगठन के समय बहुमत दल में मतैक्य रहना आवश्यक है, क्योंकि सम्भव है कि उसका बहुमत अत्यल्प हो। यदि दल में, साधन-तथा-कोश-समिति सरीखी किसी महत्वपूर्ण समिति का अध्यक्ष चुनने के समय मत भेद हो जाय तो व्यवहारतः अल्पमत दल को ही उम्मीदवारों में से किसी एक को चुन लेने का अवसर मिल जायगा। इस बात की सम्भावना बहुत कम प्रतीत होती है कि सेनेट और हाउस के नियमों का नियन्त्रण जिन व्यवहार-कुशल राजनीतिज्ञों के हाथ में

है वे पुराने सदस्यों का लिहाज करने की प्रथा में सुधार करना कभी पसन्द करेंगे।

एक और प्रथा जो कि बहुत समय से आलोचना का विषय बनी हुई है वह 'सेनेट' में 'फिलिबस्टर' की अर्थात् अनन्त काल तक बे-लगाम बोलते चले जाने की है, जब कुछेक दृढ़-निश्चयी सेनेटर मिलकर किसी बिल को पास न होने देने की ठान लेते हैं। तब वे बारी-बारी अनिश्चित काल तक भाषण कर-करके उस बिल की हत्या कर देते हैं। उन्हें बिल पर विवाद तक नहीं करना पड़ता, क्योंकि शेक्सपीयर को अथवा पाक-शास्त्र की किसी सर्वथा अप्रासंगिक पुस्तक को उच्च स्वर से बांचते चले जाना भी सेनेट के नियमों से संगत है।

सेनेट में 'क्लोचर' का भी एक नियम है, जिसके अनुसार दो-तिहाई के बहुमत से विवाद को बन्द करने का निर्णय किया जा सकता है, परन्तु इस नियम को दोनों दलों ने चतुरतापूर्वक अव्यवहार्य बना दिया है; क्योंकि वस्तुतः कोई भी दल 'फिलिबस्टर' का अधिकार छोड़ना नहीं चाहता।

'फिलिबस्टर' की आलोचना में कहा जाता है कि उससे बहुमत के शासन के सिद्धान्त का घात होता है। निःसन्देह कोई भी व्यक्ति उस बिल के विरुद्ध 'फिलिबस्टर' का प्रयोग नहीं करेगा जिसके पक्ष में बहुमत स्वयं ही मत देने के लिए तैयार न हो। इसके विपरीत, सेनेट का विश्वास है कि संघीय सिद्धान्त के अनुसार उन मामलों में निरे बहुमत द्वारा शासन का होना उचित नहीं है जो कि अल्पसंख्यक राज्यों को सह्य न हों। अमेरिकी जनता का सदा से यह विश्वास रहा है कि बहुमत के शासन की सीमाएं होती हैं; बहुमत को शासन करने का अधिकार विशेषतया उसी स्थान पर होना चाहिए जहां उसका बहुमत हो। दक्षिणी कैरोलीना वाले न्यूयार्क वालों के बहुमत से शासित होना स्वभावतः पसन्द नहीं कर सकते। यह भी स्मरणीय है कि सेनेट का संगठन ही इसलिए किया गया था कि जनसंख्या के आधार पर निर्वाचित 'हाउस' के बहुमत का कांग्रेस में सन्तुलन हो जाय। किसी राज्य में मतदाता कितने हैं, इस बात का विचार किए बिना सेनेट में प्रत्येक राज्य के दो मत होते हैं। यह व्यवस्था एकमात्र इस प्रयोजन से की गई थी कि छोटे राज्यों की बड़े राज्यों के बहुमत से रक्षा हो सके। इसलिए यह आश्चर्य की बात

नहीं कि सेनेट की परम्परा में ऐसे अल्पमत का उसके निरे संख्या-बल की अपेक्षा अधिक आदर किया जाय जो जिस प्रस्तावित नियन्त्रण को अत्याचारपूर्ण समझता हो उसका विरोध करने के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार हो। इसलिए विवाद को सीमित करने का कोई सीधा और सरल नियम 'हाउस' के समान सेनेट द्वारा भी अपना लिए जाने की सम्भावना बहुत कम है।

प्रबन्ध के किसी साधारण मान से देखने पर भी सेनेट और हाउस की कार्य-कुशलता का स्तर निम्न है। उसे ऊंचा उठाने के लिए अनेक सुझाव दिये जा चुके हैं। एक सुझाव यह है कि दोनों सदनों में बिजली के मत-विभाजन पट्ट लगा दिए जायं, जैसे कई राज्यों के विधानमण्डलों में लगे भी हुए हैं। प्रत्येक सदस्य का नाम पुकार कर लाने में समय का भारी नाश होता है, विशेषतः 'हाउस' में। इस पद्धति के पक्ष में कभी-कभी यह कहा जाता है कि उस समय का उपयोग सदस्य परस्पर विचार-विनिमय के लिए कर लेते हैं परन्तु इस उपयोग का मूल्य प्रायः कुछ नहीं है। बिजली का मत-विभाजन-पट्ट लग जाने पर सदस्य एक साथ मत दे सकेंगे, और पट्ट से न केवल उसका परिणाम तुरन्त प्रकट हो जायगा, उसका लेखा भी आप से आप सुरक्षित रहेगा।

एक और सुझाव यह है कि कोलम्बिया जिले को स्वशासन का अधिकार दे दिया जाय। इस समय इस जिले के प्रतिनिधियों का बोर्ड, जिले की सरकार, राज्य-विधान सभा, और संघीय विधान-मण्डल, सब कुछ कांग्रेस ही बनी हुई है। वाशिंगटन के निवासियों का नाम यदि जिले से बाहर कहीं लेखबद्ध न हो और वे वहां मत न देते हों तो वे मत दे ही नहीं सकते।

वाशिंगटन के लिए सेनेट और हाउस दोनों की, जिला समितियां होती हैं। स्थानीय करों के नियम भी कांग्रेस बनाती और यह निर्णय भी वही करती है कि बीसवीं सड़क चौड़ी की जाय या नहीं और नाइयों की दुकानों का निरीक्षण किया जाय तो किस प्रकार। ये छोटे-छोटे काम उस विधान मण्डल के योग्य नहीं जान पड़ते जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ के साथ अमेरिका के सहयोग अथवा उत्तरी-अतलान्तिक-संधि-संगठन के गम्भीर प्रश्नों का निर्णय करना हो।

सन् १८८७ में जब इस जिले में किसी स्थानीय स्वशासन की समाप्ति की गई थी तब उसका उद्देश्य सुधार करना था। उन दिनों संयुक्त राज्य अमेरिका में नगरों के शासन में भ्रष्टाचार इतना अधिक फैल चुका था कि आज उसका उदाहरण किसी भी नगर में नहीं मिल सकता। जो लोग कांग्रेस को जिले के छोटे-मोटे कामों के बोझ से मुक्त करने का सुझाव देते हैं वे कहते हैं कि आधुनिक उपायों द्वारा किसी भी नगर का का-मकाज उसका अपना ही शासन-संगठन ईमानदारी और कुशलता से चला सकता है।

कांग्रेस का कार्य निरन्तर न चल सकने और ध्यान बढ़ते रहने का सब से बड़ा कारण यात्रियों का लम्बा तांता है जो कि राज्यों से वाशिंगटन जाते रहते हैं। अमेरिकनों को अपने राष्ट्र की राजधानी देखने का शौक है। वे चाहते हैं कि उनके राज्य के कांग्रेस-सदस्य उनको 'हाउस' के भोजनालय में भोजन करावें, उनको नाटक का टिकट खरीद दें, और उनके लिए होटल में निवास का स्थान खोज दें। हाई स्कूल की वास्केट-बॉल-टीम चाहती है कि हमारे राज्य का सेनेटर ऐसी व्यवस्था कर दे कि राष्ट्रपति 'ह्वाइट हाऊस' की सीढ़ियों पर टीम के साथ खड़ा होकर फोटो खिचवा लें। एक बार एक सेनेटर ने कुछ दृढ़ होकर विद्यार्थियों को समझाया कि राष्ट्रपति आजकल युद्ध संचालन के कार्य में अत्यन्त व्यस्त हैं, और तुम्हारे साथ फोटो खिचवाने की फुरसत नहीं है। तुरन्त ही एक अन्य सेनेटर अपने साथी से बाजी मार ले जाने के लिए तैयार हो गया। उसने कहा कि 'ह्वाइट-हाउस' में इस बात की व्यवस्था मैं करूंगा।

कोई भी मतदाताओं को किसी प्रकार यह समझाने का साहस नहीं करता कि अपने प्रतिनिधियों को परेशान मत करो। सब डरते हैं कि आगामी चुनाव में कहीं मतदाता उनकी उपेक्षा न कर दें। वस्तुतः कांग्रेस के सदस्य अपने राज्य के लोगों के साथ सम्पर्क को इतना मूल्यवान मानते हैं कि जब कांग्रेस का अधिवेशन नहीं हो रहा होता तब वे स्वयं अपने राज्य में जाकर अधिक लोगों से मिलना पसन्द करते हैं। मिलने वालों के बढ़ते हुए प्रवाह को सम्भालने का उत्तम उपाय यह प्रतीत होता है कि नियमित काम की देखभाल करने के लिए अधिक कर्मचारी रख लिये जायं, जिससे कांग्रेस सदस्यों को मिलने-जुलने का समय मिल सके। जो सदस्य

अपने दफ्तर से हाउस को जाते हुए गली में अपने दोनों कानों में दो मतदाताओं के तकाजों के गूंजता रहने पर भी 'मैं अपना मत किधर दूंगा' यह निर्णय करने का आनन्द नहीं ले सकता। वह शायद या तो मर जायगा और या अपने पद का त्याग कर अपना स्थान किसी अधिक सहिष्णु तथा धैर्यशाली व्यक्ति के लिए रिक्त कर देगा।

कांग्रेस में भारी हल्ला-गुल्ला मचा रहता है, और फिर भी वह उतना काम भुगता लेती है जितना कि जनता उससे कराना चाहती है, इसका कारण शायद यह है कि सहज राजनीतिज्ञों का काम करने का ढंग ही यह है। राजनीतिज्ञ वैसी ही जनता का प्रतिनिधित्व करता है जैसी उसके निर्वाचन क्षेत्र में बसती है। तिसपर उसके कारण उसकी शक्ति बढ़ जाती है। वह जो हल्ला-गुल्ला करता है वह अमेरिकी हल्ला-गुल्ला होता है। विदेशी लोग उसे देख कर आश्चर्य करते हैं; यद्यपि उनके देशों में भी अन्य प्रकार का हल्ला-गुल्ला होता ही होगा। परन्तु हम जैसे भी कुछ हैं, अमेरिकी लोग उन आपत्तियों और समस्याओं का सामना सफलतापूर्वक बिना किसी दुष्परिणाम के कर रहे हैं जिनकी उनके विधान-निर्माताओं ने कल्पना भी नहीं की होगी। आशा है कि संयुक्त राज्य अमेरिका जो सफलता प्राप्त करेगा उससे न केवल अमेरिकियों को संतोष होगा, वह अन्य स्वतन्त्र लोगों के लिए सहायक होगी। अमेरिकी कांग्रेस जिस जनता की प्रतिनिधि है, उसके गुण और दोष भी उसमें पूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं, और अन्ततोगत्वा वह सफलता भी उतनी ही मात्रा में प्राप्त कर लेती हैं।

अध्याय ७

संघीय न्यायालय

संघीय न्यायालयों और कुछ न्यायालयों के समान काम करने वाली "रेग्यूलेटिंग एजन्सियों" का काम कानून के अनुसार केवल मुकदमों का निर्णय कर देना नहीं, उससे भी कुछ अधिक है। लिखित कानून के शब्द ही कानून का सर्वस्व नहीं हो सकते। नये-नये प्रश्न खड़े होते रहते हैं और कानून को उनसे भी सुलझना पड़ता है। कभी-कभी कांग्रेस नये प्रश्नों का हल करने के लिए नये कानून बना देती है। परन्तु कभी-कभी न्यायालयों को पुराने कानूनों में नया अर्थ दिखाई पड़ जाता है और न्यायालय उसे पुराने कानून की वास्तविक भावना से संगत घोषित कर देते हैं।

किस व्यवस्था को माना जाय और किसको नहीं, यह निर्णय होता तो है राजनीतिक, परन्तु यह निर्भर करता है मुख्यतया न्यायाधीशों की वैयक्तिक मनोवृत्ति पर, विशेषतः 'सुप्रीम कोर्ट' अर्थात् सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की मनोवृत्ति पर। ये सज्जन राजनीति से सर्वथा सम्पर्क रहित होते हैं, क्योंकि इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है, जो अपने पद तक चुनाव जीत कर पहुंचा होता है; और सर्वोच्च न्यायालय के एकांत में बैठने पर भी इन पर अपने देशवासियों के नैतिक आदर्शों और राजनीतिक निर्णयों का प्रभाव पड़ता ही रहता है।

गणतन्त्र के आरम्भिक दिनों में इस समस्या का सीधा सामना नहीं करना पड़ता था कि यदि शासन संविधान का उल्लंघन करे तो क्या करना चाहिए।

संविधान को "देश के उच्चतम कानून" के रूप में अपनाया गया था और कांग्रेस का या राष्ट्रपति का कोई भी काम जो उसके विरुद्ध हो, सिद्धान्ततः कानून नहीं हो सकता था। सन् १८९६ में जेम्स ब्राइस ने कहा था—"जो काम वे अपने अधिकार से बाहर करते हैं वे अवैध हैं और उन्हें निम्नतम नागरिक भी अवैध मान सकता है; नहीं, उसे वैसा मानना चाहिए।" ब्राइस का विचार था कि किसी कानून को संविधान विरुद्ध ठहरा देने का सर्वोच्च न्यायालय का अधिकार तर्क संगत और अनाक्रमणीय है। परन्तु इतिहास में उस अधिकार पर विशेषज्ञों ने, एण्ड्रयू जैक्सन और अब्राहम लिंकन ने भी, आक्रमण किया है। सन् १९३७ में "न्यायालयों को भर डालने के विवाद" के समय इस अधिकार पर सन्देह प्रकट करने वालों ने बहुत ही गरमी दिखलायी थी।

औपनिवेशिक शासन में ब्रिटिश राजा के आज्ञा पत्र को आधार भूत कानून माना जाता था। उस समय भी न्यायालय कभी-कभी किसी कानून को आज्ञापत्र का उल्लंघनकारी होने के कारण अवैध ठहरा देते थे। राज्यों में वही परम्परा चलती रही। सन् १७८६ में रोड आइलैण्ड के उच्चतम न्यायालय ने राज्य के विधान मण्डल द्वारा स्वीकृत एक कानून को इस आधार पर अवैध ठहरा दिया था कि वह राज्य के संविधान का उल्लंघन करता था।

सन् १८०३ में जब मुख्य न्यायाधीश जान मार्शल ने सुप्रीम कोर्ट अर्थात् सर्वोच्च न्यायालय का प्रथम निर्णय लिखकर कांग्रेस के एक काम को अवैध ठहराया तब वह परम्परागत तर्क के अनुसार एक अधिकार का प्रयोग कर रहे थे और वह उसे अपने कार्य का दृढ़ आधार मानते थे। उन्होंने कहा था कि "यह सिद्धान्त कि संविधान का विरोधी कोई भी कार्य अवैध है, सब लिखित संविधानों के साथ तात्विक रूप से संलग्न होता है और इसलिए यह न्यायालय इसे अपने समाज का अन्यतम आधार भूत सिद्धान्त मानता है।"

अगले पचास वर्षों में संविधान के उल्लंघनों का सामना करने के लिए एक और सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। वह सिद्धान्त यह था कि किसी भी राज्य को अधिकार है कि वह जिस संघीय कानून को असंवैधानिक अथवा अस्वीकरणीय समझे उसे निषिद्ध घोषित कर दे। सन् १८२८ में जान सी० कौल्हन ने साउथ

करोलीना राज्य के विधान मण्डल के लिए एक निवन्ध तैयार किया जो पीछे "साउथ करोलीना एक्सपोजिशन" अर्थात् 'साउथ करोलीना का विचार' कहलाया। उसमें उन्होंने प्रतिपादित किया था कि संवैधानिक दृष्टि से संघीय शासन राज्यों का एजण्ट या कारिन्दा मात्र है। उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि जो भी कोई राज्य कांग्रेस के कार्यों से अप्रसन्न हो वह किसी संघीय कानून को निषिद्ध ठहराकर उसका अमल अपने यहाँ रोक सकता है। तब वह कानून 'असंवैधानिक' हो जाता है, और उस राज्य को उसे मानने के लिए बाधित तभी किया जा सकता है जब राज्यों के तीन चौथाई बहुमत से संविधान में संशोधन कर दिया जाय।

कल्हौन के तर्क से उत्साहित होकर साउथ करोलीना राज्य के सिरफिरे लोगों ने एक संघीय तटकर कानून को निषिद्ध ठहराने का इरादा किया। राष्ट्रपति जैक्सन ने जवाब दिया कि संघ की रक्षा की ही जायगी, और यदि आवश्यकता हुई तो मैं कानून को सेना की सहायता से लागू करूंगा। उस प्रश्न पर समझौता हो गया और कांग्रेस ने कानून को नरम कर दिया।

बीस वर्ष पश्चात् विस्कोन्सिन के विधानमण्डल ने उस संघीय कानून को मानने से इनकार कर दिया जिसके अनुसार किसी भी उत्तरी राज्य को उसकी सीमा में कोई भगा हुआ दास पाया जाने पर उसे वापस भेजने के लिए बाधित किया जा सकता था। जो संघीय कानून किसी राज्य को अत्याचारपूर्ण प्रतीत हो उसे अवैध ठहराने की यह अपील ही गृह-युद्ध का कारण बन गई और सन् १८६१-६५ के गृह-युद्ध से यह निषेधाधिकार सदा के लिए समाप्त हो गया। परन्तु सुप्रीम-कोर्ट उसके पश्चात् भी कानूनों पर विचार चुपचाप इसी आधार पर करता रहा कि वे संविधान से संगत हैं या नहीं, यद्यपि उसने सन् १८०३ से १८५७ तक किसी संघीय कानून को असंवैधानिक घोषित नहीं किया। किसी गृह-युद्ध के पश्चात् आज्ञा-परक कानूनों की मात्रा बढ़ गयी और न्यायालय अपने अधिकार का प्रयोग बार-बार करने लगे।

जनता ने क्रमशः इस तथ्य को मान लिया और इसके सामने सिर झुका दिया है कि जब न्यायालय किसी लोक प्रिय कानून पर प्रहार करता है तब

उसका अर्थ इतना ही बतलाना होता है कि जनता ने भ्रान्त मार्ग का अवलम्बन किया है। व्यवहार में न्यायालय के कथन का अभिप्राय यह होता है—"तुमने सन् १७८७ में कांग्रेस को आय-कर लगाने का अधिकार नहीं दिया था। यदि तुम अब (सन् १८९५ में) आय-कर लगाना चाहते हो तो तुम वैसा कांग्रेस से कहकर नहीं कर सकते। उसके स्थान पर, संविधान में संशोधन के द्वारा, अपने आपसे कहो।" इस प्रकार लोग फिर पीछे लौटे और उन्होंने आरम्भ से चलना शुरू किया। उन्होंने आत्म चिन्तन किया कि क्या आय-करों की इतनी आवश्यकता है कि यदि संविधान को संशोधित करना पड़े तो वह भी कर लिया जाय। सन् १९१३ में जाकर उन्होंने निर्णय किया और संविधान में सोलहवें संशोधन द्वारा प्रत्यक्ष आय-कर लगाने की अनुमति दे दी गई। यह सत्य सुविदित है कि सुप्रीम कोर्ट के निर्णय को संविधान में संशोधन करने की लम्बी और धैर्य पूर्ण विधि से ही बदला जा सकता है परन्तु जब लोग अधीर होते हैं तब वे इस सत्य के ज्ञान-मात्र से सन्तुष्ट नहीं हो जाते।

सुप्रीम कोर्ट का संगठन ऐसे विधि-विशेषज्ञों से मिलकर होता है जो न्यायाधीश बनने से पहले दीर्घ-काल तक जीवन में सफल रह कर अनुभवी बन चुके होते हैं। उनमें सभी निजी जीवन में न्यायाधीश या वकील नहीं होते। सुप्रीम कोर्ट का कोई न्यायाधीश अपने पूर्व जीवन में सेनेटर, अटर्नी-जनरल, कानून के स्कूल का अध्यापक अथवा न्यायालय के समान काम करने वाली किसी एजन्सी का प्रशासक आदि कुछ भी रह चुका होता है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि कोई न्यायाधीश पचास वर्ष की आयु में नियुक्त किया गया। उसके बीस से चालीस वर्ष तक जीवित रहकर न्यायाधीश बने रहने की सम्भावना रहती है। उसके कुछ वृद्ध होने की सम्भावना तो है ही। इसलिए वह अब से पहली पीढ़ी के राजनीतिक संसार के साथ निकट सम्पर्क में भी अवश्य रहा होगा। न्यायालय अपने मतों में प्रायः परिवर्तन-विरोधी होते हैं और इसी कारण उन उदार विचार के लोगों को क्षुब्ध कर देन वाले होते हैं जो कि द्रुत गति से प्रगति करना चाहते हैं। सन् १९३७ में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश असाधारण वृद्ध थे और पदारूढ़ पार्टी अति तीव्र

गति से आगे बढ़ रही थी। परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रपति ने "न्यायालय को भर डालने की एक योजना" बनायी।

सन् १९३५ से सन् १९३७ तक "न्यू डील" (स्वर्गीय रूज़वेल्ट की नयी आर्थिक नीति) को कार्यान्वित करने के लिए बनाये गये कई कानून सर्वोच्च न्यायालय के सामने गये और असंवैधानिक घोषित कर दिये गये। राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने कहा कि न्यायाधीश अत्यन्त वृद्ध हो गये हैं और कांग्रेस से प्रस्ताव किया कि कुछ नये न्यायाधीश नियुक्त करके न्यायाधीशों की संख्या नौ से बढ़ाकर पन्द्रह कर दी जाय। "न्यायालय को भर डालने" की यह योजना इतने अधिक लोगों को बुरी लगी कि कांग्रेस ने इसे अस्वीकृत कर दिया। परन्तु न्यायालय ने अपना मार्ग बदल लिया और राष्ट्रपति द्वारा आक्रमण का कोई अन्य उपाय किये जाने से पहले ही वह उसके मार्ग में से हट गया। सन् १९३७ के पश्चात् पुराने न्यायाधीशों के पद-त्याग और मृत्यु के कारण श्री रूज़वेल्ट को आठ नये न्यायाधीश नियुक्त करने का अवसर मिल गया। न्यायालय ने भी डिमोक्रेटिक पार्टी के बीस-वर्षीय शासन के शेष भाग में शासन के कार्यक्रम के विरुद्ध प्रायः कोई आपत्ति नहीं उठायी।

संघीय पद्धति में नीचे के न्यायालयों का राजनीतिक महत्व कुछ कम है। उनका प्रधान काम ऐसे नित्य-प्रति के झगड़ों को सुलझाना है जिनमें कोई संवैधानिक प्रश्न नहीं उलझा रहता। सबसे नीचे जिला अदालतें होती हैं। लगभग दो सौ जिला जज संयुक्त राज्य अमेरिका भर में फैले हुए हैं। इन अदालतों में वे सभी दीवानी और फौजदारी मुकदमे जाते हैं जो संघीय कानूनों के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं। संविधान के नियमानुसार २० डालर से कम मूल्य के दीवानी मामलों को छोड़कर शेष सब मुकदमों की सुनवाई उन्हें जूरी की सहायता से करनी पड़ती है।

जिन दीवानी मुकदमों की सुनवाई जिला-अदालतों में होती है उनमें वे मुकदमे भी शामिल हैं जिनमें कोई नागरिक "एम्प्लायर्स लाएबिलिटी ऐक्ट" अर्थात् मालिकों की देनदारी के कानून सरीखे संघीय कानूनों के अनुसार अपने अधिकारों का दावा करता है। "एम्प्लायर्स लाएबिलिटी ऐक्ट" के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार करने वाले किसी मालिक का कोई कर्मचारी यदि अपने काम के समय आहत हो जाय तो

वह मालिक से क्षति-पूर्ति की मांग कर सकता है। जिला अदालतें समुद्र में घटित हुए मामलों के मुकदमे भी सुनती हैं, क्योंकि संविधान ने जल सेना के कानूनों को भी संघीय शासन के नियन्त्रण में रक्खा है। एक तीसरे प्रकार के मुकदमे वे हैं जो विभिन्न राज्यों के नागरिकों में चलते हैं। इनमें कोई भी व्यापारिक मुकदमा शामिल हो सकता है क्योंकि कार्पोरेशनों (व्यापारी संघटनों) को भी उन राज्यों का नागरिक समझा जाता है जिनसे उन्हें, 'चार्टर' अर्थात् अनुमति पत्र मिला हो, वे व्यापार भले ही अन्य राज्यों में भी क्यों न करते हों; उन अन्य राज्यों में उन्हें बाहर का समझा जायगा।

जिला अदालतों के फौजदारी मुकदमों में अधिकतर अभियोग संघीय कानूनों का उल्लंघन करने के होते हैं। इन कानूनों के उदाहरण हैं, ट्रस्ट (न्यास) विरोधी कानून, या युद्ध-काल में मूल्यों के नियन्त्रण का कानून, या चोरी से माल देश में लाने या अपहरण-विरोधी कानून इत्यादि। करों के मुकदमों में सरकार किसी नागरिक पर टैक्स की अदायगी में धोखेबाजी करने का दावा कर सकती है या इसके विपरीत कोई नागरिक सरकार पर अपने अधिकार से बाहर जाकर टैक्स मांगने का दावा कर सकता है।

जिला अदालतों को प्रायः सभी मामलों में मुकदमा आरम्भ से सुनने का अधिकार होता है। अर्थात् ये अदालतें जूरी की सहायता से मुकदमे के तथ्यों का संग्रह भी करती हैं। मुकदमे के दोनों पक्ष उसके निर्णय के विरुद्ध अपील कर सकते हैं,—इस आधार पर भी कि अदालत ने मुकदमे की सुनवाई में भूल की और इस आधार पर भी कि जो कानून लागू किया गया वह असंवैधानिक था। ये अपीलें संघीय न्यायालयों के माध्यमिक स्तर के अर्थात् 'सर्किट कोर्टों' (दौरा अदालतों) में सुनी जाती हैं।

अपीलों का न्यायालय मातहत अदालत द्वारा संग्रहीत तथ्यों को ठीक मानकर चलता है, और इसलिए वहां जूरी की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसका काम केवल विवादास्पद कानूनी प्रश्नों पर निर्णय देने का है। साधारणतया अपील का अदालत

में एक बेंच पर तीन जज एक साथ बैठकर सुनवाई करते हैं। इस अदालत का एक प्रधान काम सर्वोच्च न्यायालय को नित्य-प्रति के राजनीतिक-महत्व-हीन मुकदमे सुनने की परेशानी से बचाना भी है। जब अपील में किसी कानून के असंवैधानिक होने का दावा किया जाता है तब भी अपील का न्यायालय दोनों पक्षों की युक्तियां सुनकर विवादास्पद प्रश्नों को स्पष्ट कर सकता और प्रबल युक्तियों पर आधारित हो कि सर्वोच्च न्यायालय उस सम्बन्ध में अधिक सुनवाई करने से इनकार कर दे। उस अवस्था में समझा जाता है कि अपील के न्यायालय ने ही देश के सर्वोच्च कानून का स्पष्टीकरण कर दिया है,—कम से कम उस मुकदमे की परिस्थितियों के लिए।

परन्तु यदि लगभग एक से दीखने वाले दो मुकदमों का फैसला अपीलों की अदालतें एक दूसरी से उलटा कर दें, या सर्वोच्च न्यायालय अपील की अदालत के फैसले को उलटना चाहे या उसकी व्याख्या अधिक विस्तार से करना चाहे, तो सर्वोच्च न्यायालय अपील सुनना स्वीकार कर लेता है। इसके अतिरिक्त, कुछ व्यापारिक कानूनों का—विशेषतः ट्रस्ट-विरोधी मामलों और व्यापार-नियन्त्रण-सम्बन्धी कानूनों का—राजनीतिक महत्व इतना अधिक और विस्तार इतना उलझन भरा है कि कांग्रेस ने संघीय न्यायालयों में उनकी विलम्बित प्रगति को तीव्र कर देने का निर्णय कर दिया है। इस प्रकार के मुकदमे तीन जिला जजों की मातहत अदालत में आरम्भ होते हैं और तीनों जज तथ्यों को एकत्र करके अपना निर्णय सुना देते हैं। उनके निर्णय के विरुद्ध अपील, मध्यवर्ती अपील अदालतों में गये बिना, सीधे सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकती है।

इस त्रि-स्तरीय संघीय न्यायालय पद्धति के अतिरिक्त भी कुछ विशेष न्यायालय हैं। जैसे कि क्लेमों या दावों का न्यायालय, टैक्सों अर्थात् करों का न्यायालय, और कस्टमों या तट-करों और पेटण्टों की अपीलों का न्यायालय। ये विशेष न्यायालय ऐसे विषयों पर विचार करने के लिए बनाये गये हैं जिन्हें किसी साधारण जज के लिए तबतक समझना कठिन है जबतक कि वह एक ही समस्या का अध्ययन करने के लिए अपना सारा समय न लगा दे। इन विशेष अदालतों की स्थिति

विशुद्ध 'न्यायिक' न्यायालयों और प्रशासनिक एजन्सियों की सीमा-रेखा पर होती है। इन्हें न्याय के अधिकार भी होते हैं और इनके द्वारा सरकार कुछ विशिष्ट व्यापार व्यवसायों का नियन्त्रण भी करती है।

यद्यपि संविधान के व्यापार-सम्बन्धी अनुच्छेद ने कांग्रेस को "विदेशों के साथ, राज्यों के मध्य में और इण्डियन कबीलों के साथ व्यापार का नियन्त्रण करने" का अधिकार दिया है, परन्तु आज व्यापार को जो स्वरूप प्राप्त हो चुका है उसे सरकार के नियन्त्रण में देना मूल संविधान के उद्देश्यों में सम्मिलित नहीं था। पहले नियन्त्रण का मुख्य रूप तट-कर और प्रतिबन्ध का, विशेषतः राज्यों के मध्य में तट-करों और प्रतिबन्धों के निषेध का था। परन्तु ज्यों-ज्यों व्यापार अधिकाधिक उलझता गया त्यों-त्यों कांग्रेस को रेलों के भाड़े, यात्रा की सुरक्षा, खाद्यों और औषधियों में मिलावट, और रेडियो के मीटर सरीखी वस्तुओं का नियन्त्रण भी करना पड़ गया। इन पिछले नियन्त्रणों की एक विशेषता यह है कि कांग्रेस न तो प्रत्येक मामले के तथ्य ही जान सकती और न उनके लिए अलग-अलग कानून ही बना सकती है। फ्लोरिडा राज्य के सिल्वर-स्प्रिंग्स से न्यूयार्क के राज्य के सायराक्यूज तक टोकरों में भरे हुए संतरों का रेल-भाड़ा कांग्रेस के एक पृथक् कानून का विषय नहीं बन सकता। फिर भी कांग्रेस चाहती है कि औचित्य के कुछ निश्चित सिद्धान्तों और विविध भाड़ा-दरों में उचित सम्बन्धों का ध्यान रक्खा जाय। कांग्रेस एक कानून बना कर उसमें मोटे रूप से इन सिद्धान्तों का उल्लेख कर सकती है। उससे आगे तथ्यों का अध्ययन करके कानून में उल्लिखित सिद्धान्तों के अनुसार निर्णय करने के लिए किसी की नियुक्ति करनी पड़ेगी। यही 'रेग्युलेटिंग' अर्थात् नियन्त्रण कर्ता एजन्सियां हैं।

मुख्य नियन्त्रण-कर्ता एजन्सियों में उल्लेख योग्य ये हैं—'इण्टर-स्टेट-कामर्स-कमीशन' राज्यों के मध्य में यातायात के दरों का निरीक्षण करता है; 'फेडरल-ट्रेड-कमीशन' या संघीय व्यापार आयोग ट्रस्ट-विरोधी कानूनों के उल्लंघनों और झूठे विज्ञापनों जैसी कुछ छलपूर्ण कार्रवाइयों पर दृष्टि रखता है; 'फेडरल कम्युनिकेशन्स कमीशन' अर्थात् संघीय संचार आयोग; और 'फेडरल पावर कमीशन' अर्थात संघीय

शक्ति आयोग; और 'सिक्यूरिटीज एण्ड एक्सचेन्ज कमीशन' अर्थात् सरकारी कागजों तथा अन्य दरों का नियन्त्रण करनेवाला आयोग ।

साधारणतया ये कमीशन तथ्यों की जांच के पश्चात् सम्बद्ध व्यापारिक संस्थाओं को बतलाते हैं कि उसे अपने काम का मूल्य वसूल करना चाहिए अथवा उसे कानून का पालन करने के लिए अपनी अब तक की प्रणाली में क्या परिवर्तन कर लेना चाहिए । इन नियन्त्रण-कर्ता एजन्सियों को किसी से जुर्माना वसूल करने या किसी को जेल में रखने का अधिकार नहीं है । परन्तु अपनी आज्ञा का पालन करवाने के लिए उन्हें किसी भी व्यापारी को अदालत में ले जाकर उस पर कानून भंग करने का अभियोग लगाने का अधिकार है । सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त, अन्य किसी भी संघीय न्यायालय की अपेक्षा ये एजन्सियां कानून का निर्माण अधिक करती हैं।

न्यायालय यह मानना नहीं चाहते कि कानून का निर्माण किसी ऐसी प्रशासनिक एजन्सी द्वारा किया जा सकता है जो कि शासन के त्रि-शाख ढांचे में ठीक-ठीक नहीं बैठती । प्रशासनिक एजन्सियां शासनपालिका और न्यायपालिका दोनों के बीच की वस्तु हैं और उनका अधिक झुकाव विधि-निर्माण की ओर को है । यह राजनीति से भी प्रभावित होती हैं, क्योंकि कमीशनों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है और उनकी पूर्ण परीक्षा सेनेट करती है । जिन व्यापारिक संस्थाओं पर नियन्त्रण होने की सम्भावना होती है उनके द्वारा पार्टी के कोश में हाथ खोलकर चंदा दिया जाना कोई असाधारण बात नहीं है और सेनेट भी एकाधिक कमिश्नरों की नियुक्ति केवल इस कारण अस्वीकृत कर चुकी है कि उन्होंने जनहित का पक्ष लेकर किसी प्रभावशाली उद्योग का विरोध करने का साहस किया था । "पहरेदार पर पहरा कौन देगा" इस पुरानी प्रश्नात्मक कहावत का उत्तर न्यायालय की दृष्टि में उचित से अधिक राजनीतिक है ।

परन्तु नियन्त्रण कर्ता एजन्सियों पर पहरा देने के सम्बन्ध में न्यायालय सर्वथा अधिकार शून्य भी नहीं हैं । वे एजन्सियों द्वारा एकत्र किये हुए तथ्यों पर उतना सन्देह नहीं करते जितना कि उनकी तथ्य एकत्र करने की और परिणाम निकालने की प्रणाली को सूक्ष्मता से जांचते हैं । किसी हद तक वे इन एजन्सियों को पुलीस

की अपेक्षा अधिक अप्रिय उपायों का अवलम्बन करने देते हैं। सन् १९५० में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय किया था कि 'फेडरल-ट्रेड-कमोशन' ने अर्थात् ट्रस्ट विरोधी कानूनों के उल्लंघन पर दृष्टि रखने वाले आयोग ने, यह देखने के लिए कि कानून का ठीक पालन हो रहा है या नहीं, मार्टन साल्ट कम्पनी के स्थान पर जाकर और उसकी वहियाँ आदि देखकर अनुचित कार्य कुछ नहीं किया। उस प्रकार तलाशी लेने की काररवाई यदि पुलिस या कोई अदालत करती तो उसे उचित न माना जाता। "उचित कानूनी काररवाई" शब्दों की परिभाषा, शासन के नियन्त्रण की विशेष आवश्यकताओं के अनुसार, धीरे-धीरे परिवर्तित होती जा रही है।

संघीय न्यायालयों के मुकदमों में प्राय: एक पक्ष सरकार का होता है। प्रथम एटर्नी-जनरल की नियुक्ति सन् १७८९ में सर्वोच्च न्यायालय में सरकारी मुकदमों की पैरवी करने के लिए की गयी थी। आज के 'डिपार्टमेण्ट ऑव् जस्टिस' अर्थात् न्याय विभाग में यह काम सालिसिटर-जनरल के सपुर्द है। यह डिपार्टमेण्ट या विभाग सरकार के वकील का काम करता है। यदि 'इण्टर्नल-रेवेन्यु-व्यूरो' अर्थात्' आन्तरिक आय विभाग को निश्चय हो जाय कि अमुक व्यक्ति आय कर देने से वचता है तो वह उसका मामला मुकदमा दायर करने के लिए 'डिपार्टमेण्ट ऑव जस्टिस' को सौंप देता है। यदि सेनेट की किसी कमिटी के बुलाने पर कोई गवाह प्रश्नों का उत्तर देने के लिए नहीं आता, या कमिटी को विश्वास हो जाय कि वह झूठ वोल रहा है, तो इस 'डिपार्टमेण्ट' से कहा जाता है कि वह उसका मामला "ग्रैण्ड जूरी" (जो व्यक्ति यह जांच करते हैं कि किसी व्यक्ति पर मुकदमा चलाया जा सकता है या नहीं) के सपुर्द कर दे और देखे कि उसे अदालत की मानहानि करने या झूठी गवाही देने के अपराध में दण्डित करवाया जा सकता है या नहीं।

"डिपार्टमेण्ट ऑव् जस्टिस" अर्थात् न्याय-विभाग में "फेडरल व्यूरो-ऑव्-इन्वेस्टिगेशन" या संघ का तफ़तीश करनेवाला भाग भी सम्मिलित है। यह संघीय गुप्तचर सेवा का सवसे महत्वपूर्ण अंग है। 'एफ० वी० आई०' अर्थात् संघ का तफ़तीश करनेवाला विभाग अपहरणकर्ताओं, वैंकों के लुटेरे, और संघीय कानून के अन्य उल्लंघनकर्ताओं से निपटता है। यह अन्य गुप्तचरों के विरुद्ध

गुप्तचरी का काम भी चुस्ती से करता है। यह सरकारी कर्मचारियों की निष्ठा की भी जाँच करता है। शासन विभाग की अन्य गुप्त सेवाएं जाली सिक्के चलानेवालों; चोरी से माल लानेवालों, मादक द्रव्यों का व्यापार करनेवालों, आय कर देने से वचनेवालों, और राष्ट्रपति के प्राणों की घात में रहनेवालों की घात में रहती हैं। इन सव लोगों पर, पकड़े जाने पर, 'डिपार्टमेण्ट ऑव् जस्टिस' द्वारा या उसके निरीक्षण में संयुक्त राज्य अमेरिका के स्थानीय अर्टानियों द्वारा संघीय न्यायालयों में मुकदमे चलाये जाते हैं।

'डिपार्टमेण्ट ऑव् जस्टिस' के ध्यान में कानून के उल्लंघन के जितने मामले आते हैं उन सव को दण्डित करवाने की आशा वह नहीं कर सकता; विशेपतः उन सन्दिग्ध मामलों में जिनमें कि देर तक मुकदमा चलने के पश्चात् ही मालूम होता है कि कानून का उल्लंघन हुआ था या नहीं। उदाहरणार्थ, न्यास (ट्रस्ट) विरोधी नोति का पालन करते हुए अटर्नी-जरनल को यह भी देखना पड़ता है कि वह कानून का विकास जिस दिशा में करना चाहता है उसमें सहायता देनेवाले प्रश्न निर्णय के लिए उठने की सम्भावना किन मुकदमों में अधिक है। कानून का असन्दिग्ध उल्लंघन होने के मामले तो अपेक्षाकृत कम हो होते हैं। उनके सम्बन्ध में साधारणतया कानून-विशेपज्ञों में भी मतभेद रहता है।

इन कारणों से अटर्नी-जनरल को यह निश्चय करने की काफी स्वतन्त्रता रहती है कि वह किन कानूनों को लागू करे और किन कामों को कानून का उल्लंघन माने और किनको नहीं। वह अपने निश्चय राष्ट्रपति की नीति को दृष्टि में रक्खे विना भी नहीं करता; और स्वभावतः उन पर राजनीति का भी प्रवल प्रभाव पड़ता है।

उदाहरणार्थ, जव ट्रूमन-शासन के पश्चात् 'डिपार्टमेण्ट ऑव् जस्टिस' राष्ट्रपति आइजनहोवर के हाथ में आया तव कई वड़े-वड़े ट्रस्ट-विरोधी मुकदमे न्यायालयों में जानेवाले थे। एक मुकदमा "यूनाइटेड स्टेट्स स्टील" नामक फर्म के विरुद्ध भी था। उसमें यह महत्वपूर्ण प्रश्न खड़ा होता था कि कच्चा माल उत्पन्न करने वाली कोई वड़ी कम्पनी अपनी किसी प्रकार की सहायक कम्पनियों का नियन्त्रण

कानून का उल्लंघन किये बिना कर सकती है। राष्ट्रपति आइजनहोवर इस निर्णय से बच नहीं सकते थे कि उनका अटर्नी-जनरल इस प्रश्न को न्यायालयों के सामने उपस्थित करे या नहीं।

संविधान की और कानूनों की व्याख्या अनेक राजनीतिक शक्तियों से भी प्रभावित होती रहती है। अटर्नी-जनरल से लेकर सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीशों की नियुक्ति तक उनमें सम्मिलित हैं। इस कारण अब कानून का प्रत्यक्ष रूप पत्थर के ऐसे मजबूत चबूतरे का सा नहीं रहा है कि कोई भी सरल या अनजान मनुष्य उस पर खड़ा होकर निश्चिन्त हो जाय। प्रत्युत सत्य यह है कि सन् १७८७ में संविधान की रचना करते हुए कानून को जितना निश्चित समझा गया था आज वह उससे कहीं कम निश्चित रह गया है। उन दिनों प्रचलित विश्वास यह था कि मनुष्य कृत कानूनों के मूल में एक "प्राकृतिक कानून" विद्यमान रहता है जो ईश्वर द्वारा आज्ञप्त है और जिसका आविष्कार करके विद्वान् न्यायाधीश उसकी घोषणा कर सकते हैं। ब्लैकस्टोन की प्रसिद्ध पुस्तक "कमेण्टरीज" अर्थात् 'कानून की व्याख्या' इसी सिद्धान्त पर आधारित थी, और गणतन्त्र के प्रारम्भिक दिनों में अमेरिकी वकीलों और न्यायाधीशों पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा था।

परन्तु इस सिद्धान्त के विरुद्ध विद्रोह जेरेमी बेन्थम ने सन् १७७६ में ही आरम्भ कर दिया था; और वह आक्सफोर्ड में ब्लैकस्टोन का विद्यार्थी रह चुका था। लन्दन की गन्दी बस्तियों की ओर संकेत करके बेन्थम ने कहा था कि मुझे ईश्वर का कानून इंगलैण्ड के कानून को चलाता दिखाई नहीं देता। उनका कथन था की गन्दी बस्तियों की सफाई जैसा उपयोगी काम करने के लिए, चाहे तो मनुष्य भी कानून बना सकते हैं। इसका नाम "युटिलिटेरिअनिज्म" अथवा 'उपयोगितावाद, का सिद्धान्त रक्खा गया था। बाद को अमेरिकी विचार धारा में "प्रैग्मेटिज्म" का सिद्धान्त इसी से निकला। "प्रैग्मैटिज्म" का अभिप्राय यह है कि यदि किसी वस्तु से कोई काम निकल रहा है तो वह अवश्य ठीक होगी। इस परिवर्तन के कारण कानून के प्रति अमेरिकी जनता की राजनीतिक दृष्टि में क्रान्ति-सी हो

गयी, और समय वीतने के साथ-साथ कानूनी विशेषज्ञों और न्यायाधीशों का रुख भी वदल गया।

जबतक कल्पना यह थी कि कानून पहले से ईश्वर के मन में प्रतिष्ठित है और वह वाइविल के तथा विद्वान कानून-विशेषज्ञों के चिन्तन के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकता, तवतक लोगों का विश्वास था कि वह ऐसा दृढ़ पर्वत है कि उसी पर घने कुहासे में जाकर भी हजरत मूसा कठोर शिला-खण्डों को पा सके। परन्तु अव, जव कानून को मनुष्य के हाथों में व्यवस्था, न्याय और समृद्धि लाने का एक साधन समझा जाने लगा है, तव परिस्थिति सर्वथा भिन्न हो गयी है। अव हमारी दृष्टि एक सरल मेघाच्छादित पर्वत के स्थान पर ऐसे विस्तृत भू-खण्ड पर फिरती रहती है जहां कि वाष्प-चालित शक्ति शाली कुदाल निरन्तर काम कर रहे हैं और यदि सवको नहीं तो कुछ पर्वतों को उलट-पलट रहे हैं। हमें समझना है कि कौन से पर्वत उलटे जाते हैं और कौन से नहीं। आज डेढ़-सौ वर्ष पूर्व के कानूनी पण्डितों की सरल, किन्तु वहुधा क्रूर, निश्चित धारणाओं का स्थान कहीं अधिक व्यावहारिक, परन्तु उलझन भरे, वे प्रयत्न लेते जा रहे हैं जो कि संसार को हम जैसा चाहेंगे वैसा वना देंगे। और स्वयंप्रभु जनता की आवश्यकता के अनुसार संसार का निर्माण करना अधिकतर राजनीति का विषय है।

सन् १९३७ में डिमोक्रेटों ने जो नया सर्वोच्च न्यायालय संगठित किया था वह आधुनिक "मानव-निर्मित" राज्य की समस्याओं में अपना पांव अभी तक उतनी दृढ़ता से नहीं जमा सका है जितनी दृढ़ता से पहले के न्यायालयों का विश्वास था कि उन्होंने कानून के पुराने सिद्धान्तों में जमा लिया था। क्योंकि यदि कानून का ही रूप निश्चित नहीं तो निर्णयों का कैसे रहेगा?

परन्तु यद्यपि अव हमारा विश्वास यह नहीं रहा कि सत्य और औचित्य, और न्याय और सद्भावना के सिद्धान्तों का ज्ञान, विद्वान् न्यायाधीश किसी विशिष्ट प्रेरणा से प्राप्त कर सकते हैं, तथापि इन सिद्धान्तों ने अपना कार्य करना वन्द

नहीं किया है। लोगों ने अब भी निर्णय करने के लिए कुछ सिद्धान्त निर्धारित किये हुए हैं और न्यायाधीशों से भी, मनुष्य होने के कारण, उन्हीं सिद्धान्तों की व्याख्या करने के लिए कहा जाता है। इसी कारण सर्वोच्च न्यायालय के प्रत्येक निर्णय के साथ कई पृथक् सम्मतियाँ प्रकट की हुई रहती हैं कि किन कारणों से कोई न्यायाधीश अपने किसी साथी न्यायाधीश से सहमत या असहमत रहा। परन्तु उस सत्य को खोजते रहने के प्रयत्नों का अन्त अब भी नहीं हुआ है जिसे हम अपनी स्थिति का दृढ़ आधार बना सकें।

अध्याय ८

राज्य

राज्यों को स्वतन्त्र राष्ट्रों के सभी अधिकार और शक्तियां प्राप्त हैं। अपवाद ये हैं—

(१) वे अधिकार जो संघीय संविधान ने राज्यों के लिए निषिद्ध कर दिये हैं;

(२) वे अधिकार जो प्राप्त तो राज्यीय और संघीय दोनों शासनों को हैं, परन्तु जब राज्यों द्वारा उनका प्रयोग उनके संघीय प्रयोग के साथ टकराता हो; और

(३) संघ से पृथक हो जाने अथवा त्याग-पत्र दे देने का अधिकार।

उदाहरणार्थ, संविधान ने राज्यों का किसी विदेशी शासन के साथ सन्धि की वार्ता करना निषिद्ध कर दिया है। कोई राज्य किसी दूसरे राज्य से सन्धि-वार्ता कर सकता है, परन्तु राज्यों के मध्य की सन्धि जो कि "अन्तर्राज्यीय कम्पैक्ट" कहलाती है—कानून-सम्मत तभी होती है जब उस पर कांग्रेस की स्वीकृति की छाप लग जाय।

राज्यीय और संघीय, दोनों शासन अन्तर्राज्यीय व्यापार से सम्बद्ध व्यापारिक और श्रमिक प्रथाओं को नियन्त्रित कर सकते हैं। परन्तु इन दोनों के अधिकार-क्षेत्रों की सीमा-रेखा का निर्णय करने के लिए निरन्तर मुकदमेबाजी चलती रहती है।

अपने आन्तरिक मामलों में राज्य स्वतन्त्र हैं; यहां तक कि राज्य के आय-कर और तलाक कानून सरीखे ऐसे मामलों में भी जिनका प्रभाव प्रतिस्पर्धा के कारण अन्य राज्यों पर पड़ सकता है। कोई राज्य अपनी काररवाइयों से अन्य राज्यों के

लिए परेशानी का कारण भी बन सकता है, और उसे संघीय संविधान में संशोधन करके या उसकी नयी व्याख्या करके ही रोका जा सकता है।

कोई नया राज्य संघ में सम्मिलित तभी हो सकता है जब कांग्रेस उसके प्रस्तावित संविधान को देखकर यह मान ले कि उससे "उसे गणतन्त्री पद्धति का शासन प्राप्त हो जायगा।" परन्तु एक बार संघ में सम्मिलित हो जाने पर उसे भी स्वयंप्रभुता के वही सब अधिकार प्राप्त हो जाते हैं जो प्रारम्भिक तेरह राज्यों को प्राप्त थे। इसके पश्चात् कांग्रेस उस राज्य के संविधान को केवल संघीय संविधान में संशोधन की परोक्ष विधि द्वारा परिवर्तित कर सकती है।

उदाहरणार्थ, मताधिकार किसको दिया जाय और किसको नहीं; यह निर्णय करने का अधिकार मूल संविधान में राज्यों को सौंप दिया गया था। संविधान ने स्वीकार किया था कि प्रत्येक राज्य अपने निम्न सदन के सदस्यों का निर्वाचन करने के लिए जिनको मताधिकार दे देगा, उस राज्य में कांग्रेस सदस्यों के निर्वाचन में भी मत वही दे सकेंगे। संघीय कांग्रेस को, राज्यों के संविधानों या कानूनों के अनुसार बनाये गये नियमों में परिवर्तन करने का कोई अधिकार नहीं था। परन्तु वह संघीय संविधान में ऐसा संशोधन प्रस्तुत कर सकती थी जिसके अनुसार तीन-चौथाई राज्य मिलकर अन्य राज्यों को विवश कर सकें।

स्त्रियों को मताधिकार देने और संयुक्त राज्य अमेरिका के सेनेटरों का निर्वाचन साधारण जनता के मतों द्वारा करने के लिए राज्यों को विवश इसी प्रकार के संशोधनों द्वारा किया गया था।

सन् १८६८ में उत्तरी राज्यों ने चौदहवें संशोधन द्वारा दक्षिणी राज्यों को नीग्रो लोगों को मताधिकार देने के लिए विवश करने का प्रयत्न किया था। परन्तु इस संशोधन को कठोरता से लागू अब तक नहीं किया जा सका, क्योंकि कांग्रेस राजनीतिक दबाव के कारण इन राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या संशोधन के अनुसार घटा नहीं सकी। परन्तु सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति के तथा सुप्रीम कोर्ट (सर्वोच्च न्यायालय) के ऐसे निर्णयों के कारण जिनका विरोध नहीं हुआ अथवा जिनका पालन टाला नहीं गया, धीरे-धीरे अधिकतर दक्षिणी राज्यों में भी

नीग्रो लोग 'डिमोक्रेटिक प्राइमरियों' के निर्वाचन में मत देने लगे हैं। वास्तव में प्रश्न का कठिन अंश यही है। कोई कह सकता है कि संविधान में डिमोक्रेटिक पार्टी का जिक्र नहीं है और इसलिए वह प्राइवेट संस्था मात्र है, जिसे अपने सदस्य स्वयं बनाने का अधिकार है। फिर भी जिन्हें कानून द्वारा नियमित निर्वाचन में चुना जाना होता है, उनका वास्तविक चुनाव इन्हीं 'डिमोक्रेटिक प्राइमरियों' में किया जाता है। इस समस्या का क्रमिक हल कानूनी शक्तियों के व्यावहारिक क्षेत्र से बाहर की बात थी। इसलिए इसे लोकमत के इतने विकास की प्रतीक्षा करनी पड़ी कि दक्षिणवालों को भी यह हल राजनीतिक दृष्टि से स्वीकरणीय हो जाय।

स्थानीय शासनों को अनुमति-पत्र देने का एक मात्र अधिकार राज्यों को है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार ब्रिटिश पार्लमेण्ट को अधिकार है कि वह चाहे तो लन्दन के स्थानीय शासनों को अनुमति दे दे, मिलाकर एक कर दे या समाप्त कर दे। राज्यों और न्यूयार्क या शिकागो सरीखे उन बड़े नगरों में प्रायः संघर्ष चलता रहता है जिनका बजट राज्य के बजट से भी बड़ा होता है। नगर अपनी शासन प्रणाली में परिवर्तन का या भूमि के नीचे स्थानीय यातायात की अपनी व्यवस्था करने का निर्णय अकेला स्वयं नहीं कर सकता। इस प्रकार के निर्णय वह विधान मण्डल की अनुमति से ही कर सकता है।

राज्यों के विधान मण्डलों की प्रवृत्ति निर्वाचन-क्षेत्रों का विभाजन इस प्रकार कर देने की रहती है कि विधान मण्डल में ग्राम-निवासियों के प्रतिनिधि नगर-निवासियों की अपेक्षा अधिक पहुंच जायं। इसके अतिरिक्त यह सम्भावना भी रहती है कि जो राज्य राजनीतिक दृष्टि से 'सन्दिग्ध' माने जाते हैं उनके नगर-शासन डिमोक्रेटिक और राज्य-विधान मण्डल रिपब्लिकन हो जायं।

राज्य की पुलिस और 'मिलिशिया' (अनियमित सेना) राज्य के गवर्नर के नियन्त्रण में रहती है। इन्हें किसी अन्य राज्य के विरुद्ध प्रयुक्त नहीं किया जा सकता परन्तु आन्तरिक व्यवस्था की रक्षा के काम में लाया जा सकता है। 'मिलिशिया' को संघ की सेवा के लिए भी बुलाया जा सकता है, और इसके विपरीत यदि गवर्नर अपने बल से आन्तरिक उपद्रव का दमन न कर सके तो वह उसके लिए संघ

की सेना को भी बुला सकता है। गवर्नर का काम कुछ कानूनों का पालन करवाने का भी है, परन्तु सब को नहीं। संघीय शासन के साथ व्यवहार वही करता है। गवर्नरों के सम्मेलनों में भी वही सम्मिलित होता है और वहां अपनी समान स्थिति के अन्य लोगों के साथ समस्याओं पर और राजनीति पर विचार करता है। अपराधियों को क्षमा करने का अधिकार भी गवर्नर का ही है। परन्तु कभी-कभी यह अधिकार "पैरोल या पार्डन बोर्ड" (कैदियों को शर्त पर छोड़ने या क्षमा करने वाले बोर्ड) द्वारा नियन्त्रित हो जाता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति से राज्यों के गवर्नरों की एक भिन्नता यह है कि वे बहुधा ऐसे निम्न शासनाधिकारियों से घिरे रहते हैं जो कि जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं और पदारूढ़ रहने के लिए गवर्नर पर निर्भर नहीं करते परन्तु हो सकता है कि गवर्नर का लेफ्टनेण्ट गवर्नर (उपराज्यपाल) के साथ जो उसका (गवर्नर का) उत्तराधिकारी होता है, झगड़ा रहता हो। इस प्रकार के कारणों से राज्यों के शासन में गतिरोध का हो जाना अनहोनी बात नहीं है।

कुछ राज्यों में शासन-प्रणाली की एक विशेषता "रि-कॉल" अर्थात् निर्वाचित पदाधिकारी को वापिस बुला लेने की है। जनता प्रार्थनापत्र देकर, गवर्नर या अन्य पदाधिकारियों को हाटने का मत प्रकट करने के लिए, विशेष निर्वाचन की मांग कर सकती है। इस उपाय के द्वारा, कम से कम कहने को, मतदाताओं को ऐसा अवसर मिल सकता है कि वे अपने निर्वाचित पदाधिकारियों के गतिरोधकारी झगड़े का फैसला कर दें; परन्तु व्यवहार में शायद इसका उपयोग राज्य-भवन में लड़ाई हो जाने पर उसे शान्त करने के लिए चेतावनी देने से अधिक नहीं हो सका।

राष्ट्रपति और राज्यपाल में एक और अन्तर यह है कि राज्यपाल चाहें तो अधिक ऊंचे पद पर जाने की इच्छा कर सकते हैं; और वे बहुधा वैसा करते भी हैं। यदि संयुक्त राज्य अमेरिका के किसी सेनेटर का देहान्त हो जाय तो उसके राज्य का गवर्नर (राज्यपाल) त्यागपत्र देकर लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर (उपराज्यपाल) द्वारा अपने आपको सेनेट में नियुक्त करवा सकता है। परन्तु साधारणतया गवर्नर लोग उस स्थान पर अपने किसी मित्र या शत्रु को नियुक्त कर देते हैं, और ये नियुक्तियां

सदा ही छल-रहित नहीं होतीं। बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि अगले चुनाव में सेनेट के लिए कौन खड़ा होगा, अर्थात् उस समय गवर्नर सेनेट में जाना चाहेगा या पुनः गवर्नर निर्वाचित होना चाहेगा। न्यू यार्क और ओहीयो सरीखे अति महत्वपूर्ण परन्तु 'सन्दिग्ध' राज्यों के गवर्नरों की प्रवृत्ति ह्वाइट हाउस पर दृष्टि गड़ाये रखने की रहती है। वे राज्य-भवन और संयुक्त राज्य की सेनेट के बीच में ऐसे जोड़-तोड़ करते रहते हैं कि वे समय पर अपनी पार्टी के भावी "कन्वेन्शन" में स्वयं उम्मीदवार चुन लिये जायं।

राज्यों के विधान मण्डल अमेरिकी राजनीति के अनाथ हैं। न तो उनमें इतनी चमक-दमक है कि संयुक्त-राज्य कांग्रेस की भांति वे जनता का ध्यान आकृष्ट कर लें और न वे जनता के इतने निकट हैं कि स्थानीय सुधारों के आन्दोलनों को जन्म दे सकें, जैसा कि नगरों के शासन प्रायः करते हैं।

राज्यों के लोग अपने राज्यों के विधान मण्डलों को परम्परा से आये समय की सभा समझते आये हैं। उनके सदस्य प्रायः प्रभावशाली नागरिक होते हैं, जो प्रति वर्ष या प्रति दूसरे वर्ष राज्य की समस्याएं हल करने के निमित्त कुछ सप्ताह के लिए एकत्र हो जाते हैं; इस कारण उनका पारिश्रमिक भी पूरे समय के वेतन के स्थान पर नष्ट हुए समय की क्षति-पूर्ति मात्र समझा जाता है। इसलिए इसमें आश्चर्य की बात कुछ नहीं कि बहुत से विधान मण्डल-सदस्य अपने नगर में निजी रोजगार या वकालत भी साथ-साथ करते रहते हैं। कभी-कभी वे जिन सार्वजनिक प्रश्नों पर विचार करते हैं उनके निर्णय पर उनके निजी काम का भी प्रभाव पड़ जाता है।

उदाहरणार्थ, द्वितीय विश्व-युद्ध से पहले एक राज्य में उसकी सेनेट के सदस्यों का वेतन ७०० डालर वार्षिक से भी कम था। उस राज्य में उससे बाहर के एक कार्पोरेशन की बहुत सी खानें थीं। बतलाते हैं कि उसका प्रतिनिधि अभिमान पूर्वक कहा करता था कि मेरी कम्पनी पर कोई भारी कर नहीं लग सकता, क्योंकि राज्य की सेनेट के अधिकतर सदस्य अपने-अपने शहर में मेरी कम्पनी के वकील हैं और हम उन्हें प्रतिवर्ष ५००० डालर फीस का देते हैं।

कई राज्यों में राज्य के एक या अधिक "बास" अर्थात् जनता और अधिकारियों के बीच दलाल होते हैं, जो अति प्रभावशाली व्यापारी लोगों के प्रतिनिधि होते हैं। कई रोजगारों के लिए राज्यों के कानूनों का बड़ा मूल्य होता है। उदाहरणार्थ, जो ठेकेदार जो सार्वजनिक निर्माण का कार्य करते हैं उनके लिए और जो जुआरी अपने अड्डों पर कानून का नियन्त्रण नहीं होने देना या उन्हें बन्द नहीं होने देना चाहते उनके लिए "बास" ऐसे मामलों को, विधान मण्डलों को काबू में रखने के अपने ही ढंग से, अपने ग्राहकों के लिए सन्तोषजनक रूप में सुलझा देता है। उसकी शक्ति का आधार यह विश्वास होता है कि विधान मण्डल का जो सदस्य मेरी बात सुनने से इनकार करेगा उसे मैं चुनाव में हरवा दूंगा। और यह दम्भ निराधार नहीं है।

इसके अतिरिक्त, कुछ विधि-निर्माता अपना खर्च "शेक-डाउन" अर्थात् हलचल मचा देने वाले बिल पेश करके चलाते हैं। उदाहरणार्थ, कोई सदस्य नाटक घरों के लिए आग से बचने की बहुत ही खर्चीली व्यवस्था रखने के कानून का प्रस्ताव या क्रूर सूदखोरों पर नियन्त्रण रखने का बिल प्रस्तुत कर सकता है। शायद यह बिल सचमुच लाभदायक भी हो यदि उस सदस्य का इरादा वस्तुतः इसे पास करवाने का हो। परन्तु घबराये हुए नाटक-मालिकों या सूदखोरों को सलाह पहुंचा दी जाती है कि तुम अमुक वकील को कर लो जिससे वह जाकर विधि निर्माता से बहस करके उसे समझा दे; और विधि-निर्माता को फीस के रूप में 'घूस' मिल जाने पर बिल को 'मर' जाने दिया जाता है अर्थात् उसे आगे बढ़ा कर स्वीकृत कराने की सब कार्रवाई की उपेक्षा कर दी जाती है।

राज्यों के शासन का नैतिक स्तर अपेक्षाकृत निम्न होने का कारण राजनीति में मतदाताओं की रुचि का अभाव प्रतीत होता है। लोगों को प्रायः पता नहीं होता, और वे जानने की परवाह भी नहीं करते कि राज्य के कानून की पेचीदगियां क्या हैं और उनका व्यापार-व्यवसाय से क्या सम्बन्ध है। वे ईमानदार व्यक्तियों को इतना पर्याप्त पारिश्रमिक देना नहीं चाहते कि वे कोई निजी रोजगार किये बिना राज्य की सेवा करते रह सकें। वे राज्य की राजनीति पर इतना ध्यान नहीं देते कि ईमानदार व्यक्तियों को उनके मत "तेल से खूब चिकनी की हुई पार्टी-मशीन"

के मुकाबले भी एकत्र करने का अवसर मिल जाय। परन्तु बीच-बीच में कोई प्रवाद खड़ा होकर लोगों को सुधार की मांग करने की लिए जाग्रत कर देता है।

राज्यों के विधान मण्डलों में जनता के अविश्वास के कारण सन् १६०० के आसपास, कोई बीस राज्यों ने अपने संविधान के अंग के रूप में एक सुधार को अपना लिया था। वह था "इनिशिएटिव" अर्थात् जनता द्वारा किसी कानून का प्रस्ताव किया जाना और "रेफरेण्डम" अर्थात् जनता द्वारा कानून का निषेध। लगभग दस प्रतिशत मतदाताओं के हस्ताक्षरों से युक्त प्रार्थनापत्र देकर जनता "इनिशिएटिव" की अर्थात् किसी कानून का प्रस्ताव करने की, अथवा "रेफरेण्डम" की अर्थात् विधान मण्डल के सामने उपस्थित किसी बिल पर विचार रोक देने की, काररवाई कर सकती है। ऐसा प्रार्थनापत्र आने पर विशेष निर्वाचन कराना पड़ता है और उसमें मतदाता विधान मण्डल की इच्छा के विरुद्ध भी किसी बिल को स्वीकृत या अस्वीकृत कर सकते हैं। परन्तु जनतन्त्र का यह प्रत्यक्ष रूप इतना झंझट-भरा है कि इसका उतना उपयोग नहीं हो सका जितना कि सन् १६०० में इसके आविष्कर्ताओं ने समझा था कि होगा। तथापि यदि विधान मण्डल कोई प्रवाद खड़ा कर दे और जनता जाग्रत हो जाय तो यह किवाड़ के पीछे रक्खी हुई लाठी का काम अवश्य दे देता है।

विधान मण्डलों पर अविश्वास का एक और परिणाम राज्यों की यह प्रवृत्ति है कि वे कानून को अपने संविधान का अंग बना देने का प्रयत्न करते हैं। इसका फल यह हुआ है कि कई राज्यों के संविधान इतने भारी-भरकम हो गये हैं कि उनकी शोभा राज्य के सर्वोच्च कानून सरीखी नहीं रही।

जनरुचि और प्रतिष्ठा के अभाव की बाधाओं के बावजूद, अमेरिकी जनता ने राज्यों के अधिकारों के प्रयोग के द्वारा जो सक्रिय राजनीतिक प्रगति कर ली है वह ध्यान देने योग्य है। जब जनता किसी विषय की ओर विशेषरूप से ध्यान देती है तब वह अपनी बात मनवा लेती है या जब कभी कोई योग्य गवर्नर जनता की मांगों की ओर ध्यान आकृष्ट करता है, तब भी काम बन जाता है।

राज्यों ने प्रगति की नई दिशाओं में मार्ग-दर्शक का काम किया है, जैसे कि

रेलवे-लाइनों, सार्वजनिक उपयोग के कार्यों और शराब के व्यवसाय को नियन्त्रित करने में। स्त्रियों और बालकों की रक्षा के लिए अमेरिका में श्रम-कानून पहले-पहल उन्होंने ही बनाये थे। उन्होंने बड़े नगरों को नगर-शासन की नई प्रणालियों का परीक्षण कर देखने का अधिकार दिया है। हाल के वर्षों में राज्य विधान मण्डलों का ध्यान आत्म-सुधार की ओर गया है। उन्होंने विधि-निर्माण अनुसन्धान कार्यों, बिल-लेखक कार्यालयों और विधि-सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संघों का संगठन किया है।

वास्तव में संघीय शासन के भी साधारण जनहित के बहुत से कानून राज्यों के कानूनों के आधार पर ही बनाये गये हैं, ठीक वैसे ही जैसे संविधान के व्यापार-सम्बन्धी अनुच्छेद का जन्म राज्यों के व्यापार को नियन्त्रित करने के नियमों की गड़बड़ में से हुआ था। उदाहरणार्थ, संघीय सामाजिक सुरक्षा कानून राज्यों के कानूनों का ही फल है। संघीय कानूनों का एक बड़ा प्रयोजन अमेरिकी व्यक्ति को कुछ ऐसे अधिकार देना था जो एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने पर भी सुरक्षित रहें, क्योंकि लाखों अमेरिकी लोग ऐसा करते ही रहते हैं। राज्य अब भी नये-नये कानूनों के परीक्षा-गृह बने हुए हैं। यदि ये परीक्षण सफल हो जाते हैं तो इनसे प्राप्त अनुभव के आधार पर लोग निश्चय करते हैं कि किसी कानून को जारी रखा जाय या नहीं और किसी कानून का सम्बन्ध किसी राज्य से है या संघ से।

राज्यों के न्यायालय भी ऐसी पद्धति पर स्थापित किये गये हैं जो संघीय न्यायालयों की पद्धति जैसी प्रतीत होती है। सबसे ऊपर सुप्रीम कोर्ट या सर्वोच्च न्यायालय होता है, जिसे राज्य के किसी कानून को संविधान विरोधी ठहरा देने का भी अधिकार होता है। परन्तु राज्यों के न्यायालय जनता के अधिक समीप रहते हैं और उनका वास्ता एक भिन्न प्रकार के कानून से पड़ता है। संघीय न्यायालयों का सम्बन्ध मुख्यतया संघीय संविधान से पड़ता है; और राज्यों के न्यायालय, संघीय शासन के सुपुर्द किये गये कानूनों को छोड़कर शेष जितने भी कानून हैं उन सब पर आधारित होते हैं। राज्यों के कुछ कानून तो राज्यों के संविधानों में और विधान मण्डलों द्वारा स्वीकृत कानूनों में लिखे रहते हैं। परन्तु

उनका बहुत बड़ा भाग इंगलैण्ड का "कॉमन लॉ" अर्थात् वहाँ की परम्पराओं पर आधारित अलिखित कानून है; उसे ही अपना लिया गया और न्यायालयों के निर्णयों द्वारा अमेरिकी लोगों की अवस्थाओं तथा नैतिक विचारों के अनुकूल बना लिया गया है। ल्यूइज़ियाना राज्य में प्रचलित अधिकतर कानून फ्रेंच है; वह फ्रान्स से आया हुआ और "कोड नेपोलियन" से लिया हुआ है।

"कॉमन लॉ" पहले के निर्णयों से मिलकर बना है; उनमें ब्रिटिश न्यायालयों के निर्णय भी सम्मिलित हैं। वह सभी साधारण अपराधों और नागरिकों के आपसी झगड़ों पर लागू होता है। अपवाद वहाँ होता है जहाँ विधान मण्डल ने उसके स्थान पर अन्य कोई कानून बना दिया है। जिस "ड्यू प्रॉसेस" अर्थात् "उचित कानूनी काररवाई" की संविधान में सब अमेरिकी नागरिकों को गारण्टी दी गयी है, वह प्रायः वही है जिसे इंगलैण्ड में "कॉमन लॉ का उचित रीति से पालन" कहते हैं।

उदाहरणार्थ, सन् १८७६ में इलिनॉय राज्य के न्यायालयों ने गोदामों पर लागू होने वाले इलिनॉय के एक कानून को उचित बतलाया था। उसके विरुद्ध संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय में इस आधार पर अपील की गयी कि उसके अनुसार किसी भी सम्पत्ति पर "ड्यू प्रॉसेस" या 'कानून की उचित काररवाई' के बिना ही अधिकार किया जा सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि गोदामों का नियन्त्रण किया जा सकता है क्योंकि उनका सम्बन्ध सार्वजनिक लाभ-हानि से है। न्यायालय ने 'कानूनी काररवाई' की परिभाषा इंगलिश "कॉमन लॉ" के आधार पर ही की थी, क्योंकि 'वहीं से वे अधिकार आये जिनकी संविधान रक्षा करता है'। यद्यपि संघीय शासन का आधार उसका अपना संविधान है, परन्तु वह भी उन सब मामलों में "कॉमन लॉ" अर्थात् परम्परागत अलिखित कानून से ही नियन्त्रित होता है जिनमें उसे विधान मण्डल के कानून द्वारा या संविधान में संशोधन द्वारा परिवर्तित नहीं कर दिया गया।

राज्यों के न्यायालय संघीय न्यायालयों की अपेक्षा "इक्विटी" या 'उचित व्यवहार' के मुकदमों की सुनवाई अधिक करते हैं। "इक्विटी" या 'उचित व्यवहार'

उन कुछेक सिद्धान्तों का एक पृथक समुदाय है, जो केवल ऐसे दीवानी झगड़ों पर लागू होते हैं जैसे किसी जायदाद का उत्तराधिकारियों में बंटवारा किस प्रकार किया जाय। "इक्विटी" या 'उचित व्यवहार' के आधार पर ही, जज किसी व्यक्ति को कोई काम करने से रोकने के लिए 'इंजंकशन' या हुक्म इमतनाई जारी करने या न करने का निर्णय करता है। वह काम कानून-सम्मत होना भी सम्भव है, परन्तु यदि उससे किसी अन्य व्यक्ति को बिना उचित कारण के हानि पहुंचती हो तो 'इंजंकशन' जारी किया जा सकता है।

"इक्विटी" या 'उचित व्यवहार' का विकास इंगलैण्ड में हुआ था, क्योंकि लोग "कॉमन लॉ" से सन्तुष्ट नहीं थे। वह इतना अधिक कठोर था कि उससे असाधारण परिस्थितियों में न्याय नहीं हो सकता था। "इक्विटी" या 'उचित व्यवहार' को 'राजा के विवेक' का प्रतिनिधि समझा जाता था, क्योंकि राजा अपने विशेषाधिकार से गहराई तक पहुंचकर कानून के संगठन में प्रत्यक्ष अन्याय का निवारण कर सकता था। राजा के विवेक का रक्षक 'चान्सलर' या मुख्य न्यायाधीश था, और 'चान्सरी कोर्ट' ने कुछ सिद्धान्तों के पृथक समुदाय का विकास किया था जिनमें कुछ नियम चर्च के कानून और रोमन कानून भी लिये गये थे।

चार्लस डिकन्स के पाठकों को स्मरण होगा कि इंगलैण्ड में 'कोर्ट ऑव चान्सरी' अपनी ही विधियों में इतना उलझ गया था कि बड़ी-बड़ी जायदादों के उत्तराधिकारियों के झगड़ों का फैसला शीघ्र नहीं हो पाता था। संयुक्त राज्य अमेरिका में "इक्विटी" या 'उचित व्यवहार' के परम्परागत कानूनों को विधान द्वारा सीमित और नियमित कर दिया गया है। कुछ राज्यों में 'उचित व्यवहार' के मुकदमों की सुनवाई करने के लिए 'चान्सरी कोर्ट' पृथक् हैं परन्तु अधिकतर राज्यों के न्यायालय और संघ के सभी न्यायालय कानून और उचित। व्यवहार, दोनों के मुकदमों की सुनवाई करते हैं।

अधिकतर राज्यों में निम्नतम न्यायालय मैजिस्ट्रेट की अदालत या पुलिस अदालत है। उसका जज या मैजिस्ट्रेट, जूरी की सहायता के बिना ही शराब पी कर पागल हो जाने के अपराधी को तीस दिन की जेल का या अत्यधिक तीव्र गति

से मोटर चलाने के अपराधी को जुरमाने का दण्ड दे सकता है। उसको यह अधिकार भी है कि खून करने के अभियुक्त का मुकदमा सुनकर निर्णय करे कि उसे ऊंची अदालत द्वारा सुनवाई के लिए रोका जाय या नहीं।

मैजिस्ट्रेट से ऊपर नियमित सुनवाई की अदालतें होती हैं जो ऐसे अधिक महत्वपूर्ण मुकदमों की सुनवाई करती हैं जिनमें जूरी की सहायता की आवश्यकता होती है।

अदालतों की गन्दी राजनीति प्रायः मैजिस्ट्रेट या पुलीस कोर्टों में ही दिखलाई पड़ती है, क्योंकि इन अदालतों के अधिकारियों को प्रायः कानून का प्रशिक्षण नहीं मिला होता है और उनकी नियुक्ति सन्दिग्ध राजनीतिक प्रभावों से हुई होती है। ऊपर की अदालतों में भ्रष्टाचार कम होता है।

अधिकतर राज्यों में ऊपर की अदालतों के जजों का चुनाव एक नियत समय के लिए जनता करती है। वकील लोग जजों का निर्वाचित किया जाना पसन्द नहीं करते, क्योंकि निर्वाचित जज बहुधा राजनीतिक हवा के रुख को देखकर चलते हैं। 'बार ऐसोसिएशन' (वकीलों के संघ) चुनाव से पूर्व उम्मीदवारों के नामांकन को प्रभावित करने का यत्न करते हैं, जिससे जज वही व्यक्ति चुने जायं जो उनकी दृष्टि में अच्छे हों। मजदूरों और किसानों के संगठन निर्वाचन द्वारा जजों की नियुक्ति समर्थन करते हैं, क्योंकि उनका ख्याल है कि यदि जजों की नियुक्ति गर्वनर या विधान मण्डल पर छोड़ दी जायगी तो वे बड़े-बड़े व्यापारियों के पक्षपातियों को जज बना देंगे। इस प्रकार राज्यों की ऊपरी अदालतें राज्य में काम करती हुई राजनीतिक शक्तियों का लिहाज करने के लिए विवश रहती हैं; और अमेरिकी जनता के अधिकतर मुकदमे इन्हीं अदालतों में होते हैं। और इसीलिए वे न्याय और ईमानदारी के उस दर्जे की प्रतिनिधि होती हैं जिसे मतदाता लोग चाहते हों या समर्थित करने के लिए तैयार हों।

राज्यों के शासन में कर्मचारियों की नियुक्तियां साधारणतया राजनीतिक पक्षपात से अधिक और योग्यता के आधार पर कम होती हैं। संघ के शासन में

राजनीतिक पक्षपात इतना अधिक नहीं होता । राज्यों के विधान मण्डलों के समान, यहां सिविल सर्विसें भी जनता की उपेक्षा का शिकार बनी रहती हैं। परन्तु अब अनेक शक्तियां सुधार की दिशा में बढ़ रही हैं।

ऐसी एक शक्ति 'टेकनीकल' सेवाओं का बढ़ जाना है। उदाहरणार्थ, स्वास्थ्य-रक्षा और इंजिनीयरिंग की सेवाओं में साधारण राजनीतिक दावपेंच लगाने वाला व्यक्ति यदि घुस भी जायगा तो शीघ्र ही वह पदारूढ़ पार्टी की सार्वजनिक आलोचना का शिकार बन जायगा। इन सेवाओं में नियुक्तियां योग्यता के आधार पर करनी पड़ती हैं और यह प्रथा अब फैलती जा रही है।

एक अन्य शक्ति संघीय सहायता की है। इस धन का स्थानीय उपयोग करने का भार राज्य के अधिकारियों पर रहता है और इसलिए इसके कारण पहले-पहल तो रिश्वतखोरी और अव्यवस्था खूब होती है, परन्तु कुछ समय पश्चात् इस व्यवहार के कारण जनता जाग्रत हो जाती है। वाशिंगटन में भी पदारूढ़ पार्टी अनुभव करने लगती है कि उसे राज्य की सहायता करने का यश नहीं मिल रहा है। फल यह होता है कि अगली बार सहायता देते समय यह शर्त साथ लग जाती है कि संघीय कोष से मिली हुई धन-राशि का व्यय करते समय राज्य नियुक्तियां योग्यता के आधार पर करें।

इन शक्तियों के द्वारा राज्यों के शासन में योग्य और ईमानदार व्यक्तियों की नियुक्ति में सहायता मिलने के कारण, राज्यों की राजधानियों में नागरिकों के उन संगठनों का भी बल बढ़ जाता है जो शासन सुधार का आन्दोलन करते हैं।

अधिकतर राज्यों के शासनों को अपना व्यय अपनी आय के भीतर रखने में कठिनाई होती है। इसका कारण यह नहीं कि उनके बजट अन्य अमेरिकी संगठनों से बड़े होते हैं, अपितु यह है कि करों की वसूली में उनकी स्थिति निर्बल है। किसी कृषि प्रधान राज्य का बजट दस से बीस करोड़ डालर तक का और न्यू यार्क सरीखे किसी राज्य का सौ करोड़ डालर तक का हो सकता है। ये बजट अमेरिका के मध्यम और बड़े व्यापारिक कार्पोरेशनों से मिलते-जुलते हैं। न्यू यार्क राज्य का बजट न्यू यार्क नगर के बजट से छोटा होता है।

राज्य-सरकारों के कर लगाने की मद जमीन जायदाद, चल सम्पत्तियां, रोजगार चलाने के लाइसेन्स, क्रय-विक्रय, व्यापारिक या निजी आय, और पेट्रोल तथा सिगरेट पर उत्पादन-कर इत्यादि हैं। सम्पत्तियों पर कर सीमित ही रखना पड़ता है, क्योंकि वह स्थानीय स्वशासन-संस्थाओं की आय का एक बड़ा साधन है। इसके अतिरिक्त सम्पत्ति पर समस्त कर इतना ऊंचा नहीं होना चाहिए कि उसका स्वामी उसे छोड़ने के लिए तैयार हो जाय। आय-कर इस कारण सीमित हो जाता है कि संघीय शासन उसे भारी मात्रा में वसूल कर लेता है, विशेषतः ऊंची आय वालों से। जो सम्पन्न व्यक्ति अपनी आय का ६० या ७५ प्रतिशत संघीय शासन को दे देता है, वह अपनी शेष का उतना ही प्रतिशत राज्य-सरकार को नहीं दे सकता।

इसलिए राज्य-सरकारें आय-कर लगाते हुए ऊंची और नीची आयों में उतना अधिक अन्तर नहीं कर सकतीं जितना संघीय शासन कर देता है। सम्पत्ति-कर, बिक्री-कर और पेट्रोल तथा तम्बाकू पर उत्पादन-कर का प्रभाव चूंकि ऊंची आय वालों की अपेक्षा नीची आय वालों पर अधिक पड़ता है इसलिए राज्यों के करों की साधारण प्रतिक्रिया व्यापार में सुस्ती छा जाने की होती है। यदि कोई राज्य करों की दर ऊंचे उठाने का अधिक यत्न करे तो उसका फल यह होता है कि व्यापार का प्रवाह तुरन्त ही पड़ोस के उस राज्य की ओर को मुड़ जाता है जिसमें वस्तुएं सस्तो मिल सकती हैं।

आय की न्यूनता के कारण राज्य-सरकारें जिम्मेवारियां भी न्यून उठाती हैं और उनकी प्रवृत्ति अपना कुछ बोझ संघीय शासन पर डाल देने की हो जाती है। राज्य संघीय कोष से कई प्रकार की महत्वपूर्ण सहायता पाने की आशा करते हैं। सड़कों और स्कूलों की सहायता तो अमेरिकी परम्परा में पुरानी चली आतो है। सन् १९३३ से, बेरोजगारी तथा अन्य अनेक प्रकार की कठनाइयों में राज्यों को सहायता देने का उत्तरदायित्व संघ के सामाजिक-सुरक्षा विभाग पर जा पड़ा। कठिन समयों पर सार्वजनिक निर्माण कार्यों के लिए संघ की ओर से अधिकाधिक सहायता देने का सिद्धान्त अब प्रायः सर्वत्र मान लिया गया है।

राज्यों को संघीय सहायता देने का सिद्धान्त दो आर्थिक सत्यों पर आधारित है। प्रथम यह कि संघ की कर वसूल कर सकने की शक्ति राज्यों से अधिक है, क्योंकि उसके कर से कोई व्यक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका से बाहर जाकर ही बच सकता है और द्वितीय यह कि आर्थिक समानता समस्त देश के लिए ही लाभदायक है। कुछ राज्य अन्यों की अपेक्षा अधिक सम्पन्न हैं। साधारणतया, सम्पन्न राज्यों के लिए समर्थ लोग पूंजी लगाकर निर्धन राज्यों में व्यापार करके वहां कि आय अपनी ओर खींच सकते हैं। यदि संघीय शासन सम्पन्न राज्यों के लोगों पर कर लगाकर उसकी वसूली से प्राप्त हुए धन का कुछ भाग निर्धन राज्यों को दे दें तो धन के आदान-प्रदान का प्रवाह रुकने नहीं पाता और समृद्धि का चक्र चलता रहता है। इस प्रकार समानता का तर्क राज्यों की स्वावलम्बिता के सरल तर्क पर विजयी हो जाता है।

इसी प्रकार राज्य-सरकारों का एक बड़ा उत्तरदायित्व यह है कि वे राज्य के धनी और निर्धन भागों में असमानता के कुछ अंश को समान कर दें। साधारणतया, ग्राम भागों के साथ व्यापार करते हुए लाभ का बड़ा भाग नगरों में पहुंच जाता है। यदि उसमें हस्तक्षेप न किया जाय तो देहातों की जायदादें धीरे-धीरे नगरों के बैंकों, बीमा कम्पनियों, और अन्य पूंजी लगाने वालों के स्वामित्व में आती जाती हैं, जैसा सन् १९३३ से पहले हुआ था। इसका परिणाम साधारण समृद्धि की दृष्टि से नहीं होता। निजी व्यापार के असन्तुलित परिणामों को ठीक करने के लिए आवश्यक होता है कि राज्य निर्धन प्रदेशों की सहायता करें। उस सहायता का रूप साधारणतया राज्य के व्यय पर सड़कों और सार्वजनिक भवनों का निर्माण, और स्कूलों, पुस्तकालयों तथा अन्य स्थानीय कल्याण-कोषों को प्रत्यक्ष धन का दान होता है।

असमानता को मिटाने की आवश्यकता और कर लगाने में संघ की ऊंची शक्ति के कारण राज्यों की आंखें वाशिंगटन की ओर अधिकाधिक उठने लगी हैं। उनकी सहायता वहीं से प्राप्त होती है। परन्तु इस प्रवृत्ति से अमेरिकी जनता चिन्तित होती जा रही है। इस चित्र का दूसरा पहलू यह है कि संघीय शासन की केन्द्रीय नौकरशाही और उसके प्रदेशिक तथा स्थानीय दफ्तर तो बढ़ते चले जा रहे हैं और

राज्यों का प्रभाव तथा उत्तरदायित्व घटते जा रहे हैं। दोनों राजनीतिक पार्टियों के नेता चाहते हैं कि संघीय सहायता में वृद्धि को सीमित करने का कोई उपाय निकाला जाय। गवर्नर स्टीवन्सन ने जो सन् १९५२ में राष्ट्रपति पद के चुनाव में खड़े हुए थे, इस बात पर विशेष बल दिया था कि उत्तरदायित्व वाशिंगटन (अर्थात् केन्द्रीय या संघीय सरकार की ओर) से राज्यों की ओर को और राज्यों की ओर से स्थानीय शासनों की ओर को यथाशक्ति अधिकाधिक विकेन्द्रित कर दिया जाय। सन् १९५३ के आरम्भ में राष्ट्रपति आइजनहावर ने आज्ञा दी थी संघीय और राज्यीय आमदनियों और जिम्मेवारियों के पारस्परिक सम्बन्धों का व्यापक अध्ययन किया जाय, जिससे राज्यों से राजनीतिक जीवन को अधिक स्वस्थ बनाया जा सके।

राज्यों के सम्मान और उत्तरदायित्व को ऊंचा उठाने के लिए अनेक बार अनेक उपाय सुझाये गये हैं। एक उपाय यह है कि संघीय शासन कुछ करों को न लगावे, जैसे पेट्रोल का टैक्स; क्योंकि राज्य अपनी सड़कों का व्यय चलाने के लिए इसी पर निर्भर करते हैं। एक सुझाव यह है कि जो राज्य कुछ विशिष्ट करों को लगाने में उपेक्षा करें उसके नागरिकों से उन करों को संघीय शासन वसूल कर ले; जो नागरिक अपने राज्य को वह कर दे रहे हों उनमें वह वसूल न किये जायं। उदाहरणार्थ, इस प्रकार का दबाव राज्यों को संघ भी सामाजिक-सुरक्षा व्यवस्था के साथ सहयोग करने के लिए विवश करने को डाला गया था। आय-कर के सम्बन्ध में भी इस उपाय के अवलम्बन का सुझाव दिया गया है। यदि कोई भी राज्य प्रतिस्पर्धा के लिए व्यापारियों या अपने यहां आने वाले सम्पन्न लोगों के सामने आसान शर्तें पेश न करे तो राज्यों की आय बहुतेरी बढ़ सकती है।

केन्द्रीकरण की स्वाभाविक और प्रबल प्रवृत्ति को रोकने का प्रयत्न राजनीति-उपायों से यथाशक्ति किया जायगा और शायद इसके लिए कृत्रिम साधन भी काम में लाये जायंगे, क्योंकि अपने राज्यों के शासन की बहुधा उपेक्षा करते रहने पर भी अमेरिकी जनता का स्वभाव यही है कि जब उसके राज्य पर संकट आता दिखाई देता है तब वह उसकी सहायता करने में पीछे नहीं रहती।

अध्याय ९

स्थानीय शासन

संयुक्त राज्य अमेरिका में आधे से अधिक लोग नगरों में रहते हैं, और इनमें से लगभग एक सौ नगरों की आबादी एक लाख से अधिक है। शेष अमेरिकी लोगों के लिए स्थानीय शासन का काम मुख्यतया काउण्टियां (जिले) करती हैं। इनके अतिरिक्त स्कूलों, स्वास्थ्य की सेवाओं, और अन्य अनेक प्रयोजनों के लिए हजारों विशेष जिले भी हैं। इन जिलों की सीमाएं और काउण्टियों, नगरों तथा अन्य जिलों की सीमाएं एक दूसरे के ऊपर भी छा जाती हैं। इस कारण हो सकता है कि किसी नागरिक को शासन की संघ, राज्य, नगर, काउण्टी और जिला आदि आधा दर्जन इकाइयों के टैक्स देने पड़ते हों।

टॉमस जेफरसन नगरों से घृणा करते थे और उन्हें भ्रष्टाचार का नाबदान कहा करते थे। वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी में संयुक्त राज्य अमेरिका के नगरों का राजनीतिक जीवन भ्रष्टाचार के लिए बदनाम था। इसका एक बड़ा कारण यह था कि युरोप से और अमेरिकी देहातों से नये लोगों के जो झुंड के झुंड नगरों में आते थे वे सुगमता से वहां की राजनीतिक 'मशीनों' का शिकार बन जाते थे। सन् १९०० के पश्चात् नगरों के शासन की कुशलता और ईमानदारी में कुछ सुधार हुआ है। इस सुधार का एक कारण यह है कि हाल के वर्षों में रहन-सहन का दर्जा ऊंचा होता गया और नगरों के श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा उन्नत हो गयी है। इसलिए उस सहायता और सहानुभूति की आवश्यकता कुछ कम हो गयी है जिसे

राजनीतिक "वास" अर्थात् 'मालिक' आप से आप बांटते फिरा करते थे। सुधार का एक अन्य कारण यह भी है कि नगरों में शासन की अधिक कुशलतापूर्ण पद्धति अपना ली गयी है।

नगरों को स्वयं तो स्वयंप्रभुता के कोई अधिकार प्राप्त नहीं हैं, परन्तु नागरिक जैसा 'चार्टर' या अधिकार-पत्र चाहते हैं वैसा राज्य से प्राप्त करने के लिए वे कुछ प्रभाव अवश्य डाल सकते हैं। नगरों में तीन प्रकार की शासन-प्रणालियां प्रचलित हैं। "मेयर और कौन्सिल" की मूल प्रणाली अब भी सर्वाधिक प्रचलित है। "कमीशन" की प्रणाली को पहले-पहल टेक्सास राज्य के गैल्वेस्टन नगर में प्रसिद्धि प्राप्त हुई, जहां इसे सन् १९०१ में पानी की विनाशक बाढ़ के पश्चात् आयी आपत्ति का सामना करने के लिए अपनाया गया था। उसके पीछे लगभग पन्द्रह वर्ष तक यह मध्यम आबादी के अन्य नगरों में भी फैलती चली गयी, परन्तु उसके पश्चात् इसके अनुयायी बनने बन्द हो गये। उसके पश्चात् लोकप्रियता तीसरी "कौन्सिल-मैनेजर" अथवा 'सिटी-मैनेजर' प्रणाली की बढ़ने लगी; और इस समय मध्यम श्रेणी के नौ सौ से अधिक नगरों में इसी के अनुसार काम हो रहा है।

पुराने ढंग के "मेयर और कौन्सिल" शासन में कौन्सिल-मैन (सभासद) अथवा 'ऐल्डरमैन' (विशिष्ट सभासद) स्थानीय राजनीतिज्ञ हुआ करते थे, और नगर के कर्मचारी राजनीतिक सेवा का इनाम देने के लिए नियुक्त किये जाते थे। नगरों की भ्रष्टाचारी 'मशीनों' को शासन की यह प्रणाली निम्न कोटि की राजनीतिक कारवाइयां करने के लिए खूब उपयुक्त लगती थी, और इस कारण वे शासन की कोई नयी प्रणाली अपनाने का प्रायः विरोध करती थीं। परन्तु "मेयर और कौन्सिल" पद्धति में भी अब अनेक सुधार हो चुके हैं।

अधिकतर 'कौन्सिलें' अब दो के स्थान पर एक ही सदन वाली रह गयी हैं। इन अकेले सदनों की भी सदस्य-संख्या अब घट गयी है और वे सदस्य आम चुनाव द्वारा निर्वाचित होते हैं। ज्यों-ज्यों ऐसी सार्वजनिक सेवाओं का अधिकाधिक उत्तरदायित्व नगरों पर पड़ता जाता है जिनके लिए उच्च-प्रशिक्षित सेवकों की आवश्यकता होती है त्यों-त्यों नगरों के शासनों का भी पुनर्गठन होता जाता है।

बहुत से नगरों ने मेयर के अधिकार बढ़ा कर उसे शासन की व्यवस्था करने के लिए अधिक उत्तरदायित्व सौंप दिया है। इस प्रकार वे "सिटी-मैनेजर" पद्धति को न अपनाते हुए भी आचरण उसके समान ही करने लगे हैं।

नगर-शासन की "कमीशन" प्रणाली इसलिए चली थी कि उत्तरदायित्व ऐसे कुछेक लोगों के हाथ में रहे जो प्रभावशाली होने के कारण जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किये रह सकें। कमीशन के सदस्य प्रायः पांच होते हैं। उनमें से एक चेयरमैन होता है। वह मेयर कहलाता है। नीतियों का निर्धारण तो सारा कमीशन करता है, परन्तु प्रत्येक सदस्य किसी विशेष विभाग का उत्तरदायित्व उठा लेता है। इस पद्धति की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि कमीशन यदि किसी उलझन में फंस जाय तो उसे सुलझाने का अधिकार किसी को नहीं रहता।

"कौन्सिल-मैनेजर" प्रणाली का परीक्षण पहले-पहल सन् १९०८ में वर्जीनिया राज्य के स्टौण्टन नगर में किया गया था। इस प्रणाली में नगर के लिए नीतियों का निर्धारण और नियमों की रचना तो कौन्सिल करती है, परन्तु शासन एक मैनेजर के हाथ में रहता है। उसकी नियुक्ति कौन्सिल करती है। वह अन्य किसी नगर का निवासी भी हो सकता है। सफल मैनेजर ज्यों-ज्यों अपने कार्य में अधिक कुशलता प्राप्त करते जाते हैं, त्यों-त्यों वे अधिक अच्छी नौकरी पाने की आशा करने लगते हैं। नगर के अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति उनकी योग्यता के आधार पर मैनेजर करता है और इस प्रकार उसे अपना काम भली प्रकार कर सकने के लिए पर्याप्त स्वतन्त्रता रहती है।

"मैनेजर प्रणाली" का आधार, निजी व्यापार के मूल सिद्धान्त के समान, यह है कि नगर की जनता जो कुछ चाहे वह उसे न्यूनतम मूल्य में उत्कृष्टतम मिलना चाहिए। लोगों को नगर के कार्पोरेशन का संचालन, किसी साधारण निजी कार्पोरेशन के समान, एक मैनेजर और एक बोर्ड ऑव् डाइरेक्टर्स की नियुक्ति के द्वारा करना उपयुक्त जंचता है। उसमें उनकी अपनी स्थिति शेयर होल्डरों सरीखी रहती है।

स्पष्ट है कि यदि लोग चाहें तो नगर का शासन, देश की अपेक्षा, बहुत कम राजनीति से चल सकता है। नगर में ऐसी समस्याएं कम होती हैं जो केवल

राजनीति के द्वारा सुलझ सकती हैं। उदाहरणार्थ, उसे वैदेशिक सम्बन्धों या कागजी मुद्रा के संकोच या विस्तार जैसी उन समस्याओं से कोई वास्ता नहीं होता जिनका निर्णय वाशिंगटन में करना पड़ता है। इसके विपरीत वे अल्पसंख्यक लोग "मैनेजर प्रणाली" की निन्दा करते हैं जो बहुमत द्वारा निर्वाचित और बहुसंख्यकों का प्रतिनिधित्व करने वाली कौन्सिल की अधीनता में अपने आपको अरक्षित समझते हैं। कुछ नगरों ने लोगों के राजनीतिक मतभेदों को स्वीकार करने की आवश्यकता का अनुभव करके उन्हें कौन्सिल में आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रदान कर दिया है। इस व्यवस्था के अनुसार यदि किसी अल्पसंख्यक वर्ग को चुनाव में दो तिहाई मत मिल जायं तो उसे कौन्सिल में भी दो तिहाई स्थान मिल जाते हैं। निर्वाचन की साधारण पद्धति में शायद उसे एक भी स्थान न मिल सकता। यदि आनुपातिक प्रतिनिधित्व को राष्ट्रीय निर्वाचनों में भी अपनाया जायगा तो उससे छोटी-छोटी ऐसी पार्टियों को बढ़ावा मिलेगा जो एक पार्टी में से फूटकर निकलती हैं। इस कारण इसे द्विदलीय पद्धति के लिए भय का कारण समझा जाता और इसका विरोध भी किया जाता है। इस आपत्ति के कारण आनुपातिक प्रतिनिधित्व का प्रयोग नगरों में भी कम ही हुआ है।

नगरों के शासन का काम स्वयं नगरों के विस्तार की अपेक्षा भी अधिक तीव्र गति से बढ़ा है। इसका कारण उन नयी-नयी सेवाओं का आविष्कार है जिनके बिना काम चलाने के लिए अब नागरिक तैयार नहीं होते। इसके अतिरिक्त अब नगरों का काम द्रुत परन्तु महंगी यातायात और स्वास्थ्य व्यवस्थाओं के बिना भी नहीं चल सकता। जॉर्ज वाशिंगटन के समय इनकी आवश्यकता नहीं थी। भवनों तथा सड़कों के निर्माण, आग बुझाने की व्यवस्था, स्कूलों और पुस्तकालयों और पुलीस के प्रबन्ध आदि व्यय नगर की आय बढ़ाने की सामर्थ्य की अपेक्षा कहीं अधिक होता जा रहा है।

आय के मुख्य स्रोत जमीन-जायदाद, बिक्री-कर और व्यापार पर सीधे कर हैं। परन्तु जमीन-जायदाद और बिक्री के कर भी व्यापार पर निर्भर करते हैं। यदि

नगर अपने करों की नींव पर भारी बोझ डाल देगा तो व्यापार उन उपनगरों में चला जायगा जो नगर के कर लगाने के अधिकार से परे होंगे।

नगर जो आमदनी कर सकता है और जीवित रहने के लिए उसे जो कुछ करना पड़ता है, उन दोनों में अन्तर रहने के कारण अधिकतर नगर सरकारी सहायता के भरोसे रहने लगे हैं। उनके राज्यों पर देहाती मतदाताओं का प्रभाव होता है और वे समान बंटवारे में अर्थात् नगरों से कर वसूल करके उसे देहातों में फैलाने में लगे रहते हैं, इस कारण नगर संघ की सहायता पर अधिक भरोसा करते हैं।

सन् १९५३ में न्यू यार्क में, न्यू यार्क नगर के मेयर और राज्य के गवर्नर में यह विवाद उठ खड़ा हुआ था कि नगर को राज्य से कितनी सहायता मिलनी चाहिए।। राज्य अपनी आय का ५५ प्रतिशत स्थानीय शासनों को सहायता देने पर व्यय कर रहा था। न्यू यार्क नगर को राज्य से जो सहायता मिल रही थी। वह उसके (नगर के) सारे बजट का १५ प्रतिशत बतलायी जाती थी। मेयर की शिकायत का आशय यह था कि राज्य के कानूनों में बंटवारे के नियम ऐसे होते हैं कि उनके कारण छोटी इकाइयों की सहायता का भाग अनुचित रूप से अधिक मिल जाता है।

संघीय सरकार से नगरों की अपील का आधार समानता का सिद्धांत नहीं है, क्योंकि अधिक धन तो बड़े नगरों में ही केन्द्रित रहता है। उसका आधार कर लगाने की सामर्थ्य का अन्तर है। नगर सम्पन्न पुरुषों या कार्पोरेशनों पर भारी कर नहीं लगा सकते, क्योंकि वैसा करने से उनके दफ्तर नगर छोड़ कर चले जायंगे। परन्तु संघीय सरकार उन पर भारी कर लगा सकती है और उससे मिले हुए धन का कुछ भाग नगरों को दे सकती है। वह करती भी यही है।

इस सबका परिणाम यह हुआ है कि "ग्रेट डिप्रेशन" अर्थात् सन् १९३० के बाद की भारी मन्दी में जनता को सहायता देने के भारी बोझ के कारण जबसे नगरों की कमर टूटी है तबसे नगर-शासनों में यह प्रवृत्ति आ गयी है कि राज्यों को तो वे क्रूर सौतेली माता और संघीय शासन को उदार चाचा के समान मानने लगे हैं।

नगरों की बहुत-सी सेवाओं के, विशेषतः नयी और 'टेक्नीकल' सेवाओं के तो ईमानदारी और कुशलता के दर्जे में तो प्रशंसनीय उन्नति हुई है, परन्तु अधिकतर

नगरों की पुलीस ने वैसी उन्नति नहीं की उसमें, योग्यता के आधार पर नियुक्तियों का आविष्कार होने से पहले की, राजनीतिक नियुक्तियों और राजनीति से प्रभावित होने की पुरानी ही परम्परा चली आ रही है। उसका संगठित अपराधियों के साथ सीधा सम्पर्क रहता है और वे अपने बचाव का उसे अच्छा मूल्य दे देते हैं। पुलीस कर्मचारियों को वेतन प्रायः थोड़ा मिलता है और 'भले' लोग उन्हें सन्देह तथा घृणा की दृष्टि से देखते हैं। सन् १९५० और सन् १९५१ में सेनेटर एस्टेस केफौवर की अध्यक्षता में एक समिति ने अन्तर्राष्ट्रीय अपराधों की जांच की थी और उसे इस बात के प्रमाण मिले थे कि नगरों की पुलिस को संगठित अपराधियों से नियमित रकमें मिलती हैं। आशा है कि ज्यों-ज्यों अपराधों की जांच की विधियों में उन्नति के कारण अधिकाधिक उच्च प्रशिक्षित मनुष्यों को आवश्यकता पड़ती जायगी और ज्यों-ज्यों जनता पुलीस पर अधिक ध्यान देगी और उसकी कठिनाइयों को समझती जायगी त्यों-त्यों अन्य सार्वजनिक सेवाओं के समान पुलीस भी सुधर जायगी।

जो छः करोड़ अमेरिकी नगरों में नहीं रहते उनके लिए स्थानीय शासन का मुख्य रूप 'काउण्टियों' अर्थात् छोटे जिलों का शासन है। काउण्टी औपनिवेशिक काल से अभी तक प्रायः अपरिवर्तित ही चली आ रही है। उसका शासन एक बोर्ड करता है। उसके सदस्य प्रायः दस से भी कम होते हैं। बोर्ड का चेयरमैन ही बहुधा काउण्टी की अदालत का जज भी होता है। काउण्टी के दफ्तर में जमीन-जायदादों के कागजात, वसीयतनामों, विवाहों और अन्य ऐसे निजी दस्तावेजों को सुरक्षित रखा जाता है जिनकी कभी सार्वजनिक प्रयोग के लिए आवश्यकता पड़ सकती है। काउण्टी स्थानीय सड़कें बनाती, राज्य और देश के निर्वाचनों का स्थानीय प्रबन्ध करती और जनगणना तथा सेना में भरती आदि के कामों में स्थानीय इकाई का काम देती है। शेरिफ (कानून का पालन कराने वाला अधिकारी,) कोरोनर (मृत्यु के कारणों की जांच करने वाले), अदालत, और जेल का प्रबन्ध भी काउण्टी ही करती है।

विभिन्न राज्यों में काउण्टियों को विभिन्न प्रकार का कार्य करना पड़ता है।

उनके अधिकारियों के नाम विभिन्न हैं और उनकी ईमानदारी या भ्रष्टाचार का दर्जा भी विभिन्न है। उनके शासन का जनता से निकटतम सम्पर्क और जड़ पुरानी परम्पराओं में बहुत गहरी गयी हुई है। काउण्टियों के बहुत से काम लोग शौकिया करते हैं, और वह भी प्रायः बिना कुछ लिए अपना कुछ समय लगाकर। देहातों के लोग प्रायः परिवर्तन-विरोधी स्वभाव के होते हैं और अपने बाप-दादों से चले आये रीति-रिवाजों में परिवर्तन शीघ्र नहीं करते। अकुशलता और भ्रष्टाचार भी लोगों की पुरानी आदतों का अंग हैं।

सड़कों और स्कूलों का भार अब धीरे-धीरे काउण्टियों पर से उठकर राज्यों और संघ के कोशों पर पड़ता जा रहा है। गाँव-दिहात में हुए कत्लों की जांच के लिए भी अब राज्य के गुप्तचरों का उपयोग होने लगने की सम्भावना है। इस प्रकार केन्द्रीकरण की वृद्धि के साथ-साथ काउण्टियों के परम्परागत काम कम होते जा रहे हैं। साथ ही केन्द्रीकरण के कारण, काउण्टी के शासनों में अनेक नये पदों की सृष्टि हो गई है। पहले इन पदों का काम शासन की निम्नतम इकाई स्थानीय डिस्ट्रिक्ट या जिले से चल जाया करता था।

अधिकतर स्थानीय डिस्ट्रिक्ट या जिले स्कूल चलाने के लिए बनाये जाते हैं। अन्य जिले कर-जिले या सड़क जिले अथवा निर्वाचन-जिले आदि होते हैं। निर्वाचन-जिला निर्वाचन के दिन मतदान के केन्द्र की व्यवस्था करता है। अथवा जिला केवल उतना क्षेत्र हो सकता है जितना किसी 'जस्टिस ऑव दी पीस' या छोटे मजिस्ट्रेट के आधीन हो। जिलों का कोई संगठन यदि हो भी तो उसका रूप सरलतम रहने की सम्भावना होती है। पक्की सड़कें बनाने पर ज्यों-ज्यों मोटरों का प्रयोग बढ़ता जाने के कारण एक कमरे वाले ग्रामीण स्कूल केन्द्रीय स्कूलों में मिलते जाते हैं और अन्य स्थानीय कामों का केन्द्र बनाता जाता है त्यों-त्यों स्थानीय डिस्ट्रिक्ट या जिले मिटकर 'प्रेत' या 'भूत' मात्र रहते जा रहे हैं।

न्यू इंगलैण्ड में मूल स्थानीय इकाइयां 'टाउन' थे। न्यू इंगलैण्ड के टाउनों का क्षेत्र प्रायः तीस से साठ वर्गमील तक होता है। यह क्षेत्र लगभग इतना बड़ा होता है कि उसमें रहने वाला किसान अच्छे मौसम में घोड़ा बग्घी गाड़ी द्वारा

कचहरी तक जाकर वापस लौट सके। शासन का प्राथमिक आधार 'टाउन' की सभा है। उसमें एकत्र होकर नागरिक 'टाउन' के मामलों का प्रबन्ध करने के लिए 'सिलेक्टमैनों' (निर्वाचित जनों) का चुनाव करते, कर लगाते, और यह निर्णय करते हैं कि क्विन्सी स्ट्रीट को पक्का बनाया जाय या नहीं और पार्क के लिए बेञ्चें खरीदी जायं या नहीं। यह विशुद्ध जनतन्त्र तभी तक ठीक चलता है जब तक कि आबादी बढ़कर विकट रूप धारण नहीं कर लेती, और तब 'टाउन' राज्य से कह देता है कि उस पर 'सिटी' अर्थात् बड़े नगर की व्यवस्था लागू कर दी जाय।

टाउन और काउण्टी के बीच की एक वस्तु 'टाउनशिप' थे। वे प्रायः छः मील वर्ग होते थे और कुछ राज्यों में स्थापित किये गये थे परन्तु पक्की सड़कें बनने के पश्चात् यात्रा सुगम होती जाने के कारण ये काउण्टियों में मिलते जा रहे हैं।

जिन पुरानी बस्तियों, जिलों ग्रामों, और पड़ोसों में लोग पहले परस्पर मिलते-जुलते, क्रय-विक्रय करते, या गिरजाघर जाने के लिए पैदल या घोड़े पर आया-जाया करते थे उन सब पर मोटर के चलने का प्रभाव उन्हें बखेर देने के रूप में बड़ा है। बड़े शहरों में यातायात की आधुनिक सुविधाओं के कारण एक ही 'ब्लॉक' में रहने वालों में भी अपने काम-काज, मित्र, स्कूल, और चर्च एक दूसरे से बिल्कुल अलग रखने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। इस परिवर्तन के कारण वह समाजिक और राजनीतिक जीवन खोखला हो गया है जिसे "ग्रास-रूट्स" का नाम दिया जाता था। लोग अब भी राजनीति सीख सकते हैं और पार्टियों के संगठन में भाग ले सकते हैं, परन्तु पहले की अपेक्षा कुछ क्षेत्रों से आरम्भ करके और बहुसंख्यक अपरिचितों के मध्य में बैठकर।

पड़ोसियों के साथ परिचय और निकटता के सम्बन्ध टूट जाने के कारण अपने पन की भावना नष्ट हो गयी है उसे पुनर्जीवित करने के लिए अमेरिकी लोग अपने रीति-रिवाजों और संगठनों को पुर्नव्यवस्थित करने का प्रयत्न अनेक प्रकार से कर रहे हैं। संयुक्त राज्य से अमेरिका की सरकार तक अपने कार्यों को यथाशक्ति विकेन्द्रित करने का प्रयत्न कर रही है। कृषि विभाग ने कृत्रिम रूप के पड़ोसी समुदाय तक संगठित करने का प्रयत्न किया है। वह कृषि प्रशिक्षण के किसी क्रम

का अध्ययन करने के लिए कुछ समूहों को एकत्र करता और उनमें खाने-पीने की वस्तुएं बांट कर उनके परिवारों को एक दूसरे से पड़ोसियों की भांति मिलने का अवसर देता है। एकीभूत संगठित ग्रामीण स्कूल, ग्रामों के बिजली सहकारी संगठन, और राज्य विश्वविद्यालय, ये सब नवीन परन्तु ऐसे विस्तृत पड़ोसों को पुनर्जीवित करने का यत्न कर रहे हैं जिनकी सीमा मोटर गाड़ी की पहुंच के भीतर हो।

नयी संस्थाओं का संगठन कृत्रिम तो अवश्य है, परन्तु इतने मात्र से वे कुछ कम अमेरिकी नहीं हो जातीं। अमेरिकियों को जब आवश्यकता हो तब नयी संस्थाएं खड़ी करके प्रसन्नता होती है। यान्त्रिक प्रगति के कारण जीवन का जो केन्द्रीकरण होता जा रहा है, उसके प्रति अमेरिकियों का भाव भारी अविश्वास का है। वे विकेन्द्रीकरण के और "ग्रास रूट्स" को फिर से पुनर्जीवित या पुनः संघटित करने के उपायों की खोज में रहते हैं, क्योंकि उनकी सहज बुद्धि उन्हें बतलाती है कि राजनीतिक जीवन को प्राण "ग्रास रूटों" से ही मिलते हैं। अमेरिकी जीवन के बड़े छोटे सभी शासनों की क्रमिक प्रगति, केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण की शक्तियों के दबाव से प्रभावित हो रही है।

अध्याय १०

शासन और व्यापार

संयुक्त राज्य अमेरिका की अर्थ व्यवस्था भी, अन्य लोकतन्त्री देशों के समान, मिली-जुली है। स्कूलों की पुस्तकों में जिस अर्थ-व्यवस्था का वर्णन "केपिटलिस्ट" या पूंजीपतियों की अर्थ व्यवस्था के नाम से किया गया है, यहां उसके उदाहरण के रूप में परस्पर प्रतिस्पर्धा पर आधारित स्वतन्त्र उद्योग भी हैं, जिनमें अधिकतर छोटे-छोटे व्यापारियों, कारखानों, किसानों, और स्वाधीन पेशा-वर लोगों की गणना होती है, और ऐसे बड़े-बड़े उद्योग भी हैं जो बाजार की कीमतों को अपने हाथ में रख कर या अन्य प्रकार व्यापार का नियन्त्रण करते रहते हैं। इन्हें कभी-कभी "मोनोपोलिस्टिक कम्पिटीशन" अर्थात् एकाधिकारियों की प्रतियोगिता के नाम से भी पुकारा जाता है। यहां टेलीफोन और घरेलू बिजली की सर्विस, सरीखे प्राकृतिक "मोनोपली" (एकाधिकार) भी हैं। यहां ऐसे सहकारी उद्योग भी हैं, जिनका लाभ हिस्सेदारों के स्थान पर उनके ग्राहकों में ही बंटता है। यहां ऐसी लाभ न कमाने वाली संस्थाएं भी हैं, जो नाना प्रकार की सेवाएं करती हैं और अंशतः या पूर्णतः चंदों पर चलती हैं। इनका उदाहरण, चर्च, प्राइवेट विश्वविद्यालय, सभा-समाज, क्लबें, परोपकारी संस्थाएं और मजदूर यूनियनें हैं। इनके अतिरिक्त यहां सरकारी स्कूलों और डाक-घरों जैसे सरकारी स्वामित्व में चलने वाले उद्योग भी हैं।

व्यापार के साथ शासन का सम्बन्ध दुर्बोध है, सरल नहीं। इसका कारण विभिन्न प्रकार की अर्थ-व्यवस्थाएं हैं। उनमें से प्रत्येक की आवश्यकताएं और रूप पृथक्-पृथक्

हैं। संघीय, राज्यीय और स्थानीय शासनों की व्यवस्थाएं भी इनमें सम्मिलित हैं। सरकारी सहायता की अधिकतर मांग छोटे बड़े व्यापारियों, बैंकरों और किसानों आदि जनता के 'पूंजीपति' भागों की ओर से की जाया करती है और उनमें बहुधा परस्पर तीव्र विरोध होता है। परन्तु सरकारी सहायता चर्चों, कालिजों और सहकारी संस्थाओं को भी दी जाती है। उसका रूप प्रायः करों से मुक्ति का होता है। सरकारी नियन्त्रणों का प्रभाव अन्य प्रकार के रोजगारों की अपेक्षा प्राकृतिक एकाधिकारों पर अधिक पड़ता है।

संविधान के अनुसार संघीय शासन संगठित करने का प्रथम उद्देश्य वही था जो कि युरोप में शुभ-योजना चालू करने का था—अर्थात् तट-करों की दीवारों द्वारा विभाजित अनेक छोटे बाजारों के स्थान पर एक बड़ा बाजार बनाकर व्यापार और व्यवसाय की सहायता करना। संघीय शासन ने इस उद्देश्य को राज्यों के मध्यवर्ती व्यापारिक प्रतिबन्धों को समाप्त करके सिद्ध किया था।

इसके पश्चात्, शासन ने, ऐलक्जण्डर हेमिल्टन के निरीक्षण में, दृढ़ अर्थ-व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। उद्देश्य भी व्यापार की सहायता करना था। संघीय शासन ने प्रायः निकम्मे 'वार-बाण्डों' (युद्ध के ऋण-पत्रों)—राज्यों के बाण्डों—की भी जिम्मेदारी अपने सिर ले ली। इनमें से अधिकतर को सट्टेबाजों ने प्रति डालर पीछे कुछेक सेण्टों में ही खरीद रक्खा था। शासन ने जनता पर कर लगाये, अधिकतर आयात वस्तुओं पर तट-कर के रूप में—और बाण्डों का कर्ज चुकता कर दिया। इन अदायगियों के द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रारम्भिक जीवन में नये उद्योग खोलने के लिए पूंजी एकत्र होने में सहायता मिली।

तट-करों से न केवल शासन की आय बढ़ गयी, उनका यह लाभ भी स्पष्ट शब्दों में बतलाया जाने लगा कि इनके कारण विदेशी वस्तुएं महंगी हो जाती हैं और इस प्रकार अमेरिकी उद्योगों को विदेशी प्रतिस्पर्धा से संरक्षण मिल जाता है।

संघीय शासन शीघ्र ही निजी व्यवसायों को प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में सहायता भी देने लगा। शासन ने नहरें और सड़कें बनाकर, और पीछे रेल बनाकर, भी

सहायता दी। शासन नें देश के पश्चिम भाग में जो भूमि खरीदी या जीती थी उनको उसने लोगों में बांट दिया या नाममात्र मूल्य पर वेच दिया। "प्रेयरीज़" अर्थात् घास के मैदानों की नयी भूमि का और विस्कौन्सिन तथा मिन्नसोटा के नये जंगलों की लकड़ी का, उनकी रक्षा या पुनरुत्पादन का कुछ भी विचार किये विना, कई शताब्दियों तक दोहन किया जाता रहा। यहां तक कि बीसवीं शताब्दी में आकर यह दशा हो गयी कि गेहूँ और शहतीर को बेचते हुए उनकी लागत का कोई विचार नहीं किया जाता था, खेतों और जंगलों में लगी हुई पूंजी को उत्पादक खा जाते थे और पैदावार को सरकारी सहायता मिल जाती थी। संघीय शासन आरम्भ के सौ या कुछ अधिक वर्षों तक पश्चिम में धन के नये स्रोत खोल-खोल कर निजी व्यापारियों को देता गया था कि वे उनसे मनमानी नकदी कमा लें।

पुलिस द्वारा व्यापार की रक्षा का विकास बहुत धीरे-धीरे हुआ। शुरू-शुरू में व्यापार की चोरों से माल लाने, जाली सिक्के चालू करने और समुद्री डकैतियों आदि पुराने और सुपरिचित अपराधों से वचाव के अतिरिक्त, अन्य प्रकार की संघीय संरक्षा की आवश्यकता प्रायः नहीं पड़ी। आगे चल कर नये-नये व्यवसायों का जन्म होने के कारण और व्यापार के दूर-दूर तक फैल जाने तथा उलझ जाने के कारण, बुराइयां भी नयी-नयी होने लगीं और उन्हें रोकने के लिए पुलिस की आवश्यकता पड़ने लगी।

सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण बुराई, जिसके कारण उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लोगों की चिन्ता बढ़ने लगी थी, एकाधिकार थी। सन् १८६१-१८६ के गृहयुद्ध के पश्चात् व्यापार इतना बढ़ गया कि जनता का ध्यान उसकी एकाधिकारी प्रवृत्तियों की ओर जाने लगा। अमेरिकी जनता अभी तक पश्चिम की ओर को अग्रसर होने की दशा में ही थी और पश्चिमी राज्यों में प्रत्येक परिवार अपने दैनिक जीवन में बहुत कुछ स्वाधीन था। परन्तु जब गेहूँ बेचकर आवश्यकता की अन्य वस्तुएं खरीदनें का समय आया तब अग्रणी किसानों ने अपने आपको एकाधिकारी खरीदारों, एकाधिकारी रेलवे कम्पनियों और एकाधिकारी विक्रेताओं के चंगुल में फंसा पाया। वे विक्षुब्ध हो गये, और तभी से एकाधिकार के विरोध की विशिष्ट अमेरिकी भावना का सूत्रपात हुआ।

सन् १८६० के आरम्भ-काल में दक्षिण और पश्चिम के किसानों में बड़े व्यापारियों के अनधिकृत अधिकार का विरोध करने के लिए "पापुलिस्ट" पार्टी का संगठन हुआ। इस पार्टी ने रेलों और टेलीग्राफ तथा टेलीफोन लाइनों के राष्ट्रीयकरण की मांग की। "पापुलिस्टों" ने डाकघरों में सेविंग्स बैंक खोले जाने और क्रमिक दर पर अर्थात् ज्यादा आमदनी पर ज्यादा और थोड़ी आय पर थोड़ी आय-कर लगाने की भी आवाज उठायी। उन्होंने सुझाव दिया कि "ग्रीन बैंक" अर्थात् कागजी मुद्रा चलाकर और लोगों की निजी चांदी के सिक्के ढालकर मुद्रा-बाजार में बैंकों का एकाधिकार समाप्त कर दिया जाय। इनमें पिछला सुझाव कागजी मुद्रा के समान ही मुद्रा स्फीति करने वाला था, क्योंकि इससे एक डालर से कम मूल्य की चांदी का मूल्य उन पर सिक्कों की छाप लगने के पश्चात् एक डालर के समान हो जाता था। राष्ट्रपति के सन् १८६६ के चुनाव में विलियम जे० ब्रायन के नेतृत्व में डिमोक्रेटिक पार्टी ने चांदी के सिक्के बनाने का आन्दोलन अपना लिया; और "पापुलिस्टों" ने भी उसका साथ दिया परन्तु ब्रायन चुनाव हार गये।

जनता में विक्षोभ "पापुलिस्ट" आन्दोलन के रूप में भड़क चुका था। उसके कारण सन् १८६० तक दोनों प्रमुख पार्टियों का ध्यान भी एकाधिकार के विरुद्ध राष्ट्रीय स्तर पर कुछ न कुछ कार्रवाई करने की ओर जा चुका था। इस कारण शॅरमन ऐण्टी-ट्रस्ट (ट्रस्ट-विरोधी) ऐक्ट बनाया गया। शॅरमन ऐक्ट के अनुसार अन्तर्राज्यीय अथवा वैदेशिक व्यापार की अवरोधक सब गुट-बन्दियों और षड्यन्त्रों को कानून-विरुद्ध घोषित कर दिया गया।

शॅरमन ऐक्ट से पूर्व भी राज्यों ने परम्परागत कानून के जोर पर एकाधिकारों को रोकने के कुछ प्रयत्न किये थे। परन्तु ज्यों-ज्यों कार्पोरेशन बड़े होते गये और देश के एक छोर से दूसरे छोर तक फैलते गए त्यों-त्यों राज्यों के प्रयत्न प्रभावहीन होते गये। शॅरमन ऐक्ट की रचना बहुत कुछ परम्परागत कानून के सामान्य शब्दों में या संवैधानिक संशोधन के समान की गयी थी। इसका विशिष्ट प्रयोग पीछे न्यायालयों के निर्णयों और बीच-बीच में नये कानूनों द्वारा निर्धारित हुआ।

इसलिए धीरे-धीरे संयुक्त राज्य अमेरिका के ट्रस्ट-विरोधी कानून को परम्परागत कानून का लचकीला रूप प्राप्त हो गया; और यह आवश्यक भी था, क्योंकि एकाधिकार की बुराई अनगिनत रूपों में फैलती जा रही थी।

ट्रस्ट-विरोधी कानून को लागू करने के तमाम उतार-चढ़ावों और व्यापार के अवरोधक बड़े-बड़े प्रयत्नों का मिलकर यह परिणाम हुआ है कि संयुक्त राज्य अमेरिका स्थिरता पूर्वक युरोप की साधारण प्रथाओं से भिन्न मार्ग पर चलता रहा है। सभी अमेरिकी लोग, चाहे डिमोक्रेट हों, चाहे रिपब्लिकन, शॅरमन ऐक्ट का सम्मान करते और उसे अमेरिकी स्वतन्त्रता की एक आधार-शिला मानते हैं। जिन्होंने इस कानून का उल्लघंन भी किया है उन्होंने वैसा इसके पवित्र सिद्धान्त के विरोध में नहीं, इसकी व्याख्या के रूप में किया है। जो कुछ धूर्तता हुई भी है, वह सब स्वतन्त्रता प्रतिस्पर्धा के सिद्धान्त का आदर करते हुए ही हुई है। यह सिद्धान्त अमेरिकी विचार-शैली का अविभाज्य अंग बन चुका है।

अमेरिका के व्यापारी-व्यवसायी लोगों के आचरण में कभी-कभी इस सिद्धान्त का उल्लंघन भले हो दिखाई दे जाय, परन्तु अमेरिकी विचार-शैली में निश्चित-रूप से एक सिद्धान्त विद्यमान है, जो अधिकतर अन्य सब स्वतन्त्र देशों से उसकी भिन्नता को प्रकट कर देता है। अमेरिकी लोग बड़ी-बड़ी कम्पनियों की गुटबन्दी और एकाधिकार के नैतिक आदर्शों के विरुद्ध और आर्थिक उन्नति के लिए घातक मानते हैं। उनका विश्वास है कि ट्रस्ट-विरोधी कानून कभी-कभी फटे चिथड़े और भद्दे रूप में भले ही दिखाई पड़ा हो, परन्तु यह स्वतन्त्र लोगों के लिए स्वतन्त्रता के झण्डे का काम देता रहा है और इस कारण अमेरिकी प्रगति का एक बड़ा कारण रहा है।

अमेरिकी लोग समझते हैं कि चूंकि युरोप की कोयला और इस्पात कम्पनियों के नये संगठन के अनुमति पत्र में एक प्रबल ट्रस्ट-विरोधी कानून भी सम्मलित है जो उद्योगों में टेकनीकल कुशलता बढ़ाने के लिए प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करता रहेगा, इसलिए वह उचित दिशा में प्रगति का एक सन्तोपजनक उदाहरण है। अमेरिकी लोगों को परीक्षणों और भूलों के पश्चात् अनुभव हो चुका है कि "पूंजीपति"

प्रणाली ज्यों-ज्यों अधिकाधिक सम्पन्न और उत्पादक होती जाती है त्यों-त्यों उसे उन घातक रोगों से मुक्त रक्खा जा सकता है जिनकी कार्ल मार्क्स और उनके अनुयायियों ने कल्पना की थी; परन्तु ऐसा तभी हो सकता है जब शासन एकाधिकार के घास-पात की निराई निरन्तर करता रहे।

अन्य कुछ कम महत्व की पुलिस कार्रवाइयां संघ और राज्यों के शासनों ने उपभोक्ताओं को ठगी से बचाने के प्रयोजन से की हैं। सादगी के दिनों में जब किसान अपनी सब खरीद-फरोख्त चौराहों की दुकानों पर किया करते थे तब ईमानदारी के व्यवहार को ही सर्वोत्तम मार्ग माने जाने की सम्भावना रहती थी, क्योंकि दुकानदारी नामवरी के जोर पर ही चलती थी। परन्तु ज्यों-ज्यों व्यापार का देश-भर में विस्तार होता गया और नये-नये अपरिचित सामान बिक्री के लिए बाजार में आने लगे त्यों-त्यों ग्राहकों को अधिकाधिक वस्तुएं अनपहचानी गहराई में से मिलने लगीं और सब प्रकार की ठगी में अधिकाधिक लाभ होने लगा। इन अवस्थाओं के कारण ऐसे कानून बनाये गये जो शृंगार की और भोजन की वस्तुओं में भयानक विषों के प्रयोग का और विज्ञापनों में छल-पूर्ण दावे करने का निषेध करते थे। कानून द्वारा यह आवश्यक कर दिया गया कि खाद्यों और औषधियों के डब्बे पर उनके भीतर की वस्तु का असली तोल और उनके बनाने में प्रयुक्त पदार्थों का नाम लिखा जाय।

राजनीतिक दृष्टि से ठगी-विरोधी कानून एक उल्लेखनीय सफलता का सूचक है, क्योंकि ग्राहक कोई भी व्यक्ति हो सकता है, और उनका ऐसा कोई संगठन नहीं है जिसके द्वारा इस प्रकार के कानून बनवाने के लिए वे राजनीतिक दबाव डाल सकें। उत्पादकों या निर्माताओं के सुसंगठित होकर वाशिंगटन में और राज्यों की राजधानियों में सौदाबाजी करने के लिए एजन्सियाँ खोल लेने की सम्भावना अधिक है। यह भी सम्भव है कि किसी व्यवसाय के नेता मिल कर निश्चय करें कि ईमानदारी से बनाये हुए माल के संरक्षण के लिए बाजार को अनियन्त्रित रखने की अपेक्षा, मिलावटी माल को रोक देना अधिक अच्छा होगा; इस कारण वे इधर ध्यान दें और संरक्षक कानून बनवाने में सहायता करें। परन्तु इस प्रकार के अधिकतर

कानून पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों के कारण जाग्रत जनता द्वारा दवाव डालने पर ही वने हैं, व्यवसायियों की ओर से तो उसका प्रवल विरोध ही हुआ है।

राष्ट्रपति फ्रेंकलिन रूजवेल्ट को अपने शासन के प्रारम्भिक काल में एक वड़ा संघर्ष "सिक्युरिटियों" (कम्पनियों के हिस्से आदि) के वाजार में ईमानदारी लाने के लिए करना पड़ा था। सन् १९३३ के 'सिक्युरिटीज ऐक्ट' और सन् १९३४ के 'सिक्युरिटीज एण्ड एक्सचेन्ज ऐक्ट' द्वारा स्टॉक अर्थात् कम्पनियों की पूंजी वेचने वाले कार्पोरेशनों को वाधित किया गया कि वे कम्पनी की अवस्था का सच्चा-सच्चा विवरण दें और झूठे दावे करने पर नुक्सान के लिए जिम्मेवार उन्हीं को ठहराया गया। "न्यू डील" (रूजवेल्ट की आर्थिक-नीति का नाम) का एक अन्य काम, जिसका वित्तीय वाजार पर प्रभाव पड़ा, सन् १९३५ का 'होल्डिंग-कम्पनी-ऐक्ट' था। इस कानून का उद्देश्य सार्वजनिक उपयोगिता का काम करने वाले ऐसे वड़े-वड़े व्यवसायिक साम्राज्यों का वनना रोकना था जो कम्पनियों की तह पर तह चढ़ाते जाते थे, और उनमें से प्रत्येक कम्पनी अपने से निचली तह की कई-कई कम्पनियों के हिस्सों का नियन्त्रण करती थी। इन उलझे हुए व्यावसायिक साम्राज्यों के लिए लाभ को ऐसी जगह सरका देना वांये हाथ का खेल था जहां कम्पनियों की इस शृंखला पर नियन्त्रण करने वाले उसे आपस में खपा लें, और साधारण शेयर होल्डरों को अपने हिस्से का कुछ भी लाभ न मिले।

जो वित्तीय कम्पनियां झूठे विज्ञापन देकर, स्टॉक मार्केट में उतार-चढ़ाव करके और वे सिर-पैर की 'होल्डिंग-कम्पनियां' अर्थात् कई-कई कम्पनियों का नियन्त्रण करने वाली कम्पनियां वनाकर, जनता से अनुचित लाभ उठाया करती थीं उन्होंने इन नियन्त्रणकारी कानूनों का तीव्र विरोधी किया। एक वार तो एलमर-डेनिएलसन नामक एक चपरासी लड़के ने गवाही देते हुए वतलाया था कि मुझे "होल्डिंग-कम्पनी-ऐक्ट" का विरोध करने वाले तारों पर हस्ताक्षर इकट्ठे करने के लिए नौकर रक्खा गया था और मुझे प्रति तार तीन सेण्ट दिये जाते थे। इस प्रकार के संकेत मिले थे कि देश की कवरें तक मानो वड़ी तादाद में वाशिंगटन को तार भेजने लगी थीं और वे तार सदा ही इस विल के विरोध में होते थे। ऐसी-ऐसी वेईमानियों से

कानून के विरोध का होना प्रमाणित हो जाने पर वित्तीय कानूनों के पास होने में बड़ी सहायता मिली। इसका व्यापक परिणाम यह हुआ कि वित्तीय बाजार की जोखिमें कम हो गयीं और जनता का विश्वास बढ़ गया। परन्तु उस मन्दी का शिकार बने हुए लोगों के राजनीतिक दवाव के कारण ही ये कानून पास हो सके थे।

व्यापार-व्यवसाय के साथ शासन का एक और सम्बन्ध टेकनिकल सेवाएँ करने के रूप में है। इनमें से अनेक सेवाओं को शासन बिना मूल्य करता है। कृषि अन्वेषण और प्रशिक्षण की सेवाएँ उन सेवाओं में प्रथम थीं जो संघीय शासन ने आरम्भ की थीं। संघीय शासन अब वैज्ञानिक खोज, संख्याओं और गणनाओं की सूचना, ऋतु की रिपोर्ट और बाजार दरों की सूचना देने की सेवा देश और विदेश में बिना मूल्य करता है। संविधान के निर्देशानुसार, शासन, पेटेण्ट और कापीराइट की रक्षा का कार्य भी करता है।

राष्ट्रपति हर्बर्ट हूवर के समय, जिन कम्पनियों या कार्पोरेशनों के सिक्युरिटियों का मूल्य गिर जाने के कारण दिवालिया हो जाने का भय होता था उन्हें ऋण देने के लिए एक "रिकन्स्ट्रक्शन-फाइनैंस-कार्पोरेशन" की अर्थात् धन की सहायता देकर कम्पनियों को पुनर्जीवित करने वाले कार्पोरेशन की स्थापना की गयी थी। द्वितीय विश्व-युद्ध के समय इसका खूब विस्तार हो गया और इसकी अनेक शाखा-प्रशाखाएँ खुल गयीं। "मेटल्स-रिजर्व-एजन्सी" (धातुओं का संग्रह करने वाली एजन्सी), "रबर-रिजर्व-एजन्सी" और "डिफेन्स-सप्लाइज-कार्पोरेशन" (रक्षा की सामग्री देने वाले कार्पोरेशन) आदि के रूप में इसने अरबों डालर ऋण दिये और व्यय किये। इसके अतिरिक्त, सन् १९३४ में स्थापित "एक्सपोर्ट-इम्पोर्ट-बैंक" विदेशी व्यापार को बढ़ावा देने के लिए ऋण देता है। "फेडरल-हाउसिंग-ऐडमिनिस्ट्रेशन" अर्थात् संघीय-गृह-शासन ने ऋणदाताओं का बीमा करके और इस प्रकार उनकी जोखिम घटा कर मकानों के रेहन पर मिलने वाले ऋण की ब्याज-दर नीची कर दी है। ग्रामों में बिजली के तार लगाने के लिए कम ब्याज पर ऋण देने के प्रयोजन से "रूरल-इलेक्ट्रिफिकेशन-ऐडमिनिस्ट्रेशन" अर्थात् ग्रामीण-बिजली-शासन की स्थापना की गयी।

संघीय शासन न केवल संसार का सब से बड़ा बैंकर (महाजन) है, वरन् वह सब से बड़ी बीमा कम्पनी भी है। वह न केवल बेरोजगारी का, बुढ़ापे का, और युद्ध-निवृत्त सैनिकों का बीमा करता है, वरन् मकानों, छोटे रोजगारों और खेतियों के लिए निजी ऋण देकर उनसे सम्बद्ध अन्य भी कई प्रकार के बीमे करता है।

अमेरिका के राजनीतिक जीवन में यह विवाद निरन्तर चलता रहता है कि सरकारी उद्योगों और निजी उद्योगों में ठीक ठीक विभाग-रेखा कहां खींची जाय। पन-बिजली की योजनाओं सरीखे जो काम निजी उद्योग से हो सकते हैं उन्हें सार्वजनिक उद्योग से करने का रिपब्लिकन लोग प्रायः सदा विरोध करते हैं। डिमोक्रेटों ने, न्यू डील के मातहत टेनेसी और कोलम्बिया नदियों सरीखे सार्वजनिक बिजली घरों का परीक्षण मात्र करके देखा था। उसमें उनका उद्देश्य कुछ तो प्रत्यक्ष प्रतिस्पर्धा का था और कुछ निजी बिजली घरों के दर नियन्त्रित करने के लिए एक "नपना" कायम कर देने का था।

परन्तु डिमोक्रेटों और रिपब्लिकनों में से किसी का भी झुकाव 'सोशलिज्म' या समाजवाद को व्यावहारिक सिद्धान्त के रूप में अपनाने का नहीं है। दोनों में से कोई भी पार्टी किसी भी उद्योग का शासन द्वारा चलाया जाना तबतक पसन्द नहीं करती जबतक उसके लिए कोई प्रबल कारण न हो। साधारणतया सार्वजनिक और निजी उद्योगों में से एक को अपनाने का निर्णय करने के प्रधान सिद्धान्त तीन होते हैं।

प्रथम यह कि जब जनता किसी काम को करवाना चाहे और उसके उपभोक्ताओं से उसका मूल्य वसूल करने का कोई सरल साधन न हो तब वह काम शासन के सुपुर्द कर देना चाहिए। बाढ़ की रोक-थाम और ऋतु सूचना देने के काम इसी प्रकार के हैं।

द्वितीय यह कि जिन कामों को शासन निजी उद्योग की अपेक्षा कम व्यय में कर सकता है, उन्हें शासन को ही करना चाहिए। सार्वजनिक स्कूलों का संचालन और बुढ़ापे का बीमा उन कामों के उदाहरण हैं।

तृतीय यह कि डाक विभाग या टेलिफोन जैसे प्राकृतिक एकाधिकार के जो

काम निजी रूप से नियन्त्रित उद्योग में जनता को संतुष्ट नहीं कर सकेंगे उन्हें शासन के स्वामित्व में चलाने की मांग स्वयंमेव होने लगे। उदाहरणार्थ, डाक द्वारा पार्सल भेजने की पद्धति तभी आरम्भ की गयी थी जब कि एक्सप्रेस कम्पनियों से जनता असन्तुष्ट हो गयी थी। संयुक्त राज्य अमेरिका में अधिकतर नगरों को पानी-वितरण की प्रणालियों को और कुछेक के बिजली-वितरण प्रणालियों को भी म्युनिसिपल शासनों ने अपने हाथ में ले लिया है। टेलिफोन कम्पनियां अपने काम की उत्तमता का विज्ञापन निरन्तर करती हैं, जिससे जनता को असन्तोष न हो और राष्ट्रीकरण का भय जाता रहे। अमेरिकी लोग पसन्द यह करते हैं कि रेल टेलीफोन, टेलिग्राफ, रेडियो और हवाई सर्विस आदि प्राकृतिक एकाधिकार या अर्ध-एकाधिकार के नियन्त्रण में निजी संगठनों द्वारा किये जायं। परन्तु नियंत्रणकारी संस्थाओं द्वारा औद्धत्य के प्रदर्शन या भ्रष्टाचार को रोकने के रूप में सार्वजनिक स्वामित्व का भय सदा सामने रक्खा जाता है।

शासन और व्यापार में अन्तर को प्रकट करने वाले ये सिद्धान्त, कार्य के इस अति उलझ भरे क्षेत्र में अमेरिकी प्रवृत्ति का एक नमूना है। संघीय राज्यीय और स्थानीय शासनों के वजटों—इनमें रक्षा का कार्यक्रम भी सम्मिलित है—का अधिकतर भाग ऐसे व्यवहारों से मिलकर बनता है जिन का सम्बन्ध व्यापारिक जगत से होता है। इन करोड़ों छोटे वड़े व्यवहारों में अमेरिकी लोग सदा मध्य-वर्गीय, स्वतन्त्र उद्योग के, और साधारण बुद्धि के मार्ग पर चलने का प्रयत्न करते हैं। राजनीतिक विवाद इस प्रश्न पर कभी नहीं होता कि मध्य मार्ग त्यागकर हमें फासिस्ट या कम्यूनिस्ट प्रणाली अपना लेनी चाहिए या नहीं, अपितु यह निश्चय करने के लिए होता है कि मध्य का मार्ग कौन सा है।

अध्याय ११

व्यक्तियों के अधिकार

"स्वतन्त्रता की घोषणा" के शब्दों में "मनुष्य को उसके स्रष्टा ने कुछ अनपहरणीय अधिकारों से सम्पन्न किया है। उनमें जीवन, स्वतन्त्रता और सुख प्राप्ति का प्रयत्न भी है। इन अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए ही मनुष्यों में शासन-तन्त्रों की स्थापना होती है।"

सन् १९४६ में राष्ट्रपति ट्रूमन द्वारा नियुक्त नागरिक अधिकार समिति ने ऊपर कहे गये इन अधिकारों का प्राप्त करने के लिए अधिक उत्तम साधनों की खोज करने के सिलसिले में ध्यान देने योग्य चार अधिकारों का उल्लेख किया था। वे चार वर्ग थे—

(१) शरीर को संकटों से बचाने और सुरक्षित रखने का अधिकार;

(२) नागरिकता के साधारण और विशेष अधिकार;

(३) विचार-स्वतन्त्रता और प्रकाशन का अधिकार;

(४) अवसर की समानता का अधिकार।

अधिकारों का विभाजन इस आधार पर भी किया जा सकता है कि वे नागरिक की रक्षा किससे करते हैं—शासन से, या अन्य नागरिकों से, या बेरोजगारी से लेकर चेचक की बीमारी तक की सामान्य आपत्तियों से ? यह वर्गीकरण राजनीति और शासन पर विचार की दृष्टि से बहुत उपयोगी है, क्योंकि मनुष्य के जीवन, स्वातन्त्र्य और सुख प्राप्ति के प्रयत्नों पर आक्रमण करने वाले तीन प्रकार

के शत्रुओं का सामना शासन विभिन्न प्रकारों से करता है; और राजनीतिक दृष्टि से उनके रूप भी विभिन्न हैं।

संविधान द्वारा संरक्षित अधिकारों का संघीय, राज्यीय और स्थानीय शासनों द्वारा उल्लंघन होने पर उसका प्रतिकार न्यायालयों की सहायता से किया जाता है। न्यायालय कानून के विरुद्ध बन्द किये गये बन्दी को रिहा करने की आज्ञा दे सकते हैं; और व्यवहार में शासन न्यायालय के विरुद्ध आचरण कभी नहीं करते।

कोई नागरिक किसी दूसरे नागरिक की हानि करके अधिकारों का जो उल्लंघन करता है वह परम्परागत कानून के विरुद्ध भी हो सकता है, अथवा विधिनिर्मात्री संस्था के कानून-द्वारा भी गैरकानूनी ठहराया जा सकता है। कई प्रकार के अशोभन व्यवहारों की धर्माचार्य, और अन्य नैतिक नेता तो निन्दा करते हैं, परन्तु उन्हें कानून विरुद्ध कभी नहीं माना गया। जाति या धर्म के आधार पर भेद-भाव करना इसी प्रकार का व्यवहार है। इस प्रश्न पर अब तक राजनीतिक विवाद ही चल रहा है कि क्या कुछ प्रकार के भेद-भाव को कानूनन दण्डनीय ठहराना चाहिए?

समाज और राष्ट्र का सदस्य होने के नाते नागरिक को सामान्य शत्रुओं से कई प्रकार की रक्षा पाने का अधिकार है। विदेशी आक्रान्ता बम वर्षकों से तो रक्षा पाने का अधिकार उसे है ही, महामारी, अग्नि और बाढ़ से भी रक्षा पाने का वह अधिकारी है। इंगलैण्ड के पुराने परम्परागत कानून के अनुसार, यदि वह भूखा मर रहा हो तो उसे सार्वजनिक दातव्य-संस्था से सहायता पाने का अधिकार भी है। रक्षा पाने के अधिकार की ठीक-ठीक सीमा का निश्चय अब तक 'कन्जर्वेटिवों' और 'लिबरलों' अर्थात् अनुदार और उदार पार्टियों में विवाद का एक बड़ा विषय बना हुआ है। 'रिपब्लिकन' और 'डिमोक्रेटिक' दलों में, और उनके भीतरी उप-दलों में भी, इस प्रश्न पर मतभेद है।

क्रान्ति के पश्चात् जब अमेरिकी लोग अपने नये स्वतन्त्र देश का प्रबन्ध करने लगे तब उन्हें मुख्य चिन्ता अपने नये शासनों के अन्यायों और अत्याचारों से अपने अधिकारों की रक्षा करने की हुई। कई प्रकार के अधिकार प्रथा और परम्परागत

कानून द्वारा पर्याप्त-रूपेण रक्षित प्रतीत होते थे; और उस समय उसकी तत्काल रक्षा करना इतना आवश्यक नहीं जान पड़ता था जितना आगे चल कर जान पड़ने लगा।

अव तो अमेरिकी नागरिकों और शासन-अधिकारियों के वीच के प्राय: दैनिक व्यवहारों में से वैधानिक अधिकारों को स्वयं प्राप्त मान कर चला जाता है। परन्तु अब भी वहुत से मामले कानून की सीमा-रेखा पर पहुंचकर विवादास्पद वन जाते हैं और उनका निर्णय न्यायालयों को करना पड़ता है कि उनमें नागरिक का कोई अधिकार है या नहीं और है तो कितना।

उदाहरणार्थ, सन् १९५१ में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय किया था कि "थर्ड डिग्री" अर्थात् अपराधों की जांच करते हुए वल का प्रयोग करने की, प्रथा संविधान के पांचवें और चौदहवें संशोधनों का उल्लंघन है। इन दोनों संशोधनों में कहा गया है कि शासन किसी भी व्यक्ति के जीवन, स्वातन्त्र्य या सम्पत्ति का अपहरण, कानून की उचित कारंवाई के विना, नहीं कर सकता। एक व्यक्ति पर अपराधी होने का सन्देह था। एक पुलीस अफसर ने उससे अपराध कवूलवाने के लिए उस पर वल का प्रयोग किया था। उस पुलीस अफसर को संघीय अपराध करने का दोषी माना गया। इस प्रकार एक पुराने अधिकार में उसकी एक नयी परिभाषा जुड़ गयी।

चौदहवें संशोधन में कहा गया है कि कोई राज्य किसी भी व्यक्ति को अन्य सव के समान कानूनों का संरक्षण देने से इनकार नहीं करेगा। एक आदमी को कत्ल करने के अपराध में दण्डित होने पर जेल में वन्द कर दिया गया, और जेलर ने जेल के नियमानुसार उसकी अपील के कागजों को राज्य के सर्वोच्च न्यायालय तक पहुंचने के लिए वाहर नहीं जाने दिया। संघीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि राज्य ने इस आदमी को कानूनों का समान संरक्षण देने से इनकार किया, इसलिए वह या तो इसकी अपील की ठीक प्रकार सुनवाई करवावे और या इसे छोड़ दे।

चौथा संशोधन लोगों को अनुचित तलाशी और कब्जे के विरुद्ध गारंटी देता है। इसलिए न्यायालयों को बहुधा यह निर्णय करना पड़ता है कि क्या 'अनुचित' है और क्या नहीं। एक मामले में पुलीस को सकारण सन्देह था कि एक मादक वस्तुओं की फेरी करने वाले ने कुछ नशीली चीजें अपने एक मित्र के घर में छिपा दी है। वह तलाशी का वारण्ट लिये विना उसके घर में घुस गयी और चीजें वरामद कर लीं। सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह कार्रवाई संविधान का उल्लंघन है। सन्दिग्ध व्यक्ति कितना ही अपराधी क्यों न हो, कानून उसे पकड़ने के लिए पुलीस को कानून-विरोधी साधन काम में लाने की अनुमति नहीं देता। ऐसा करने से निरपराधों के अधिकार भी संकटापन्न हो जायंगे।

न्यायालय द्वारा उचित सुनवाई के अधिकार की व्याख्या न्यायालयों को वार-वार करनी पड़ती है, जिससे नये-नये प्रकार के उल्लंघनों से बचा जा सके अथवा जो पुराने और अभ्यस्त उल्लंघन जनता के विवेक को अप्रिय लगने लगे हैं, उनको रोका जा सके।

फ्लोरिडा राज्य में दो नीग्रो आदमियों पर वलात्कार का अभियोग लगाया गया और उन्हें सजा हो गयी। उनके मुकदमे में 'ग्रैण्ड जूरी' (अभियोग की जांच करने वाले जूरी) और 'ट्रायल जूरी' (मुकदमा सुनकर निर्णय देने वाले जूरी) दोनों के सब सदस्य केवल गोरे व्यक्ति थे। राज्य के न्यायालय ने तो उनकी सजा को वहाल रक्खा, परन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने उसे उलट दिया, और कारण जूरी में केवल गोरे लोगों का होना वतलाया। इस मुकदमे की एक और विशेषता यह थी कि यद्यपि इस्तगासे ने न्यायालय में दोनों अभियुक्तों का कोई इकवाली वयान पेश नहीं किया था परन्तु समाचारपत्रों में यह छप गया था कि उन्होंने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है। सर्वोच्च न्यायालय के दो जजों ने अपने निर्णय में लिखा कि समाचारपत्रों का यह हस्तक्षेप ही मुकदमे की सुनवाई को न्याय से असंगत वनाने के लिए पर्याप्त है।

जूरी के निर्णय से पूर्व, अपने अभियोग के विषय में समाचारपत्रों को कुछ भी मत प्रकट न करने देने का अभियुक्त का यह अधिकार संयुक्त राज्य अमेरिका में

अभी तक उतनी स्पष्टता से नहीं माना गया है जितनी स्पष्टता से यह ब्रिटेन में माना जा चुका है। फ्लोरिडा के इस मुकदमे में इस अधिकार का अंकुर जम जाने के लक्षण दिखलाई पड़ते हैं।

पांचवे संशोधन के अनुसार कोई गवाह किसी ऐसे प्रश्न का उत्तर देने से इनकार कर सकता है जिससे स्वयं उसके किसी फौजदारी मुकदमे में फंस जाने का भय हो। परन्तु कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रधान नेताओं को बल और शक्ति से शासन को उलट देने का षड्यन्त्र करने के अपराध में दण्डित किया जा चुका है, और १६४० के जिस स्मिथ ऐक्ट के अनुसार उन्हें दण्ड दिया गया था उसे असंवैधानिक ठहराने से सर्वोच्च न्यायालय भी इनकार कर चुका है। इसलिए अब यदि कांग्रेस की जांच-समिति किसी व्यक्ति को बुलाकर उससे उसके कम्यूनिस्ट सम्बन्धों के विषय में प्रश्न करे तो वह इस आधार पर उतर देने से इनकार कर सकता है कि कम्यूनिस्ट कारखाइयां अपराध ठहरायी जा चुकी हैं और यदि मैंने उनके साथ अपना सम्बन्ध स्वीकार कर लिया तो मुझ पर भी अभियोग चलाया जा सकेगा। सर्वोच्च न्यायालय यह निर्णय भी दे चुका है कि कोई गवाह कोई ऐसी निर्दोप बात बतलाने से भी इनकार कर सकता है जो किन्हीं साक्षियों की शृंखला की कड़ी बनकर गवाह पर मुकदमा चलाने का कारण हो सकती हो।

पांचवे संशोधन का लाभ उठाकर कोई गवाह कम्यूनिस्ट षड्यन्त्र के अभियोग में फंसने से भले ही बच जाय, परन्तु वह उसका सहारा लेकर अपनी नोकरी जाने के खतरे से अपनी रक्षा नहीं कर सकता, क्योंकि उसका मालिक उसकी इस कारखाई का अर्थ यही लगायेगा कि इसने अपने को हानि पहुंच जाने के भय से सत्य को प्रकट नहीं किया।

प्रथम संशोधन ने धर्माचरण की स्वतन्त्रता की गारण्टी दी है। परन्तु उस की समय-समय पर पुनः व्याख्या किये जाने की आवश्यकता अभी तक बनी हुई है। बहुत से धर्म-प्रचारकों के मामले कानून की दृष्टि मे संदिग्ध होते हैं। वे गलियों के चौराहों पर या सार्वजनिक पार्कों में भाषण करना चाहते हैं। परन्तु

सम्भव है कि वे ऐसे अजनबी लोग हों कि उनके भाषणों के कारण दंगा हो जाय। यह निर्णय नगर की पुलिस को करना पड़ता है कि किसी भाषण में कहाँ धार्मिक स्वतन्त्रता की समाप्ति होकर दंगों के लिए उकसाहट की शुरुआत हो गयी। धार्मिक स्वतन्त्रता को सीमा-रेखा के संदिग्ध मामलों की एक अन्य कठिनाई यह है कि ठगों और धूर्तों को भी किसी धर्म का नाम लेकर इस संशोधन की आड़ में छिप जाने का अवसर मिल सकता है।

समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता संयुक्त राज्य अमेरिका में बहुत आगे बढ़ी हुई है; विशेषतः सार्वजनिक कर्मचारियों की उचित या अनुचित आलोचना करने में इस स्वतन्त्रता को लोकतन्त्र की मूल रक्षिका माना जाता है। परन्तु समाचार पत्रों को कानूनी स्वतन्त्रता के साथ ही इतनी आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती कि बहुत से लोग जैसा पत्र पढ़ना चाहते हैं वैसा ही वे छाप सकें। छपाई की कला का विकास कुछ इस प्रकार हुआ है कि बड़े पत्र विज्ञापन अपने छोटे प्रतिस्पर्धियों की अपेक्षा कम दरों पर ले सकते हैं। इसका फल यह होता है कि बहुत से स्थानों पर केवल एक पत्र जीवित रह सकता है और पाठकों को अपने स्थानीय पत्रों में उसके विरोधी विचार पढ़ने की स्वतन्त्रता नहीं रहती।

समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता की इस व्यावहारिक समस्या को हल करने में राजनीतिक व्यवस्था अपने आपको प्रायः असमर्थ पाती है। हो सकता है कि कभी किसी पत्र को अपने प्रतिस्पर्धी पत्र से विज्ञापन छीन लेने के अपराध में ट्रस्ट-विरोधी कानूनों के अनुसार दण्डित करा दिया जाय; परन्तु अधिकतर एकाधिकार कानून-विरोधी काररवाईयों का परिणाम नहीं है। वे स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा का चरम फल हैं और छोटे पत्रों को सरकारी सहायता देने से बढ़ कर अनुचित और कुछ हो नहीं सकता। इस समस्या का हल यही दीखता है कि छपाई कि कला में कुछ ऐसा नया विकास हो जाय जो छोटे पत्रों के लिए लाभदायक हो।

समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता की यह आंशिक हानि इस बात का उदाहरण है कि किस प्रकार कोई संवैधानिक अधिकार किसी ऐसे आर्थिक या सामाजिक

अधिकार की सीमा में प्रविष्ट हो सकता है जिसकी रक्षा करने में शासन भी पूर्णतया समर्थ न हो। इस प्रकार के अन्य उदाहरण जाति या धर्म के आधार पर किये जाने वाले भेद-भाव से सम्बद्ध समस्याओं में मिल सकते हैं।

अमेरिका के लोग अनेक राष्ट्रों से आये हुए हैं। उत्तर-पश्चिमी युरोप से आये हुये लोग परस्पर घुल मिलकर अमेरिकी आवादी का एक प्रभावशाली भाग वन गये हैं। देश की अधिकतर सम्पत्ति के स्वामी वही हैं; और अधिकतर राजनीतिक शक्ति भी उन्हीं के हाथ में है। अन्य लोग जब अपने धर्म या रीति रिवाजों, या सबसे बढ़कर अपने रंग के कारण पहचान लिये जाते हैं कि वे औरों से भिन्न हैं तव उसके साथ भेद-भाव का व्यवहार होने की बहुत सम्भावना रहती है। नीग्रो, चीनियों, जापानियों, मेक्सिकनों, अमेरिकी इण्डियनों, और रायोग्रैण्डी की घाटी के प्रथम निवासी स्पैनिशों की सन्तान हिस्पानों-अमेरिकनों आदि सबके साथ अनेक प्रकार के भेद-भाव का व्यवहार होने की सम्भावना रहती है। यही वात यहूदियों, कैथोलिकों, और 'जिहोवा के विटनेस' आदि छोटे-छोटे प्रोटस्टेण्ट सम्प्रदायों के विषय में है। पूर्वी और दक्षिणी यूरोप के लोग जवतक बड़ी संख्या में इकट्ठे रहते और अपनी भाषाएं बोलते रहते हैं, तवतक प्रायः उन सबके साथ विदेशियों का सा वरताव होने की सम्भावना वनी रहती ही है।

अल्पसंख्यकों के साथ भेद का वरताव होने का एक बड़ा कारण वेरोजगारी का डर है। श्रमिक लोग जाति, धर्म या मूल राष्ट्रीयता आदि ऐसी किसी भी प्रत्यक्ष भिन्नता का वार-वार चर्चा करते रहते हैं जिसे काम पर उनका एकाधिकार हो जाने के वहाने के रूप में पेश किया जा सके। सन् १९४० से आगे बहुत समय तक अधिक रोजगार मिलने की जो परिस्थितियां वनी रहीं उन्होंने इस पृथकता की भावना को मिटाने में बड़ी सहायता की थी। तव नीग्रो लोगों तक के विरुद्ध भावना कुछ मन्द पड़ गयी थी।

राष्ट्रपति ट्रूमन द्वारा नियुक्त नागरिक अधिकार समिति ने ऐसे अनेक प्रकार के अन्यायों की एक लम्बी सूची तैयार की थी, जिनका अल्पसंख्यक नागरिकों को शिकार होना पड़ता था। इन अन्यायों का पता लगाने और उन्हें दूर करने के

उपाय सुझाने के लिए ही यह समिति नियुक्त की गयी थी। परन्तु इसने इन बड़े-बड़े अन्यायों की पृष्ठ भूमि का चित्रण करते हुए बतलाया था कि अमेरिकी जीवन में अल्पसंख्यकों तक के लिए स्वतन्त्रता की ओर अवसरों की प्रचुरता है, और हर दस-दस बरस पर नागरिक अधिकार अधिकाधिक सुरक्षित होते जा रहे हैं।

शरीर को संकटों से बचाने और सुरक्षित रखने के अधिकार की चर्चा करते हुए इस समिति ने बतलाया था कि इस शताब्दी के प्रथम दस वर्षों में जहां प्रति वर्ष प्राय: डेढ़ सौ व्यक्ति उत्तेजित भीड़ की ज्यादतियों के कारण अपने प्राणों से हाथ धो बैठते थे, वहां सन् १९४० के पश्चात् यह संख्या प्रति वर्ष छः से भी कम रह गयी है। परन्तु हाल के वर्षो में जो थोड़े से आदमी इस प्रकार मारे गये उनसे कई गुणा अधिक की स्थानीय अधिकारियों ने भीड़ की ज्यादतियों से रक्षा की। नीग्रो लोगों का टस्केजी इन्स्टिट्यूट 'लिन्चिंग' का अर्थात् व्यक्तियों के भीड़ द्वारा मारे जाने का पूरा-पूरा लेखा रखता है। उसने बतलाया था कि सन् १९४६ से पहले के सात वर्षों में २२६ व्यक्तियों की 'लिन्चिंग' से रक्षा की गयी। इनमें २०० से ऊपर नीग्रो थे।

भीड़ की उग्रता में कमी का कारण यह है कि लोग शिक्षित और समृद्ध हुए हैं और साथ ही साथ शेरिफों (कानून का पालन कराने वाले अधिकारियों) तथा पुलिस के चरित्र में सुधार हुआ है। हाल के वर्षों में जिन 'शेरिफों' ने भीड़ का सामना किया उन्होंने देखा कि भीड़ उन्हें मारने को नहीं दौड़ पड़ती।

राष्ट्रपति ट्रुमन ने सिफारिश की थी कि कांग्रेस 'लिन्चिंग' को संघीय अपराध ठहरा दे, परन्तु सेनेट ने इस बिल का 'फिलिबस्टर' (निःसीम विवाद) द्वारा अन्त कर दिया।

शरीर के बचाव और सुरक्षा के अधिकार का उल्लंघन पुलिस के पाशविक और अदालतों के पक्षपातपूर्ण व्यवहार से भी होता है। ये अपराध बहुधा संघीय संविधान का उल्लंघन करके किये जाते हैं और सर्वोच्च न्यायालय इनके विरुद्ध कारवाई कर सकता है। उसके ध्यान में 'पिओनेज' अर्थात् शर्तबन्द गुलामी के जो

मामले आवें उनमें भी वह कारखाई कर सकता है। 'पिओनेज' के अपराध का होना वहीं सम्भव है जहां लोग गरीव, दव्बू और अपने अधिकारों से विलकुल अनजान हों। कोई वेअसूला आदमी किसी शिकार को पकड़कर उसे ऋण में फंसा देता है ओर उसे किसी प्रकार यह विश्वास करवा देता है कि जवतक ऋण नहीं अदा कर दिया जायगा तव तक उसे वेगार करनी पड़ेगी।

किसी के पूर्वज कोई भी क्यों न हों, जिस किसी का जन्म संयुक्त राज्य अमेरिका में हो उसे कानूनन नागरिकता का अधिकार प्राप्त हो जाता है। परन्तु एशिया के वहुत से निवासियों को, उनका जन्म इस देश में होने पर भी, अमेरिकी नागरिकता के अधिकार नहीं दिये गये थे। कैलिफोर्निया में और अन्य कई पश्चिमी राज्यों में, जो विदेशी लोग नागरिक नहीं वन सकते थे, उन्हें खेतों का स्वामी नहीं वनने दिया गया; और कई मामले तो ऐसे भी हुए जिनमें नागरिक वनायी गयी उनकी सन्तान के खेतों से उन्हें निर्वाह तक नहीं लेने दिया गया। कानूनन संघीय सरकार को अधिकार है कि वह इस प्रकार के भेदपूर्ण व्यवहार को सन्धि करके या आगमन के नियमों में परिवर्तन करके ठीक कर दे, परन्तु राजनीति में ऐसी कारखाइयां करना शायद तव तक सम्भव नहीं होगा जव तक कि लोकमत अधिक सहिष्णु न हो जाय।

अव तक मताधिकार को नाना प्रकार की कानूनी चतुराइयों से सीमित किया जाता रहा है। परन्तु उनको एक-एक करके असंवैधानिक घोषित कर दिया गया है। दक्षिण के कई भागों में नीग्रो लोगों को भीड़ की ज्यादतियों के डर से मत नहीं देने दिया जाता, परन्तु सन् १९५२ के आंकड़ों से ज्ञात होता है कि अधिकतर दक्षिणी वस्तियों में नीग्रो मतों की संख्या पहले से वढ़ गयी है।

सन् १९२१ में ग्यारह दक्षिणी राज्य ऐसे थे जिनमें मत देने के लिए एक "पोल-टैक्स" अर्थात् मतदान-कर लिया जाता था। परन्तु दोनों जातियों के गरीव लोग इस कर से मुक्त थे। सन् १९४४ में पता लगा कि जिन राज्यों में 'पोल टैक्स' लगा हुआ था उनमें मत देने में समर्थ लोगों में से लगभग दस प्रतिशत ने ही मत दिया था। डेढ़ सौ वर्ष पूर्व तो मताधिकारी वनने के लिए साम्पत्तिक योग्यता की शर्त सर्वत्र ही लागू थी। संघीय कानून वनाकर 'पोल टैक्स' समाप्त करने के

प्रयत्नों का सेनेट में 'फिलिबस्टर' द्वारा अर्थात् विवाद को अनन्त लम्बा खींचकर विरोध किया गया। परन्तु अब कई राज्यों ने यह टैक्स स्वयं ही हटा दिया है।

नागरिकता का एक और विशेषाधिकार शस्त्र धारण कर सकने का है। यह अधिकार भयंकर होते हुए भी अल्पसंख्यकों की नागरिक समानता के लोकतन्त्रीय लक्ष्य का सूचक है। पहले सेना में नीग्रो और अन्य अल्पसंख्यक लोगों को साधारणतया ऐसे काम दिये जाते थे जिनमें लड़ना नहीं पड़ता था, या उनकी टुकड़ियां अलग बना दी जाती थीं। अफसरों के स्कूलों में तो नीग्रो लोगों को यदा-कदा ही भरती किया जाता था। हाल के वर्षों में सभी सेनाओं को आज्ञा दी गई है कि वे जातीय भेद-भाव का यथासम्भव शीघ्र अन्त कर दें।

सन् १९४५ में फ्रान्स के युद्ध में जब गोरे सैनिकों को अपनी टुकड़ियों में नीग्रो लोगों को भी सम्मिलित करने की आज्ञा दी गयी तब उनमें से बहुतों को अच्छा नहीं लगा। परन्तु उनको लड़ता देखकर प्रायः सभी गोरे सैनिक, दक्षिणी तक भी, उन्हें चाहने और उनका सम्मान करने लगे। सन् १९५३ में रंग के भेद-भाव के बिना नीग्रो लोगों को सैनिक टुकड़ियों में शामिल कर लेने का परिणाम इतना सन्तोषजनक निकला कि यह अब अपने ही वेग से आगे बढ़ रहा है। अब सेनाओं में रंग के भेद की सर्वथा समाप्ति सम्भव हो गयी है।

कई परिस्थितियां ऐसी होती हैं जिनमें एक बार पृथकता का अन्त कर देने से रंग पक्षपात स्वयमेव शिथिल हो जाता है—उदाहरणार्थ, गोरे लोगों के नाटक घरों और जलपान गृहों में नीग्रों लोगों का प्रवेश होने पर अब उनसे घृणा नहीं की जाती। अनुभव से यह भी देखा गया है कि कारखानों में नीग्रो मजदूरों को गोरे मजदूरों के साथ काम पर लगाया जा सकता है। अब इसके कारण उतना झगड़ा नहीं होता जितना पहले हो जाया करता था।

यह देखकर कि एक बार पृथक्ता की समाप्ति कर देने पर रंग-पक्षपात आप ही दूर होने लगता है और उसके कारण मार-पीट नहीं होती, उन लोगों का उत्साह बढ़ गया है जो पृथक्ता के विरुद्ध कानून बनवाना चाहते हैं। उनका तर्क यह है कि बहुत-सी परिस्थितियों में पृथक्ता की बाध्यतापूर्ण समाप्ति के सामने लोग सिर

झुका देंगे, परन्तु यदि हालात को योंही चलने दिया गया तो वर्तमान रिवाजों का न जाने कब तक अन्त न होगा ।

सन् १९४१ में राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने एक 'फेयर-एम्प्लायेमेण्ट-प्रेक्टिस-कमिटी" अर्थात नौकरी देने में पक्षपात न करने का रिवाज डालने वाली कमिटी नियुक्त की थी कि वह सरकारी नौकरियों और युद्ध का माल बनाने वाले कारखानों में समानता की प्रथा चालू करे । इस कमिटी ने देखा था कि उसके सामने जो मामले आते थे उनमें पांच में से चार का सम्बन्ध नीग्रो लोगों से होता था । उन्हें या तो नौकरी दी ही नहीं जाती थी और या गोरों की अपेक्षा कम वेतन लेने के लिए विवश किया जाता था । आठ प्रतिशत शिकायतों का सम्बन्ध धार्मिक पक्षपात से होता था । इनमें भी यहूदियों की शिकायतें सबसे अधिक होती थीं । सरकारी एजन्सियां, व्यापारिक संस्थाएं और मजदूर यूनियनें आदि सभी अल्पसंख्यकों के साथ असमान वर्ताव करने की अपराधी थीं । युद्ध-काल में जबतक राष्ट्रपति रूजवेल्ट की यह कमिटी काम करती रही तबतक नौकरियां देने में असमानता का वर्ताव खासा कम हो गया था । मजदूरों की कमी के कारण भी इसमें बहुतेरी कमी हो गयी थी ।

कई राज्यों में भी "नौकरी देने में पक्षपात न करने के कानून बनाये" गये हैं । जिन राज्यों में इस प्रकार के कानून बन सकते हैं उनका लोकमत भी समानता का पक्षपाती है, और वहां कानून मालिकों से अल्पसंख्यकों को काम दिलवाने में सफल हो जाता है । परन्तु सभी राज्यों में असमानता दूर करने के लिए संघीय कानून बनवाने के प्रयत्नों को सेनेट में सफल नहीं होने दिया गया ।

कई राज्यों में भी शिक्षण-संस्थाओं तथा सार्वजनिक नौकरियों में नीग्रो लोगों को गोरों से पृथक् ही रखने का नियम है । सन् १८९६ में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया था कि यदि राज्य नीग्रो लोगों के लिए "पृथक् परन्तु समान" सेवा का प्रबन्ध कर देते हैं तो उनके पृथक्ता-सम्बन्धी कानून का चौदहवें संशोधन से कोई विरोध नहीं है । जस्टिस हार्लेन ने उस समय भी अपना पृथक् निर्णय लिखकर इस निर्णय का विरोध किया था ।

परन्तु सत्य यह है कि नीग्रो लोगों के लिए जिन सरकारी स्कूलों और अन्य सेवाओं का पृथक् प्रबन्ध किया जाता है, वे सामान और सेवा के अच्छेपन आदि की दृष्टि से गोरों के स्कूलों आदि के समान कभी नहीं होते। इसके अतिरिक्त, जैसा कि जस्टिस हार्लेन ने कहा था, बलात् पृथक्ता के कारण, "हमारे बहुत-से साथी नागरिकों पर, उनके कानून की दृष्टि से हमारे समान होते हुए भी, दासता और हीनता का कलंक लग जाता है। 'समान' व्यवस्था के झिल्लीदार परदे से कोई भी धोखे में नहीं आ सकता।"

सन् १८९६ का यह निर्णय कोई चालीस वर्ष तक कायम रहा। इसके बाद न्यायालय धीरे-धीरे इस सत्य की ओर संकेत करने लगा कि दोनों की सेवा में समानता नहीं है और जबतक पृथक्ता विद्यमान है तबतक अधिकतर सेवाओं में समानता लायी भी नहीं जा सकती। धीरे-धीरे कुछेक दक्षिणी कालिजों में नीग्रो विद्यार्थी लिये जाने लगे। इसके कारण अनेक थे। न्यायालय की दृढ़ता का बढ़ते जाना, केवल नीग्रो लोगों के लिए प्रथम श्रेणी की यूनिवर्सिटियां खोलने में व्यय का बहुत होना, और दक्षिण में, विशेषतः कालिजों के विद्यार्थियों में सहिष्णुता के भावों का विकसित होते जाना भी इन कारणों में सम्मिलित थे। इस परिवर्तन के पश्चात् दंगे, झगड़े और अन्य अप्रिय प्रतिक्रियाएं न होने से आशा होती है कि यह धीरे-धीरे फैलता जायगा।

सरकारी क्षेत्र से सर्वथा पृथक, कई बड़ी-बड़ी पेशा-वर-बेसबाल 'टीमों' की कार्रवाइयों से भी सारी जाति की अवस्था सुधारने में बड़ी सहायता मिली। है वे नीग्रो खिलाड़ियों को भी लेने लगी हैं। बेसबाल ऐसा खेल है कि करोड़ों अमेरिकी उसे राष्ट्रीय झण्डे या संविधान के समान पवित्र मानते हैं। उसका उनके दैनिक जीवन और रुचियों से बहुत घना सम्बन्ध है। किसी को दुनिया के खेलों की 'सीरीज' में खेलने देना उसे पूरा-पूरा अमेरिकी नागरिक मान लेने की निशानी है। "ब्रुकलिन डोजर्स" नामक प्रसिद्ध टीम का एक खिलाड़ी नीग्रो होने के कारण कई टीमों ने विद्रोह करने की धमकी दी थी। इन टीमों को 'बेसबाल लीग' के अध्यक्ष ने जिन शब्दों में उत्तर दिया उनसे प्रकट हो गया कि अब खिलाड़ियों में समानता का

सिद्धान्त स्वीकृत किया जा चुका है। लीग के अध्यक्ष ने कहा था—"यह संयुक्त राज्य अमेरिका है। यहां खेलने का जितना अधिकार तुमको है, उतना ही दूसरों को भी है।"

किसी भी नागरिक को अधिकार है कि वह अपने मानव या अमानव शत्रुओं से रक्षा पाने का शासन से दावा कर सकता है। परन्तु यह अधिकार और समान व्यवहार का अधिकार कई वार एक दूसरे से टकराने लगते हैं। विशेषतः जव जनता पर वेरोजगारी, अज्ञान, गरीवी, और रोग आक्रमण करते हैं, तव पदारूढ़ वहुमत की अपेक्षा अल्पमत की ही सदा अधिक हानि होती है। परन्तु रोग और मृत्यु से भय तो सभी लोगों को लगता है, और प्रवल वहुमत वालों को भी वेरोजगारी का या आमदनी के नुकसान का डर होता ही है। वहुत वड़ी संख्या में लोग केवल मजदूरी के लिए काम करते हैं; और यदि वे जीवन का एक उचित-मान सुरक्षित रखना चाहें तो उन्हें मजदूरी तय करने के अपने वल के संरक्षण के लिए कानूनी सहायता की आवश्यकता पड़ती है।

युरोप और अमेरिका में कई शताब्दियों से मजदूरों की अवस्था शासनों की चिन्ता का विषय रही है। मध्यकाल में प्रवृत्ति यह थी कि शासनों का झुकाव वहुधा विद्रोही और उपद्रवी मजदूरों के विरुद्ध उच्चवर्गों की ही रक्षा करने का रहता था। उन्नीसवीं शताब्दी में इस प्रकार के मालिक मजदूरों के झगड़ों में हस्तक्षेप का एक प्रचलित रूप यह था कि शासन मजदूर यूनियनों को दवा दिया करता था। तव वे परम्परागत कानून के अनुसार षड़यन्त्रकारियों का गिरोह समझी जाती थीं। आज कानून का भारी झुकाव मालिकों की मनमानी कार्रवाइयों और अनेक प्रकार की सामान्य आपत्तियों से मजदूरों की रक्षा करने का हो गया है।

सन् १९३३ के "नेशनल इण्डस्ट्रियल रिकवरी ऐक्ट" (राष्ट्र के उद्योगों को सम्भालने के कानून) ने मजदूरों को संगठित हो सकने के अधिकार की गारण्टी दी थी, और मालिकों को मजवूर किया था कि वे मजदूर-यूनियनों को, मजदूरों की शर्तें तय करने वाले एजण्ट के रूप में मान्यता प्रदान करें। वेगनर ऐक्ट और टैफ्ट-हार्टले ऐक्ट ने क्रमशः मजदूरों और मालिकों के साथ अधिकारों को और भी

निश्चित कर दिया है। इनमें से प्रथम ऐक्ट का झुकाव मजदूरों की ओर को और द्वितीय का मालिकों की ओर को है। इन सब कानूनों का सार्वजनिक प्रयोजन ऐसे नियम बना देना है कि उन्हें न्यायालयों द्वारा लागू करवाया जा सके और मालिकों और मजदूरों के सम्बन्ध उचित तथा न्यायपूर्ण रहें।

जब "उचित" और "न्याय-पूर्ण" शब्दों की परिभाषा की जाने लगती है, तब यहां भी राजनीति का दखल हो जाता है। पहले अत्याचार मजदूरों को सहना पड़ा करता था। उन्हें संगठित होने का अधिकार प्राप्त करने के लिये लड़ाइयां करनी पड़ती थीं—उनमें कभी-कभी खून तक बह जाता था। उनके नेता लड़ने वाले अधिक और समझौता करने वाले कम होते थे। धीरे-धीरे कानून उनके पक्ष में हो गया। जब यूनियनों ने दिखला दिया कि मजदूर दलित नहीं हैं, तब दलितों के प्रति जनता की जो सहज सहानुभूति थी वह धीरे-धीरे लुप्त हो गयी। सन् १९४७ में राजनीतिक ज्वार भाटा के कारण कांग्रेस पर रिपब्लिकन पार्टी का नियन्त्रण हो गया और उसने मालिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए टैफ्ट-हार्टले ऐक्ट पास कर दिया। इस समय मजदूर-यूनियनों के प्रतिनिधियों में भी, 'पूंजीपतियों' या रिपब्लिकन पार्टी के विरुद्ध जमकर संघर्ष करने के लिए पर्याप्त एकता नहीं है। सन् १९५२ के चुनाव में उन्होंने ही अपने मतों से रिपब्लिकन पार्टी को पदारूढ़ होने में सहायता की थी। इन सबका सारांश यह है कि इस समय मजदूरों के अधिकार इतने पर्याप्त रूप से सुरक्षित हैं कि वे अन्य अनेक प्रश्नों पर अपना मत स्वतन्त्रता पूर्वक दे रहे हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका बहुत समय तक राष्ट्रीय समाजिक-सुरक्षा की प्रणाली अपनाने में अधिकतर सभ्य संसार से पीछे था। बहुत से राज्यों में किसी न किसी प्रकार के समाजिक-सुरक्षा के कानून बहुत समय पहले बन चुके थे। सन् १९३५ में एतद्विषयक राष्ट्रीय कानून बन जाने के पश्चात् बुढ़ापे और परिवार में बचे हुए लोगों (सर्वाइवर्स) का बीमा कुछ बढ़ा दिया गया है और उसके लाभ मजदूरों के अधिक प्रकार के वर्गों के लिए प्राप्य कर दिये गये हैं। बेरोजगारी के बीमे और विकलांगों तथा अन्धों को और आश्रित बालकों को सहायता आदि अन्य लाभों का भी

धीरे-धीरे संघीय शासन और राज्यों द्वारा अधिकाधिक विस्तार किया जा रहा है। अब इस तथ्य को अधिकाधिक अनुभव किया जाने लगा है कि समाजिक-सुरक्षा के कारण बीमारी या बुढ़ापे में और भारी बेरोजगारी फैल जाने पर भी जनता की क्रय-शक्ति बनी रहने में सहायता मिलती है। व्यापारियों, व्यवसाइयों और श्रमिकों सबको ही इन आर्थिक लाभों का अनुभव हो जाने के कारण सामाजिक-सुरक्षा की योजनाओं का समर्थन दोनों राजनीतिक पार्टियां व्यापक रूप में करने लगी हैं।

अमेरिकी जनता अपने शासन से विविध स्तरों पर विविध प्रकार के जिन संरक्षणों की मांग करती है उनके कारण जो राजनीतिक विवाद छिड़ जाते हैं, वे भी एक अलग नमूना हैं। 'कन्जर्वेटिव' या अपरिवर्तनवादी लोग कहते हैं कि सेवा का प्रत्येक नया सुझाव समाजवादी है, उससे कर-दाता के धन का अपव्यय होगा और जनता जो कुछ चाहती है, उस सबकी पूर्ति निजी उद्योग से हो सकती है। इससे विपरीत, 'लिबरल' अर्थात् उदार विचारों के नवीन लोग कहते हैं कि जिस वस्तु की आवश्यकता है उसकी पूर्ति निजी उद्योगों से न तो हो रही है और न कई कारणों से हो सकेगी और जिस सेवा का सुझाव दिया गया है, उसके करने से कई प्रकार के अपव्यय का अन्त हो कर वस्तुतः कर-दाता के धन की बचत ही होगी।

निःसन्देह प्रत्येक सुझाव की यथार्थता भिन्न-भिन्न होती है और उसका निर्णय तत्काल तो राजनीतिक तर्कों से हो जाता है, परन्तु पीछे यदि नयी परिस्थितियों के कारण पहले निर्णय पर सन्देह हो जाय तो उस पर पुनर्विचार कर लिया जाता है। सब मिलाकर प्रवृत्ति की दिशा यह है कि जिन आपत्तियों से जनता की रक्षा, उसकी सम्मति में, शासन की शक्ति से की जा सके, उन में शासन की सेवाओं का अधिकाधिक उपयोग किया जाय।

संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बनते समय अमेरिकी जनता ने उसके सदस्यों का एक कर्तव्य यह भी समझा था कि मनुष्य-मात्र के अधिकारों और स्वतन्त्रताओं की रक्षा करने में संयुक्त राष्ट्रों की सहायता की जाय। संघ के एक विशेष कमीशन ने "मानव अधिकारों का एक घोषणा पत्र" तैयार किया था और संयुक्त राष्ट्रों की असेम्बली (महासभा) ने सोवियट यूनियन तथा उसके पिछलग्गुओं के विरोध के

बावजूद, उसे स्वीकार कर लिया था। उक्त कमीशन की अध्यक्षा तथा उसमें अमेरिका की प्रतिनिधि श्रीमती फ्रैंकलिन डी० रूजवेल्ट थीं।

"मानव अधिकारों का घोषणापत्र" अमेरिकी संविधान के 'बिल-ऑव राइट्स' (अधिकार-सूची) से कहीं आगे है। इसका प्रधान कारण यह है कि हिटलर और सोवियट यूनियन ने कई प्रकार के नये अन्यायों को जन्म दे दिया है। उदाहरणार्थ, 'जेनोसाइड' या जाति-नाश अर्थात् किसी जाति, कबीले या धार्मिक मत को सर्वथा नष्ट कर देने के लिए सरकार की ओर से कार्रवाई का किया जाना एक पुराना अपराध था उसे एकवर्गाधिकारवादियों ने बीसवीं शताब्दी में पुनरुज्जीवित कर दिया। इसलिए उस पर संयुक्त राष्ट्र संघ में विशेष ध्यान दिया गया।

"मानव अधिकारों का घोषणापत्र" तैयार करने के अतिरिक्त, उक्त कमीशन से एक सन्धि के रूप में एक प्रतिज्ञापत्र की रचना करने के लिए भी कहा गया था, जो प्रत्येक सदस्य-राष्ट्र की स्वीकृति के लिए दिया जाने वाला था। मूल प्रस्ताव में सभी प्रकार के अधिकार सम्मिलित किये जाने वाले थे, केवल अन्याय और अत्याचार से रक्षा पाने के नहीं, अपितु बेरोजगारी जैसे दुर्भाग्यों से रक्षा पाने के भी। अमेरिका चाहता था कि प्रतिज्ञापत्र दो लिखे जायं। प्रथम प्रतिज्ञापत्र में तो हमारे 'बिल-ऑव-राइट्स' सरीखी ऐसी जिम्मेवारियां रक्खी जायं, जिनका पालन किसी न्यायालय द्वारा करवाया जा सके। द्वितीय में ऐसी जिम्मेवारियां हों, जिन्हें पूरा करने के लिए शासन, गरीबी और बीमारी जैसी बुराइयों से संघर्ष करने की प्रतिज्ञा करें; परन्तु जिनका निश्चित कोई एक प्रतिकार नहीं हो सकता। इस दूसरे प्रकार के "अधिकार" की रक्षा न्यायालय की शरण लेकर नहीं, प्रत्युत राजनीतिक कार्रवाई द्वारा ही की जा सकती है; अर्थात् यह देखकर कि पदारूढ़ पार्टी ने निजी और सार्वजनिक जिम्मेवारियों में उचित सन्तुलन को स्थिर रखते हुए आपत्तियों से जनता के निर्णयानुसार उसे दण्ड या बढ़ावा देकर जनता की रक्षा करने में सफलता प्राप्त की या नहीं।

इनमें से कोई भी प्रतिज्ञापत्र स्वीकृति के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका की सेनेट के सामने आने की सम्भावना नहीं है। इसका प्रधान कारण यह है कि अमेरिकी

कानून में सम्मिलित सब अधिकारों को संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्य सदस्य-राष्ट्र प्रतिज्ञापत्रों में सम्मिलित करने के लिए सहमत नहीं हुए हैं। यद्यपि कानून के जानकारों का प्रबल मत यह है कि अमेरिकी संविधान ने अमेरिकी नागरिकों को जिन अधिकारों की गारण्टी दे दी है उन्हे किसी भी सन्धि द्वारा कम नहीं किया जा सकता, परन्तु इस मत को सब लोग नहीं मानते। सेनेट अपने ऊपर यह जोखिम लेने के लिए तैयार नहीं जान पड़ती।

अब संयुक्त राष्ट्र संघ में संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थिति यह है कि हम तो सब राष्ट्रों में व्यक्तियों के अधिकारों की कानूनी रक्षा का विकास और विस्तार करने के पक्ष में हैं, परन्तु हमें कहीं भी पूर्णता तक पहुंचने की आशा नहीं है। हमारे अपने देश में, अपने कानूनों और रीति-रिवाजों में, हमें अनेक त्रुटियां दिखाई देती हैं, और उन्हें हम स्वीकार भी करते हैं, परन्तु साथ ही हम अधिक न्याय और समानता की दिशा में प्रगति भी कर रहे हैं। हम वैयक्तिक अधिकारों को जितना-जितना समझते जाते हैं उतना-उतना हमारी राजनीतिक प्रणालियां उनके सिद्धान्त निश्चित करती जाती हैं। इससे अधिक अच्छे मार्ग का ज्ञान हमें नहीं है।

अध्याय १२

शासन का अमेरिकी दर्शन

संविधान के अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका प्रत्येक राज्य को "शासन के गणतन्त्री रूप" की गारण्टी देता है। परन्तु संविधान के इस अनुच्छेद का हवाला देने की आवश्यकता कभी नहीं पड़ी, क्योंकि इस देश में राजनीतिक विवादों का विषय प्रायः शासन का रूप नहीं, अपितु यह रहा है कि शासन किस प्रकार का काम अधिक भलीभांति कर सकता है। चरम-पन्थी लोग शायद आशा तो यह करते थे कि वे इस देश में भी तानाशाही कायम कर सकेंगे, परन्तु स्थानीय संस्थाओं में भी शायद ही कभी वे सत्ता प्राप्त कर सके हों। सन् १८७४ में रोड् आइलैण्ड में विद्रोह हो गया था, और राष्ट्रपति ने उस पक्ष की सहायता की थी जिसे वह न्यायपूर्ण समझता था। सन् १८७४ में स्त्रियों को मताधिकार देने के पक्षपातियों ने यह सिद्ध करने का असफल प्रयत्न किया था कि संविधान के अनुसार जिस राज्य का शासन स्त्रियों को मताधिकार देने से इनकार करे वह "गणतन्त्रीय नहीं है"। साधारणतया न्यायालय इस प्रश्न का निर्णय करने से इनकार करते रहे हैं कि शासन का कौन-सा रूप गणतन्त्रीय है; वे इस प्रश्न को "राजनीतिक" बतलाते रहे हैं।

इसका परिणाम यह हुआ है कि इस प्रकार के प्रश्नों का निर्णय कि सन् १९३० में आरम्भ ल्युइजियाना में ह्यू लांग ने अपने नियन्त्रण में जैसा शासन स्थापित कर लिया था वह तानाशाही था या नहीं और यह कि शेष संयुक्त राज्य अमेरिका को इसमें हस्तक्षेप करना चाहिये या नहीं; राजनीतिक विवाद के द्वारा अमेरिकी जनता

ही करती है, न्यायालय नहीं । यदि शेष संयुक्त राज्य अमेरिका कभी यह निर्णय कर दे कि अमुक राज्य को अपने हाथ में ले लेना चाहिए, तो उस स्थिति को शासन के गणतन्त्रीय रूप का भंग हो जाना कहा जा सकेगा, परन्तु सर्वोच्च न्यायालय कुछ आपत्ति नहीं करेगा ।

परन्तु साधारणतया शासन के जिन रूपों को अमेरिकी जनता "गणतन्त्रीय" मानती है उनकी सदा रक्षा की जाती है, उनकी भावना का भ्रष्टाचारी राजनीतिज्ञों ने भले ही उल्लंघन क्यों न कर दिया हो । प्रत्येक राज्य किसी ऐसे संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार के बल पर कार्य करता है जिसमें संशोधन जनता हिंसामय क्रान्ति के बिना ही कर सकती है । इस शासन में कानूनों की रचना जनता के प्रति उत्तरदायी प्रतिनिधि ही करते हैं । व्यक्तियों के जिन अधिकारों को जनता कानून के द्वारा रक्षणीय मानती है उन सब के रूप की रक्षा की जाती है, व्यवहार में कानून का पालन भले ही भ्रष्टाचारपूर्ण क्यों न हो गया हो । शासन के अत्याचारों से बचने के लिए नागरिक न्यायालयों में अपील कर सकते हैं । अमेरिकी जनता जिसे गणतन्त्रीय शासन का रूप कहती है, उसकी यह सब विशेषताएं हैं । सम्भव है कि उनका पालन सदा लिखित शब्द के अनुसार न किया जाता हो, परन्तु सत्ता तो मानी ही जाती है ।

बीसवीं शताब्दी में हिटलर और सोवियट यूनियन को देख लेने के पश्चात्, लोग शासन के उन रूपों तक को अत्यन्त मूल्यवान मानने लगे हैं जिनका स्वतन्त्र लोग आदर करते हैं । सम्भव है कि सोवियट यूनियन सरीखे राष्ट्र में भी संविधान उन सब अधिकारों की गारण्टी करता हो जिन्हें अमेरिकी अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए आवश्यक मानते हैं, परन्तु यदि व्यवहार में शासन सूत्रों का संचालन करने वालों को चुनौती देने के लिए जनता के पास राजनीतिक विरोध संगठित करने के कोई भी साधन न हों तो वह गारण्टी व्यर्थ है । कानून के जिन सब रूपों से मिलकर "शासन के गणतन्त्रीय रूप" का निर्माण होता है उनका भ्रष्टाचारी होना भी सम्भव है, परन्तु यदि जनता को राजनीतिक संगठन करने का अधिकार हो तो वह इच्छा होने पर भ्रष्टाचार का अन्त कर सकती है और अपनी

परम्परागत स्वतन्त्रता को पुनः प्राप्त कर सकती है। यदि किसी स्वतन्त्र देश में कानून कहता हो कि जब मतदाता मत दे रहा हो तब उसे न तो कोई देख सकता है और न डरा-धमका सकता है, और उस कानून के रूप का सब लोग आदर करते हैं, तो जनता अपने विधान मण्डल और राष्ट्रपति का निर्वाचन करके उनके द्वारा उन अधिकारों की रक्षा करवा सकती है जिन्हें कि वह आवश्यक समझती है।

जब जनता को शासन का ऐसा रूप प्राप्त हो जाता है जिसमें वह सर्व-प्रभुत्व-सम्पन्नता से आचरण कर सके तब मार्ग का निश्चय उनके परस्पर विरोधी स्वार्थों और उसके दर्शन अर्थात् निर्णय करने के सिद्धान्तों के अनुसार होता रहता है। अमेरिकी जनता का राजनीतिक दर्शन दुर्बोध तो है ही, कई दृष्टियों से परस्पर-विरोधी भी है।

शासन के अमेरिकी सिद्धान्त ब्रिटिश और अमेरिकी जनता के उन संघर्षों के लम्बे इतिहास से प्रभावित हैं जो उन्होंने शासन के अत्याचारों के विरुद्ध किये थे। इनमें प्रथम उल्लेखनीय संघर्ष, जो इतिहास की एक विशेष घटना बन चुका है सन् १२१५ में "वैरनों" अर्थात् अंग्रेज ठिकानेदारों ने शाह जान के विरुद्ध किया था; उसके परिणाम स्वरूप प्रसिद्ध "मैग्ना चार्टा" अर्थात् उस समय के ठिकानों के नियमों की लिखित गारण्टी का 'बड़ा कागज' (अधिकार पत्र) दिया गया था। "मैग्ना चार्टा" का सम्बन्ध निम्न जनता की अपेक्षा 'वैरनो' के साथ ही अधिक था। परन्तु जनता ने शाह के विरुद्ध 'वैरनों' का साथ दिया था, क्योंकि उन्होंने कहा था कि जनता में व्याप्त कष्टों का कारण शाह की फजूल खर्चियां और जनता की रक्षा करने में भ्रष्टाचारी अधिकारियों की लापरवाही है।

शासन की निम्न और उच्च शक्तियों में इसी प्रकार के सम्बन्धों का उदाहरण अमेरिकी क्रान्ति के समय पुनः दिखाई पड़ा था। तब अधिकतर जनता ने शाह के शासन के विरुद्ध औपनिवेशिक शासनों का साथ दिया था। एक बार पुनः लोगों ने अनुभव किया था कि हमारे कष्टों का कारण शाह द्वारा कानून का दुरुपयोग है

जब औपनिवेशिक विधान मण्डलों और उनके उत्तराधिकारी राज्य शासनों को उन्होंने अपने अधिकारों का रक्षक और समर्थक समझा था।

"मैग्ना चार्टा" से लेकर श्रमिकों को सम्मिलित समझौता करने के अधिकार की गारण्टी देने वाले संघीय कानून तक, अमेरिकी परम्परा के मूल में स्वतन्त्रता और समानता के जितने भी विचार निहित हैं उनका विकास; न्यून या अधिक अधिकारों के सम्पन्न लोगों ने ही किया था, गरीबों की बस्तियों में से उठे हुए क्रान्तिकारियों ने नहीं। इतिहास के प्रारम्भिक काल में इंगलैण्ड की साधारण जनता कभी-कभी अपने से "ऊपर वालों" के विरुद्ध भी विद्रोह कर देती थी, जैसा उसने सन् १३८१ में 'वैट टाइलर का विद्रोह' नाम से किया था। परन्तु बुद्धिमान और संयमी नेता के अभाव में वह अभीष्ट सुधार प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकी थी। जनतन्त्रीय समाज की ओर अधिकाधिक प्रगति का नियम प्रायः यही रहा है कि शक्तिसम्पन्न और प्रभावशाली लोग अपने से अधिक शक्तिसम्पन्न लोगों का और शासनों का विरोध करते रहे। इस इतिहास के फल स्वरूप अमेरिकी सिद्धान्तो का रूप अत्यन्त मध्य-वर्गीय है। उदाहरणार्थ, अमेरिका के संगठित श्रमिक शायद ही कभी ऐसा कोई काम-काज करते हों जिससे यह प्रकट हो कि वे अपने आपको "प्रोलेटेरियट" अर्थात् निरा मजदूर समझते हैं। वे अपने यूनियन का साथ देते हैं, परन्तु कम्यूनिस्ट तानाशाही की स्थापना का साधन बनकर नहीं। वे यूनियनों का उपयोग मध्य-वर्गीय दर्जे के रहन-सहन का अपना अधिकार सुरक्षित करने तथा उसे विस्तृत करने के लिए और अमेरिकी समाज में मध्य-वर्गीयों का जैसा आदर होता है वैसा ही अपने लिए भी प्राप्त करने के लिए करते हैं।

इसलिए अमेरिकी परम्परा, संगठित और सम्मानित स्वार्थों में संघर्षों की एक लम्बी शृंखला के रूप में चली आ रही है। अमेरिकी क्रान्ति इन संघर्षों का ही एक नमूना था। उसमें शाह का साथ वे बड़े-बड़े व्यापारी और इंगलैण्ड के कारखाना-मालिक दे रहे थे; जो व्यापार में अमेरिकियों के मुकाबले से बचना नहीं चाहते थे। उनका स्वार्थ, शाह और पार्लमेण्ट द्वारा प्रदत्त कानूनी अधिकार के आधीन पहले से संगठित थे। उनके विपरीत, अमेरिका के पक्ष में अमेरिकी व्यापारी, तम्बाकू

बोनेवाले किसान, भूमिपति, और अन्य ऐसे मजदूर और किसान थे जिनको समझा-बुझाकर यह विश्वास करवा दिया गया था कि व्यापार पर लगायी गयी ब्रिटिश पाबन्दियों से और टैक्सों से तुमको नुकसान होगा। अमेरिकी लोग अपने राज्यों के तथा कुछ शिथिल रूप में महाद्वीप की कांग्रेस के नेतृत्व में संगठित थे। जो प्रभावशाली अमेरिकी लोग शाह का साथ दे रहे थे वे बाद को बाहर निकाल दिये गये। जो नये राष्ट्र की स्थापना करने और उसके इतिहास की रचना करने के लिए पीछे रह गये उनका दृढ़ विश्वास था कि केन्द्रीय शासन के अत्याचारी हो जाने की सम्भावना रहती है, और उसके विपरीत स्थानीय शासन केन्द्रीय शासन का विरोध करने के लिए एक अच्छा और संगठित साधन होता है। इस मामले में वे अपने उन पूर्वजों से मिलते-जुलते थे जिन्होंने कि शाह जॉन के विरुद्ध 'बैरनों' का साथ दिया था।

केन्द्रीय शासन से यह भय और उसकी नापसन्दी ही टामस जेफरसन के अनुयायियों का प्रथम सिद्धान्त था। जेफरसनी जनतन्त्र का आदर्श-वाक्य था—"वही शासन सर्वोत्तम है जो न्यूनतम शासन करता है।"

दूसरी ओर, केन्द्रीय शासन कभी-कभी जनता के अधिकारों को पद-दलित भले ही करने लगे और स्थानीय शासन को उसका विरोध भले ही करना पड़े, परन्तु जनता की कुछ आवश्यकतायें ऐसी होती हैं जो केन्द्रीय शासन द्वारा ही पूरी हो सकती हैं। क्रान्ति के तुरन्त बाद ही देश में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी जिसमें केन्द्रीय शासन के विरोध की भावना गौण पड़ गयी थी। व्यापारियों, महाजनों और सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ने लगा था कि व्यापार का ह्रास हो रहा है और देश की रक्षा-व्यवस्था निर्बल पड़ती जा रही है। इन लोगों का नेता ऐलेक्जण्डर हेमिल्टन था। हेमिल्टनी अथवा संघ पक्षपाती लोग यद्यपि इंगलैण्ड के केन्द्रीय शासन के कट्टर विरोधी थे, पर वे व्यवहारिक कारणों से विवश होकर संयुक्त राज्य अमेरिका में दृढ़ केन्द्रीय शासन की स्थापना का समर्थन करने लगे थे। जब राज्यों द्वारा इस पर स्वीकृति की छाप लगाने का अवसर आया तब जेफरसन तक ने अनिच्छापूर्वक संविधान के विचार का साथ दिया था।

आज तक भी अमेरिकी लोग, जव जो राजनीतिक प्रयोजन जिसके मन में हो उसके लिए लाभदायक या हानिकारक होने के अनुसार, हेमिल्टन और जेंफ़सेंन के सिद्धान्तों के मध्य में कभी इधर को तो कभी उधर को उछलते-कूदते रहते हैं।

इस परिवर्तन का अत्यन्त आकर्षक और मनोरंजक उदाहरण डिमोक्रेटिक पार्टी की सन् १९३३ से सन् १९५३ तक की नीतियां हैं। श्री रूजवेल्ट और श्री ट्रूमन, दोनों ने, इस काल में संघीय शासन के अधिकार और कार्य वहुत वढ़ा दिये। यह नीति विशुद्ध हेमिल्टनी है, यद्यपि डिमोक्रेटिक पार्टी जेफरसन की उत्तराधिकारी है और अव तक उसके ही वहुत-से विचारों की दुहाई देती है। उत्तराधिकारी के इस विचित्र प्रकार परिवर्तित होने का कारण यह है कि अव तक शासनाधिकार दूसरे के हाथ में था। सन् १९३३ में लोग, सन् १७८६-१७८७ के कठिन समय की भांति, वड़े पैमाने पर भारी मन्दी का शिकार हो रहे थे। जिस प्रकार सन् १७८७ में हेमिल्टन ने सोचा था उसी प्रकार अव डिमोक्रेटों ने सोचा की जनता की आवश्यकता पूरी करने का सर्वोत्तम उपाय संघीय अधिकार का प्रयोग है। इसलिए सिद्धान्तों को वस्तुस्थिति के अनुसार तोड़-मोड़ लेना पड़ा।

शासन के विपय में हेमिल्टनी और जेफरसनी दृष्टिकोणों के अतिरिक्त, अमेरिकी राजनीतिक दर्शन, शासन के प्रयोजन और प्रकार के सम्वन्ध में अधिक सूक्ष्म कल्पनाओं से भी प्रभावित हुआ है। प्रस्तुत विचार के लिए ऐसी चार प्रमुख कल्पनाओं की चर्चा की जा सकती है। इनमें से दो 'अनार्किज्म' और 'सोशलिज्म' तो चरम कल्पनाएं हैं, और शेप दो की विचारधारा उनकी मध्य-वर्ती है। 'अनार्किज्म' का अभिप्राय है किसी भी शासन का न होना अर्थात् अराजकता और 'सोशलिज्म' का आदर्श है सव कुछ शासन के ही सुपुर्द कर देना अर्थात समाजवाद। अमेरिकी लोगों के प्रायः सभी राजनीतिक और आर्थिक विचारों पर मध्य-वर्ती विचार-धाराओं का ही प्रभाव पड़ा है, चरम कल्पनाओं का नहीं। मध्यवर्ती विचारधाराओं में से एक का नाम है 'इण्डिविजुअलिज्म' (व्यक्तिवाद),

अर्थात् व्यक्तियों के अधिकारों को प्रधानता देना। दूसरी विचारधारा का अमेरिकी भाषा में निश्चित नाम तो कुछ नहीं है, परन्तु उसका सार यह है कि देश की समृद्धि में शासन को सहायता करनी चाहिये। इसे "इण्टरवेन्शनिज्म" अथवा हस्तक्षेप का नाम दिया जा सकता है।

'अनार्किज्म' (अराजकतावाद) और 'सोशलिज्म' (समाजवाद) का अमेरिकी राजनीति पर प्रायः कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। अराजकतावाद एक चरम कल्पना है कि शासन सदा अत्याचारी ही होता है, और इस कारण उसका अन्त कर देना चाहिए। दूसरी चरम कल्पना 'सोशलिज्म' (समाजवाद) में यह दावा किया जाता है कि व्यापार और व्यवसाय पर निजी स्वामित्व के कारण ही जनता का पीड़न होता है, और जो व्यापार और व्यसाय कुछ भी श्रमिक रखने के लायक बढ़े हों उन पर राज्य का स्वामित्व हो जाना चाहिए। इन दोनों कल्पनाओं से अमेरिकी जनता प्रभावित नहीं हुई। अपनी मध्य-वर्गीय प्रवृत्तियों के कारण अधिकतर अमेरिकी लोग चरम और अतिसरल कल्पनाओं से आकृष्ट नहीं हुए हैं। शायद हेमिल्टन और जेफरसन के मध्य में झूलते रहने के लम्बे इतिहास में भी औसत अमेरिकियों को किन्हीं काल्पनिक युक्तिवादों में मध्य के समीप सर्वाधिक सुरक्षा का अनुभव करने का अभ्यासी बना दिया है। कम से कम, शासन के उचित उपयोग की चर्चा छिड़ने पर राजनीतिक विवाद में जिन दो कल्पनाओं का बार-बार जिक्र होता है वे 'इण्डिविजुअलिज्म' (व्यक्तिवाद) और 'इण्टरवेन्शनिज्म' (शासन का हस्तक्षेपवाद) ही हैं। इनमें से प्रथम तो जेफरसनी विचारों से मिलती-जुलती है और द्वितीय का अविर्भाव अमेरिकी राजनीति में पहले-पहल हेमिल्टन के कारण हुआ था।

'इण्डिविजुअलिज्म' (व्यक्तिवाद) कल्पना के अनुसार, शासन का एक मात्र उचित उपयोग आन्तरिक व्यवस्था का रखना और बाह्य आक्रमणों से राष्ट्र की रक्षा करना है। इस कल्पना को "लेस्से-फेर"—"लोगों को अपनी व्यवस्था आप करने दो"—भी कहा जाता है। इसका आधार यह विश्वास है कि अपराधियों के अतिरिक्त अन्य लोगों को यदि अपने स्वार्थों की चिन्ता आप करने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया जायगा तो वे अपनी समस्याओं का हल स्वयमेव यथासम्भव उत्तम

उपाय से कर लेंगे। उनकी निर्णायक बुद्धि जैसा कहेगी उसके अनुसार वे परस्पर सहयोग या प्रतिस्पर्धा या अपने विरोधियों का विरोध करने लगेंगे। इसके समर्थकों का दावा है कि मानवता के मामलों को कोई "अदृश्य हाथ" स्वयमेव उनके तर्क-संगत मार्ग की ओर ले जाता और सुविधाओं और वाधाओं का उचित विभाजन कर देता है। जो कुछेक उदाहरण आकस्मिक कष्टों या कठनाइयों के रह जाते हैं उनका प्रतिकार निजी परोपकारियों द्वारा किया जा सकता है।

'इण्डिविजुअलिज्म' (व्यक्तिवाद) की कल्पना के अनुसार यदि किसी काम में कुछ गड़वड़ हो जाय, जैसे किसी वस्ती के निर्वाह का एक मात्र साधन कोई मिल दिवालिया हो जाय, तो वह भी आर्थिक नियम के प्रयोग का ही उदाहरण है। यदि देश में मन्दी आ जाय तो वह भी आर्थिक नियम के पालन का फल है। प्राकृतिक नियमों में हस्तक्षेप करने के प्रयत्न को भयावह और नासमझी का काम माना जाता है। वे डरते हैं कि प्रकृति के नियमों में हस्तक्षेप करने से हालात और भी विगड़ जायंगी। सन् १६२६ में जो भारी मन्दी शुरू हुई थी उसके समय राजनीतिक विवादों में ये सब युक्तियाँ पेश की गयी थीं।

इसकी विरोधी कल्पना का निश्चित नाम कुछ नहीं है। इसका कारण शायद यह है कि उसे सदा अपनी सफाई देते रहना पड़ता है। अमेरिकियों का स्वभाव ही ऐसा वन चुका है कि वे शासन से सहायता स्वीकार करते हुए लज्जा का अनुभव करते हैं। वे सुगमता से यह भी नहीं मानते कि ऐसे कोई सिद्धान्त हैं जिनसे इस प्रकार की सहायता का समर्थन किया जा सके। इसलिए जब कभी अमेरिकी लोग किसी ऐसे काम की सोचते हैं जिसे उनकी समझ के अनुसार शासन को करना चाहिए तब उनका प्रायः यह विश्वास होता है कि "कुछ न कुछ नियम अवश्य होगा।" परन्तु इस विश्वास के वावजूद जब वे किसी अन्य की सहायता करने के लिए कर देने की वात मन में लाते हैं तब वे अनुभव करने लगते हैं कि ऐसे कामों से अमेरिका परम्परा विगड़ जायगी।

'इण्टरवेन्शनिज्म' (शासन का हस्तक्षेपवाद) की कल्पना का सार यह है कि कुछ आवश्यकताएं ऐसी हैं जो पुलीस और सेना के वश की नहीं हैं और उन्हें

केवल शासन पूरा कर सकता है। संविधान लिखा ही न जाता यदि व्यापारी लोग निराशा के मारे यह अनुभव न करते कि विनाशक व्यापारिक प्रतिबन्धों तथा मुद्रा के मूल्य में भयंकर उतार-चढ़ाव से बचने के लिए व्यापार को पूर्णतया नियन्त्रित किया जाना आवश्यक है। संविधान की रचना विशेषतः इसी प्रयोजन से की गयी थी कि व्यापार, मुद्रा, डाक-व्यवस्था और 'पेटेण्टों' के कार्यालय नियन्त्रण करने और "सर्वसाधारण के हित" की अन्य व्यवस्थाएं करने के लिए केन्द्रीय शासन को अधिक अधिकार दिये जा सकें।

इसी प्रकार 'फेडरलिस्टों' अर्थात् संघ-पक्षपातियों के इतिहास का आरम्भ ही ऐसी पार्टी के रूप में हुआ जो कि शासन को पुलीस और विदेशी शत्रुओं से रक्षा के कामों से कुछ अधिक काम सौंपना चाहती थी—और आज की 'रिपब्लिकन' पार्टी के पूर्वज 'फेडरलिस्ट' ही थे। वे चाहते थे कि समृद्धि और उन्नति के लिए जो कुछ भी करना आवश्यक है उसकी सीमाओं में रहते हुए शासन व्यापार को भी सहायता करे।

जिन सिद्धान्तों के कारण 'फेडरलिस्टों' ने संविधान का समर्थन किया था उन्हीं के कारण उनके उत्तराधिकारियों ने उद्योग-व्यवसायों को प्रोत्साहन देने के लिए संरक्षक तट-करों का समर्थन किया। देश के इतिहास के आरम्भिक समय में संघीय शासन के अधिकतर जनहितकारी कार्यों से, श्रमिकों और किसानों की अपेक्षा व्यापारियों का प्रत्यक्ष लाभ अधिक हुआ था, इस कारण जेफरसन के अनुयायी शासन के कार्यों का विस्तार करने के विरोधी थे; वे "इण्डिविजुअलिज्म" (व्यक्तिवाद) कल्पना के ही पक्षपाती बने रहे। सन् १८२८ में ऐण्ड्रू जैक्सन पश्चिमी सीमान्त की जनता का प्रतिनिधि बनकर 'ह्वाइट हाउस' में पहुंचा और उसने 'नेशनल बैंक' (सरकारी बैंक) का विरोध किया, क्योंकि उसके कामों से सीमान्त के छोटे किसानों और व्यापारियों की अपेक्षा बड़े नगरों के व्यापारियों को अधिक लाभ पहुंच रहा था।

अतः यह समझने के लिए कि कभी कोई पार्टी 'इण्डिविजुअलिज्म' की पक्षपाती और कभी कोई शासन की सेवाओं का विस्तार करने की पक्षपाती क्यों

बन जाती है, यह जान रखना चाहिए कि ऐसे परिवर्तन यह देखकर ही किये जाते हैं कि रोटी चुपड़ी हुई किधर से है। परन्तु जो कोई जो कुछ चाहता है उसे शासन से वही दिलवा कर दोनों पार्टियाँ समझौता क्यों नहीं कर लेतीं? किसी हद तक वे ऐसा करती भी हैं। प्रत्येक कांग्रेस सदस्य चाहता है कि शासन उनके जिले में डाक-घर खुलवा दे या नदी का बाँध बनवा दें; और यदि अन्य कांग्रेस-सदस्य उसके यहाँ के सार्वजनिक कार्यों के पक्ष में मत दे दें तो वह उनके पक्ष में दे देता है। परन्तु संघीय शासन के काम का विस्तार करने के लिए इस प्रकार की सौदेबाजी की एक हद है। इसका एक अन्य कारण यह है कि जनता ऊँचे करों को पसन्द नहीं करती। एक अन्य कारण यह है कि बहुत सी सार्वजनिक सेवाओं के कारण किसी न किसी प्रकार का नियन्त्रण अथवा बड़े-बड़े निजी कार-बारों में हस्तक्षेप होता है। उदाहरणार्थ, ट्रस्ट-विरोधी कानून लागू करने से साधारण व्यापारियों को भले ही लाभ हो, परन्तु कुछ कार्पोरेशनों को—प्रायः अधिक प्रभावशालियों और शक्तिशालियों को—तो हानि ही होती है। स्वभावतः जिनको हानि होती है वे "इण्डिविजुअलिज्म" की वकालत और संघीय कार्यों के विस्तार का विरोध करने लगते हैं।

यद्यपि पार्टियों की ओर से जो युक्तियां दी जाती हैं उनका आधार प्रायः विशेष स्वार्थ होते हैं, परन्तु वे सर्वथा तर्क हीन या अर्थ हीन भी नहीं होतीं। अमेरिकी लोगों ने अनुभव से देखा है कि 'अनार्किज्म' (अराजकतावाद) और 'सोशलिज्म' (समाजवाद) की चरम कल्पनाओं के मध्य की द्विपक्षीय राजनीतिक कल्पना पर चलने से आर्थिक प्रगति तो होती ही है, अनेक सम्भावित आपत्तियों से रक्षा भी हो जाती है। वे सरकारी सहायता के लाभों और निजी प्रगति को दबाने की हानियों पर निरन्तर विवाद करके मध्य-मार्ग का अवलम्बन किये रहते हैं। तर्क की दृष्टि से ये दोनों ही युक्तियां अंशतः ठीक हैं, और जब मतदाता दोनों को तोलकर तुला को सीधा कर देते हैं तब उन्हें शासन की वही प्रणाली मिल जाती है जो कि अमेरिकी जनता को पसन्द है।

उत्तराधिकार का स्वरूप विकृत हो जाने के कारण जिस प्रकार 'फेडरलिस्टों'

(संघ-पक्षपातियों) के उत्तराधिकारी "इण्डिविजुअलिज्म" के पक्षपाती बन गये और टामस जेफरसन के अनुगामी शासन के कार्यों के विस्तार का समर्थन करने लगे, वह प्रधानतया विज्ञान और उसके आविष्कारों का परिणाम था।

सन् १८०० में अमेरिकी जनता में बहु संख्या किसानों की थी, और शासन उनकी सेवा बहुत कम कर सकता था। शासन ने पश्चिमी प्रदेश खरीद कर या जीतकर उसमें उन्हें स्वतन्त्र छोड़ दिया था। उसने केवल इण्डियन कबीलों से उनकी रक्षा करने का काम अपने जिम्मे रक्खा था। इससे आगे सीमान्त में अग्रणियों को अपना मार्ग स्वयं निकालना पड़ा। जब वे स्वतन्त्र बस्तियों में अपना संगठन करने लगे तब उनके शासक वे स्वाभाविक नेता बने जिनका निर्वाचन उन्होंने स्वयं किया था। वे अपने घोड़ों के चोरों को फांसी भी स्वयं ही लगाते थे। इस प्रकार अपने शासन का निर्माण स्वयं करना सामाजिक संगठन का, आदि काल के कबीलों की अपेक्षा भी, अच्छा उदाहरण था। अग्रणी लोग पहले से जानते थे कि शासन का अमेरिकी रूप क्या होगा, और जब कभी उन्हें आवश्यकता होती थी, वे सभा बुला कर उसमें इतिकर्तव्यता का निर्णय कर लेते थे।

इस प्रकार के अनुभवों से न केवल पश्चिम के अग्रणियों का, अपितु साधारणतया सारी ही अमेरिकी जनता का विश्वास ऐसा बन गया कि यदि शासन की आवश्यकता हो ही तो व्यवहार की अधिकतर समस्याएं छोटे-छोटे स्थानीय शासनों से सुलझ सकती हैं।

इसके पश्चात् धीरे-धीरे विज्ञान का प्रभाव बढ़ने लगा। विशाल महाद्वीप के आर-पार चलने वाली रेलें बढ़ती-बढ़ती प्रशान्त महासागर तट तक पहुंच गयीं। कैलिफोर्निया के लोग भाड़ों की अधिकता और अपने विरुद्ध अनुचित पक्षपात की शिकायत करने लगे। रेलें इतनी प्रभावशाली थीं कि उनका नियन्त्रण किसी एक राज्य-शासन के वश की बात नहीं रहा। मिट्टी का तेल निकल आया और लोग मोमबत्तियां तथा ह्वेल का तेल जलाना छोड़ कर "पहाड़ी तेल" के लैम्प जलाने लगे। मिट्टी के तेल का व्यापार शीघ्र ही शीघ्र एकाधिकारी व्यापार में परिणत हो

गया और लोग इस परिणाम से प्रसन्न नहीं हुए। जनता रेलों का नियन्त्रण और एकाधिकार पूर्ण व्यापारों का दमन संघ द्वारा किया जाने की मांग करने लगी।

बीसवीं शताब्दी में नवीन विकास और भी शीघ्र-शीघ्र होने लगे। उनमें से कइयों के कारण इतने बड़े-बड़े व्यवसाय खड़े हो गये कि वे राज्यों की सीमाएं लांघ कर फैल गये और उन्हें राज्यों की अपेक्षा बड़ी शक्ति से नियन्त्रित करना पड़ गया। संयुक्त राज्य अमेरिका में रेडियो लाभ पर न चल सकता यदि कोई अधिकारी उसकी सीमाएँ नियन्त्रित न कर देता। हवाई यातायात के सुरक्षा नियमों का पालन करवाने और जिन मार्गों पर एकाधिकार की आवश्यकता हो उनका लाइसन्स देने के लिए भी संघीय अधिकारी की आवश्यकता है। प्रत्येक ऐसा नया आविष्कार होने पर जिसके प्रयोग में संघीय प्रबन्ध के हस्तक्षेप की या सहायता की आवश्यकता हो, वाशिंगटन के पहले से बहुसंख्यक सरकारी विभागों में एक और विभाग की वृद्धि हो जाती है। मोटर-गाड़ी का मालिक प्रायः कोई व्यक्ति होता है और वही उसे चलाता भी है, परन्तु उसके लिए इतनी दूर-दूर तक फैली हुई सड़कों की आवश्यकता पडती है कि उनकी सन्तोषजनक व्यवस्था, बिना संघ की सहायता के, केवल राज्य नहीं कर सकते।

प्राकृतिक विज्ञानों ने अनेक ऐसी जनोपयोगी सेवाओं का आविष्कार किया है जो लाभदायक केवल तभी हो सकती हैं जबकि संघीय शासन उन्हें जनता के लिए अति स्वल्प मूल्य में या बिना मूल्य सुलभ कर दे। ऐसी प्रथम सेवा वैज्ञानिक कृषि का विकास थी। उसे संघीय कृषि-विभाग ने राज्यों की सहायता से छोटी-छोटी पुस्तिकाओं और जिला-एजन्सियों द्वारा जनता के लिए सुलभ बना दिया। वैज्ञानिक कृषि का ज्ञान फैल जाने का लाभ यह हुआ कि खेती में लगी हुई आबादी का बहुत बड़ा भाग अन्य कार्यों के लिए मुक्त हो गया और वह संयुक्त-राज्य अमेरिका में औद्योगिक उत्पादन को उच्च स्तर तक पहुंचा देने का कारण बना। जो कुछेक लाख किसान अब खेती कर रहे हैं वे पहले किसी भी समय की अपेक्षा अधिक फसलें पैदा करते हैं, यहां तक कि उनकी पैदावार के लिए बाजार तलाश करना भी एक समस्या बन गया है, और उसे हल करने का भार संघीय शासन के सिर पड़ गया है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में नये आविष्कारों के कारण लोगों की औसत आयु बहुत बढ़ गयी है, और उससे न केवल निजी डाक्टरों पर नये कर्त्तव्यों का बोझ पड़ गया है, स्थानीय शासनों पर भी शुद्ध पानी और स्वास्थ्य, सफाई आदि की व्यवस्था करने का भार आ पड़ा है। उनके कारण ऐसे अनेक नये अवसर भी उपलब्ध हो गये हैं कि उनका लाभ राष्ट्र-व्यापी पैमाने पर ही उठाया जा सकता है। संयुक्त-राज्यों की सार्वजनिक स्वास्थ्य-सेवा का संगठन इसी उद्देश्य से किया गया है। चिकित्सा-विज्ञान का और खेतों से उठ कर लोगों के नगरों में जा बसने का, एक और परिणाम यह हुआ है कि बुढ़ापे में पेन्शन की व्यवस्था न केवल अधिक परिमाण में करनी पड़ गयी है, अपितु यह भी ध्यान रखना पड़ा है कि नागरिक को उसका लाभ एक राज्य से सरे राज्य में चले जाने पर भी मिलता रहे।

कुछेक अन्य सेवाओं का, जैसे कि ऋतु-विभाग, नापतोल आदि के स्टैण्डर्डो (मान) के ब्यूरों, जन गणना और अनेक संख्या विभागों का, केवल नाम निर्दिष्ट कर देना पर्याप्त होगा। ये विभाग खेती की और कारखानों की पैदावार आदि का तखमीना देते रहते हैं। इन सेवाओं की आवश्यकता इस कारण है कि वैज्ञानिक और टेकनिकल कुशलताओं का उपयोग करने में ये अमेरिकी जनता के लिए सहायक रहें। कुछ निजी संगठन और स्थानीय तथा राज्यीय शासन भी, इस प्रकार की कुछ सेवाएं करते हैं परन्तु कुछ सेवाएं केवल संघीय शासन सुलभ मूल्य पर कर सकता है।

अन्त में, अत्यन्त ध्यान आकर्षित करने वाला संघीय शासन का जो विस्तार हुआ वह सन् १९३२ में श्री फ्रैंकलिन रूजवेल्ट के राष्ट्रपति निर्वाचित हो जाने पर भारी मन्दी के कारण हुआ। जनता मन्दी के मारे तंग आ चुकी थी। वह "विश्वास" उत्पन्न करने के लिए "लेस्से-फेर" के अर्थात् लोगों को अपना काम आप करने देने के प्राकृतिक उपाय को भी परख कर देख चुकी थी। निजी परोपकार और स्थानीय तथा राजकीय सहायताओं द्वारा भी बेरोजगारी कम करने का प्रयत्न करके देखा जा चुका था। अन्त में उसने संघीय शासन से सहायता लेने

का निश्चय किया। श्री रूजवेल्ट ने कई-एक प्रयत्न केवल परीक्षण के रूप में किये थे, परन्तु जब उनके द्वारा धीरे-धीरे समृद्धि वापस आने लगी तब उनमें से अधिकतर को जनता भी पसन्द करने लगी। सन् १९२६ के 'एम्प्लायमेण्ट ऐक्ट' में शासन द्वारा जनता की सेवा करने का जो सिद्धान्त अपनाया गया था उस पर भी जनता ने अपनी स्वीकृति की छाप लगा दी। उस ऐक्ट में कांग्रेस ने माना था कि मन्दी को रोकने के लिए "सब सम्भव साधनों का प्रयोग" करना शासन का ही उत्तरदायित्व है।

परन्तु इस मानने मात्र से इस विवाद का अन्त नहीं हो जाता। अमेरिकी जनता अब भी निजी उद्योग-व्यवसाय को और स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा को ही पसन्द करती है। पहले जो सेवाएं शासन द्वारा की जाने या न की जाने के औचित्य पर विवाद हुआ करता था उनमें से बहुतों को अब दोनों पार्टियों ने शासन के सपुर्द करना स्वीकार कर लिया है; परन्तु जनता अब भी उन उद्योगों का शासन द्वारा संचालित होना पसन्द नहीं करती जिनको उसके द्वारा चलाने की आवश्यकता नहीं है अथवा जो निजी प्रयत्न से भी चल सकते हैं। सन् १९५२ में जनरल आइजनहोवर को जनता ने मितव्ययिता के "प्लैटफार्म" पर चुना था। अर्थात् जनता ने उन्हें शासन की छानबीन करने, आवश्यक व्यय छांट देने, और जिन सेवाओं को वह मितव्ययिता के कुल्हाड़े से बचाना आवश्यक नहीं समझती थी उनका अन्त कर देने का निर्देश दिया था।

जब एलेक्जण्डर हेमिल्टन ने संघीय शासन का विचार करने का आन्दोलन किया था तब जिन लोगों को उससे प्रत्यक्ष लाभ पहुंचा था वे व्यापारी थे। इस कारण वे हेमिल्टन के पक्षपाती बन गये थे। परन्तु उसके डेढ़-सौ वर्ष पश्चात् जब श्री फ्रेंकलीन डी० रूजवेल्ट ने शासन का विस्तार किया तब प्रत्यक्ष लाभ बेरोजगारों को पहुंचा और इसलिए श्री रूजवेल्ट का समर्थन न करने वाले वही थे। अन्त में लाभ व्यापारियों को भी हुआ, परन्तु उनको कर देना पड़ता था; और करों का बिल देखते ही जो दुःख होता है, वह उस सुख से कहीं अधिक होता है जो अगले वर्ष आय बढ़ जाने पर मिलता है। वे यह भी देख चुके थे कि सर्वजनोपयोगी

सेवाएं अनिवार्य रूप से शासन के नियन्त्रण में जायेंगी ही; परन्तु संघ के नियन्त्रणों की अपेक्षा राज्यों के नियन्त्रण से भुगतना आसान था, इस कारण सार्वजनिक उपयोग की सेवाओं के स्वामियों ने संघीय शासन का विरोध और राज्यों के अधिकारों का समर्थन किया। इस प्रकार विज्ञान और आविष्कारों के कारण परिवर्तित परिस्थितियों ने डिमोक्रेटों को हेमिल्टनी और रिपब्लिकनों को जेफरसनी बना दिया।

परन्तु अपने हृदय में प्रायः सब अमेरिकी अपना एक-एक पांव दोनों ओर रखना पसन्द करते हैं। इस संघीय शासन के विस्तार की आवश्यकता अनिच्छा से ही स्वीकार करते हैं। सिद्धान्तः हम यही पसन्द करेंगे कि संघीय शासन का काम राज्यों को, और यथा सम्भव स्थानीय शासनों को, सौंप दिया जाय। प्रत्युत इससे भी आगे बढ़कर यदि सम्भव हो तो तीनों का काम निजी उद्योगों के सपुर्द कर दिया जाय। सन् १९५२ में जनरल आइजनहोवर और गवर्नर स्टीवन्सन के आन्दोलन भाषणों से बार-बार यही प्रतिध्वनि निकलती थी कि संघीय शासन का विस्तार घटा दिया जाय।

जहां तक शासन के विकेन्द्रीकरण और संकोच की दिशा में प्रगति की आशा का प्रश्न है, अमेरिकी लोगों का उस सम्बन्ध में कोई स्थिर सिद्धान्त नहीं है। साधारणतया उनकी कार्य-दिशा यह रहती है कि वे पहले तो "मितव्ययिता" की मांग करते हैं, परन्तु पीछे अपने कारबार के लिए वे शासन की जिन सेवाओं को आवश्यक समझते हैं, उनका समर्थन करने लगते हैं। साथ ही विकेन्द्रीकरण का सिद्धान्त जड़ पकड़ चुका है और सम्भव है कि समय पाकर वह अधिक लोकप्रिय हो जाय। श्री फ्रेडरिक डिलानो, जो कि राष्ट्रपति रूजवेल्ट के आधीन "नेशनल-रिसोर्सिज-बोर्ड (राष्ट्रीय साधनों के बोर्ड) के चेयरमेन थे, इस सिद्धान्त को वि-योजना कहा करते थे। इसका सर्वोत्तम उदाहरण शायद 'टेनेसी-वेली-अथारिटी" है।

'टेनेसी-वेली-अथारिटी' अर्थात् टेनेसी घाटी की प्रबन्ध कर्त्ता संस्था का आरम्भ से ही सबसे बड़ा गुण यह था कि उसने अपने जिम्मे केवल नदी के

नियन्त्रण, सस्ती बिजली पहुंचाने और कुछ ऐसे अनुसन्धान का काम लिया था जो और कोई उठाने को तैयार नहीं था। आगे चलकर वह ऐसे अवसरों को बतलाने और सूचनाओं को भी देने लगी जिनके सहारे टेनेसी घाटी के राज्य, काउण्टियां और नगर, और व्यापारी तथा किसान, स्वयंमेव अपनी योजनाएं बना सकते थे। 'वि-योजना' का अर्थ है कि संघीय निर्माण, नियन्त्रण, सहायता अथवा वैज्ञानिक अनुसन्धान का कार्य इस प्रकार किया जाय कि संघ के हाथों में यथाशक्ति कम काम रहे। 'वि-योजना' का कोई भी कार्य भली-भांति करने का लक्ष्य यह होता है कि ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न कर दी जांय कि उनमें केन्द्रीय अधिकारियों को स्थानीय तथा अन्य विस्तार की बातों की चिन्ता करने की आवश्यकता न रहे।

विकेन्द्रीकरण का यह सिद्धान्त एक अन्य विचार से भी प्रकट होता है, जो द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् प्रचलित हो गया है। वह विचार यह है कि संघीय शासन का काम ऐसा "मौसम" उत्पन्न कर देता है कि उसमें रोजगार की तरक्की होती रहे। इसका अर्थ अपरिष्कृत अथवा कच्ची "इण्डिविजुअलिज्म" की ओर लौट जाना नहीं है। इसमें यह मान लिया गया है कि पहियों को चलता रखने के लिए सब उपाय करने के जिम्मेवारी शासन की ही है। परन्तु इसका यह मतलब भी नहीं कि शासन प्रत्येक पहिये के पास एक-एक सरकारी कर्मचारी तैनात कर दे कि जब वह धीमा पड़ने लगे तब वह उसे धक्का लगाकर तेज कर दे। अच्छा उपाय यह है कि ऐसे कुछ विशेषज्ञ रख लिए जायं जो व्यापारिक ऋतु के प्रतिकूल परिवर्तनों को पहचान सकें और शासन की विविध शक्तियों को अर्थ-व्यवस्था सुधारने की दिशा में प्रवृत्त कर दें।

द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् राजनीतिक अर्थ-शास्त्र के विद्यार्थियों का काम प्रायः यही रह गया है कि वे शासन की शक्तियों को अमेरिकी पद्धति 'वि-योजना' में लगाते रहें, उसमें आवश्यकतानुसार सुधार करते रहें और अमेरिकी जनता की सृजनात्मक योग्यता का अधिकाधिक उपयोग करते रहें। आशा है कि जब इस

प्रकार संघीय अधिकारों के प्रयोग की विधियां निकल आयेंगी और उनकी अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में परीक्षा हो चुकेगी तव अमेरिकी जनता एक वार फिर अपने शासन के सिद्धान्तों को अमेरिकी जीवन की वास्तविकताओं के अनुसार ढाल लेगी ।

अध्याय १३

परराष्ट्र सम्बन्ध

अमेरिकी विदेश-नीति की वहुत-सी विशेषताएं ऐतिहासिक अनुभवों का परिणाम हैं। ये अनुभव संसार के अन्य अधिकतर लोगों के ऐतिहासिक अनुभवों से कुछ भिन्न प्रकार के हैं।

प्रथम तथ्य यह है कि अमेरिकी इण्डियनों के अतिरिक्त संयुक्त राज्य अमेरिका के सव लोग वाहर से "आगत जातियों" के हैं। वे या उनके पूर्वज उत्तरी अमेरिकी में गत चार शताब्दियों में आये थे और वे इस वात को पूर्णतया विस्मृत नहीं कर सकते कि हम कौन हैं और यहां कहां से आये हैं। उनकी विशाल वहुसंख्या यूरोप से आयी थी और अन्तर्राष्ट्रीय तनाव के समय वे अव भी उस "पुराने देश" से प्रेम और घृणा करते हैं जिससे वे नाता तोड़ चुके हैं।

जिन शक्तियों ने यूरोपियनों को समुद्र पार करने के लिए विवश किया उनमें राजनीतिक अत्याचार से भय और घृणा का प्रवल मिश्रण, निराशापूर्ण दरिद्रता, और वे धार्मिक अत्याचार भी थे जिन्हें इन आगन्तुकों को अपने गृह-देश में सहना पड़ा था। उनके हृदय एक ओर स्वदेशानुराग और दूसरी ओर क्रोध के कारण विदीर्ण हो चुके थे। अमेरिकी क्रान्ति के आदि से लेकर सन् १८१२ के युद्ध के अन्त तक इंग्लैण्ड के साथ उन्हें जो दीर्घ और दारुण संघर्ष करने पड़े थे उनकी स्मृतियों से उनकी क्रोध की भावना उद्दीप्त थी। इस प्रकार अमेरिका के इतिहास की सव परम्पराओं में एक भावना यह भी रही है कि "हम यूरोप से निकलकर आये थे, अव हम वहां वापस फिर नहीं घसीटे जायंगे।"

परन्तु साथ ही एक अंग्रेजी कहावत के अनुसार "खून पानी से गाढ़ा होता है" अर्थात्, रक्त-सम्बन्ध या आपत्य-प्रेम अत्यन्त दृढ़ होता है। अमेरिकी लोगों के अधिकतर कानून, रीति-रिवाज, प्रथाएं, और आचार-विचार के आदर्श आदि पश्चिमी सभ्यता के ही अंग हैं। युरोप न केवल उस सभ्यता की मातृभूमि है, उसके अनुयायियों का लगभग आधा भाग बसता भी वहीं है। जब कभी युरोप के विनाश का भय होता है तभी अमेरिकी लोग चौकन्ने हो जाते हैं कि यह खतरे का घण्टा हमारे लिए भी है। जब कभी युरोप में संकट आता है तब अमेरिका में भी इन परस्पर-विरोधी शक्तियों के कारण भारी राजनीतिक संघर्ष उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता। बीसवीं शताब्दी में भी ऐसा होता रहा है। ये संघर्ष इस कारण और भी अधिक तीव्र हो जाते हैं और उलझ जाते हैं कि लगभग आधे अमेरिकी लोग जिन ब्रिटिश परम्पराओं के अनुगामी हैं उनका बहुधा अन्य युरोपियन परम्पराओं से, विशेषत: आयरिश और जर्मन परम्पराओं से, विरोध रहता है। पूर्वजों की ये भावनाएं अमेरिकी जीवन के 'गलते हुए घड़ों' में पिघलकर अभी तक घुली नहीं।

अमेरिकी प्रवृत्तियों पर दूसरा सर्वाधिक प्रबल और निश्चित प्रभाव उस भौगोलिक पृथकता का पड़ा है, जिसके कारण कुछ ही समय पूर्व तक अमेरिका की रक्षा होती रही थी। एक फ्रेंच राजदूत श्री ज्यूले जस्सरेन्द ने एक बार कहा था कि यह देश ऐसा भाग्यशाली है कि उत्तर और दक्षिण में तो इसकी सीमाओं पर निर्बल पड़ोसी बसते हैं और पूर्व और पश्चिम में मछलियां।

परन्तु सन् १९४२ में हैट्टरस अन्तरीप के सामने शान्त मछलियों के बीच में जर्मन पनडुब्बियों को तैरता देखकर सब धक से रह गये थे और बाद को यह जानकर और भी बड़ा धक्का लगा कि डिटरौयट और शिकागो नगरों पर उत्तर के साइबेरिया से आकर वायुयान बम बरसा सकते हैं। यह भी शताब्दियों से जमी हुई सुरक्षा की भावना और आकस्मिक आक्रमण की सम्भावना में, एक संघर्ष ही है। युरोप की पीढ़ियों पुरानी जिन आशंकाओं और विपत्तियों से, हम समझते थे, हम बच आये हैं, वे अकस्मात् ही आकर अमेरिकी दरवाजों को खटखटाने लगे हैं।

न केवल अमेरिकी लोगों का पालन-पोषण युरोप की सामरिक अभ्यास करती हुई सेनाओं से निश्चिन्ततामय दूरी पर हुआ था, उन्होंने गणतन्त्र के आरम्भिक वर्षों में, युरोपियन शक्तियों के, विशेषतः फ्रान्स, ब्रिटेन और स्पेन के, निरन्तर पारस्परिक झगड़ों का लाभ भी उठाया था। उदाहरणार्थ, नेपोलियन ने ल्युजियाना प्रदेश को लेकर पहले संयुक्त राज्य अमेरिका के पश्चिम में एक खतरनाक पड़ोसी वसाने का निश्चय कर लिया था। परन्तु पीछे उसे अमेरिकियों के हाथ वेच डाला; क्योंकि उसे अपनी सब शक्ति अंग्रेजों के साथ युद्ध करने में लगानी थी। हमारे आरम्भिक इतिहास के काल में चूंकि बालक और निर्बल अमेरिका युरोपियन युद्धों के कारण वाह्य हस्तक्षेपों से वचा रहा, इसलिए अमेरिकियों के मन में यह विश्वास ही वैठ गया कि संयुक्त राज्य अमेरिका को युरोप के युद्धों से किसी प्रकार का भय नहीं; प्रत्युत कुछ लाभ ही है। वीसवीं शताब्दी में जब संयुक्त राज्य अमेरिका को दो विश्व युद्धों का सामना करना पड़ा तब उसे यह पुराना विश्वास छोड़ देना पड़ा।

तीन सौ वर्ष तक एक ऐसे विशाल महाद्वीप में निवास का अमेरिकी विचार-धारा पर गहरा प्रभाव पड़ा है, जिसमें नयी वस्तियों के लिए खुला स्थान था। जब पहले-पहल युरोपियन यहां आकर उतरे तब उत्तरी अमेरिका प्रायः खाली ही था। क्रान्ति के पश्चात् निवासार्थियों का प्रवाह अप्पेलेशियन पर्वतों को पार करके पश्चिम की ओर को उमड़ पड़ा। उनके सामने दो हजार मील से अधिक विस्तृत देश खुला पड़ा था। सीमान्त के दीर्घ अनुभवों ने विचारों का और भौतिक प्रगति के सम्बन्ध में आशामय भावनाओं का ऐसा अभ्यास करवा दिया है कि उसकी आज की शताब्दी की यथार्थताओं के साथ सदा संगति नहीं वैठ पाती।

एक अन्य प्रभाव समुद्र मार्ग से व्यापार का दीर्घ इतिहास रहा है। पूर्वी तट के साथ वसती हुई अंग्रेज वस्तियां तैयार माल के लिए तो गृह-देश पर निर्भर रहती थीं, और वदले में तम्बाकू, फ़र की खालें, लकड़ी और अन्न, समुद्र पार भेज कर वेच देती थीं। विभिन्न वस्तियों के मध्य में भी कई पीढ़ियों तक, समुद्र के मार्ग ही यातायात के, यदि एक मात्र नहीं तो, मुख्य साधन थे। इसलिए संयुक्त राज्य

अमेरिका के पुरातनतम और समृद्धतम भाग का स्वभाव समुद्र में घूमने-फिरने का था और उसने लोगों के राजनीतिक विचारों को भी प्रभावित किया। यहां तक कि मध्य पश्चिम की ओर को फैलकर बसे हुए अग्रणी लोग भी बड़े तथा दुर्गम पर्वतों के विस्तार के कारण तटवर्ती नगरों के व्यापार का अन्य सरल मार्ग न पाकर अपना अन्न मिसीसिपी नदी द्वारा ले जाकर न्यू ओर्लियन्स के मार्ग से युरोप के साथ व्यापार करने लगे।

उन्नीसवीं शताब्दी में भीतर देश के विकास के लिए पूंजी की बड़े परिमाण में आवश्यकता पड़ने लगी। इसका अधिकतर भाग ब्रिटिश और डच पूंजीपतियों ने दिया। अमेरिकी लोग विदेशी ऋणों के और अपने वैदेशिक व्यापार पर उन ऋणों के प्रभाव के अभ्यासी हो गये। विदेशियों को इस देश में लगाई हुई पूंजी पर जो व्याज मिला था उससे ही वे अमेरिकी पशु और गेहूं खरीद लेते थे। उन्हें अपने विल चुकाने के लिए अपना तैयार माल इस देश में बड़ी मात्रा में नहीं वेचना पड़ता था। इस कारण अमेरिकी व्यापारियों-व्यवसायियों को अपना माल विदेशी वाजारों में वेचने का और विदेशी माल को तट-कर की दीवारें खड़ी करके अमेरिकी वाजार में न आने देने का अभ्यास पड़ गया। विदेशों के साथ व्यापार का सन्तुलन नहीं होता था, इस कारण उन्हें कोई हानि होती दिखाई नहीं देती थी। यह अभ्यास कई पीढ़ियों तक पड़ता चला जाने के कारण अमेरिकी लोग वीसवीं शताब्दी की सर्वथा भिन्न परिस्थितियों को समझने की तैयारी भली-भांति नहीं कर सके।

अन्त में, अमेरिकी लोगों की प्रवृत्तियों को उनकी लोकतान्त्रिक प्रथाओं और जीवन शैलियों के प्रकाश में समझ लेना चाहिए। अमेरिकी राजनीतिक व्यवहार में अन्य दोष चाहे जितने हों, खुले और स्वतन्त्र विवाद का अभाव उन दोषों में नहीं है।

अमेरिका की स्थापना होने क पश्चात् जिस किसी भी विदेशी को कभी यहां आने का अवसर हुआ होगा, उसने यहां परस्पर विरोधी मतों को वड़ी मात्रा में सुना होगा। समाचारपत्र जो चाहते हैं सो लिखते हैं; और कांग्रेस के सदस्य उन नीतियों का निःसंकोच प्रतिवाद कर देते हैं जिन्हें कि 'स्टेट डिपार्टमेण्ट' (परराष्ट्र-

विभाग) अति सावधानता-पूर्ण विचार के पश्चात् घोषित करता है। ऐसा लगता है कि मित्रों या शत्रुओं के साथ बहुत नाज़ुक बातचीत भी किसी बोदे तम्बू में की जा रही हो और उसे भी हल्ला-गुल्ला मचाती हुई भीड़ ने घेर रक्खा हो। हो सकता है कि कोई व्यक्ति रेडियो पर भाषण करते हुए अपने श्रोताओं को समझाये तो यह कि देशभक्त नागरिकों को अपने देश के भेद शत्रु पर प्रकट नहीं करने चाहिए और इस बात का उदाहरण देने के लिए कि देशभक्त लोग कैसे-कैसे भेद प्रकट कर देते हैं, स्वयं किसी बहुत खतरनाक सैनिक भेद को प्रकट कर बैठे।

इस प्रकार की अनुशासनहीनता के कारण हो सकता है कि कुछ लोगों को लगता हो कि सोवियट यूनियन सरीखी अपने भेदों को गुप्त रखने वाली और एक-वर्गाधिकारी शक्ति के साथ मुकाबला पड़ने पर संयुक्त राज्य अमेरिका भारी घाटे में रहेगा। ऊटपटांग बातचीत करने का स्वभाव इस दशा में इतनी गहरी जड़ पकड़ चुका है कि उसे नियन्त्रण में रखने के लिए कुछ नहीं किया जा सकता। कुछ अमेरिकी लोग यह सोच कर आत्मसन्तोष कर लेते हैं कि वाद-विवाद कितना ही उच्छृङ्खल क्यों न हो उसमें, सोवियटों (रूसियों) के ऊपर छाई हुई तीखी और कटु रहस्यमयता की अपेक्षा तो कुछ नैतिक लाभ है ही।

इससे अन्य स्वतन्त्र लोगों को यह विश्वास दिलवाने में भी सहायता मिल सकती है कि अमेरिकी लोग स्थिर और भरोसे योग्य भले ही न हों, वे संसार की 'स्वतन्त्रता नष्ट करने के लिए कोई गुप्त षड्यन्त्र नहीं रच रहे हैं।

सन् १८१२ के युद्ध के पश्चात् कोई सौ वर्ष तक अमेरिकी लोगों का ध्यान मुख्यतया अपने देश के आन्तरिक विकास पर केन्द्रित रहा। "स्टेट डिपार्टमेण्ट" (परराष्ट्र-विभाग) अति उपेक्षित था और जो परराष्ट्र नीति थोड़ी बहुत थी भी उस पर भी कांग्रेस छाई रहती थी। युरोपियन देशों की तुलना में,जो कि सदा कूटनीति में गहरे डूबे रहते थे, संयुक्त राज्य अमेरिका की कूटनीति विभाग अपने नौसिखियेपन और भद्देपन के लिए बदनाम था। केवल सम्पन्न लोग राजदूत बनने का व्यय उठा सकते थे, और उनमें से बहुतों में कूटनीतिज्ञता की योग्यता इसके अतिरिक्त कुछ नहीं होती थी कि उन्होंने चुनाव में जीती हुई पार्टी को दान

उदारतापूर्वक दिया होता था। परन्तु संकटों के समय बेंजामिन फ्रैंकलिन के काल से लेकर आज तक संयुक्त राज्य अमेरिका को राजदूतों और परराष्ट्रमन्त्रियों का काम करने के लिए कुछ अतियोग्य व्यक्तियों की सेवा प्राप्त करने में सफलता मिलती रहती है।

किसी भी देश के लोग अपने शासन के परराष्ट्र कार्यालय पर स्वभावतः सन्देह करते हैं, क्योंकि उसमें अधिकतर आदमी ऐसे होते हैं जिनका विदेशियों के साथ मेल-जोल होता है। अमेरिका का स्टेट डिपार्टमेण्ट (परराष्ट्र विभाग) भी इसका अपवाद नहीं है। इसका काम ही ऐसा है कि लोकमत की दृष्टि में उसे घाटा उठाना पड़ता है। यदि इसे किसी विदेशी शासन के साथ बातचीत करके, जो जनता चाहती है वह प्राप्त करने में सफलता न हो, तो अपने देश के लोग उन राजनीतिक शक्तियों को तो समझते नहीं जो अपना असर डाल रही होती हैं, और यह सन्देह करने लगते हैं किसी ने संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ धोखा कर दिया—और इस सन्देह मात्र के आधार पर राजनीतिक आलोचनाएं होने लगती हैं। यदि स्टेट डिपार्टमेण्ट (परराष्ट्र विभाग) परिस्थिति-वश ऐसी नीति अपना ले जो सर्वसाधारण के शताब्दी भर पहले के विश्वासों के विरुद्ध हो तो ऐसे चिन्ताग्रस्त लोग हैं जो सदियों से प्रचलित सिद्धान्त का उल्लंघन होते देख कर क्षुब्ध होकर चिन्ता प्रकट करने लगेंगे। इस प्रकार स्टेट डिपार्टमेण्ट (परराष्ट्र विभाग) अनायास ही सबकी आलोचना का शिकार बन जाता है।

पहले विदेशी शासनों के साथ सम्पर्क रखने का काम केवल स्टेट डिपार्टमेण्ट का समझा जाता था। सन् १९०० के पश्चात् वह पुराना नमूना बिल्कुल बदल गया और अब तो वह निरन्तर अधिकाधिक उलझन-भरा बनता जा रहा है। अब विदेशों के साथ व्यापार, मित्रता, आक्रान्ताओं के आक्रमणों का निरोध और राष्ट्रीय संस्थाओं की सदस्यता आदि अनेक कामों में विदेशी शासनों के साथ सम्पर्क करना पड़ता है। आज संयुक्त राज्य अमेरिका से शासन की प्रायः प्रत्येक एजन्सी का सम्बन्ध अमेरिकी जीवन के किसी ऐसे पहलू से है कि उसका प्रभाव देश के परराष्ट्र सम्बन्धों पर पड़ सकता है। बहुत-सी एजन्सियां तो सीधा विदेशियों या विदेशी शासनों के

साथ ही व्यवहार करती हैं। इसके अतिरिक्त, इस देश के स्थानीय स्वार्थ भी संसार व्यापी महत्त्व की विदेश-नीतियों का बहुधा विरोध करने लगते हैं। उदाहरणार्थ, 'विदेशों की सहायता नहीं, उनके साथ व्यापार' की नीति के समर्थक राष्ट्रपति ट्रूमन भी थे और आइजनहोवर भी हैं। दोनों ने इसे अमेरिका की सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण माना है। परन्तु व्यापारियों, किसानों और श्रमिकों के बहुत से प्रतिनिधि इसकी निन्दा करते हैं। वे सब अपने-अपने रोजगार के संरक्षण के लिए किसी न किसी प्रकार का तट-कर लगवाना चाहते हैं परन्तु उससे विदेशों के साथ शर्तें तय करने की अमेरिका की शक्ति बहुत निर्बल हो सकती है।

स्टेट डिपार्टमेण्ट अर्थात् परराष्ट्र-विभाग अपनी परराष्ट्र-नीति को प्रभावशाली बनाने के लिए चाहें भी तो इन सब पृथक्-पृथक् और बहुधा परस्पर-विरोधी विभागों, एजन्सियों और कांग्रेस की कमिटियों को एक ही दिशा में नहीं चला सकता। केवल राष्ट्रपति में इतनी सामर्थ्य है कि वह सब शासिका एजन्सियों के सूत्र अपने हाथ में रखकर कृषि-विभाग और प्रतिरक्षा-विभाग सरीखे विभिन्न संगठनों को एक ही लक्ष्य की पूर्ति में प्रवृत्त कर सके। अब ह्वाइट हाउस (अमेरिकी शासन-कार्यालय) में ऐसे कर्मचारी रखे भी जाने लगे हैं जो एकमात्र राष्ट्रपति के नियन्त्रण में रहते हैं और जिनके द्वारा वह सब विभागों की जानकारी प्राप्त कर सकता है। परन्तु पहले की सब न्यूनताएं दूर होकर पूर्णता-प्राप्ति की आशा शीघ्र ही पूरी नहीं हो सकती।

स्थानीय स्वार्थ जब परराष्ट्र-नीति में हस्तक्षेप करने लगें तब कांग्रेस को उनके प्रभाव से स्वतन्त्रता रखने की आशा भी राष्ट्रपति ही पूरी कर सकता है, क्योंकि राष्ट्रपति जनता से सीधी बात कर सकता है। स्टेट डिपार्टमेण्ट भी यदि विदेशी समस्याओं का विस्तृत विवरण राष्ट्रपति को देता रहे तो उसकी बहुतेरी सहायता हो सकती है, परन्तु इसके लिए परराष्ट्र विभाग के पास अच्छे और चतुर सूचना अधिकारियों का रहना आवश्यक है। सभी बड़े राष्ट्रपति सदा जनता के समर्थन पर निर्भर करते आये हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में सफलता का थोड़ा-बहुत दारोमदार इस बात पर होता है कि कांग्रेस में दोनों पार्टियां शासन का समर्थन कितना करती हैं । कांग्रेस में कुछ सदस्य ऐसे रहते हैं जिन्हें अपने राजनीतिक लाभ के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में शासन की स्थिति को खोखला करते हुए संकोच नहीं होता; परन्तु दोनों पार्टियों का बहुमत शत्रुओं के विरुद्ध राष्ट्र का ही पक्ष लेता है । पद ग्रहण करते समय सब सदस्य प्रतिज्ञा भी इस आशय की करते हैं। देश के सीमान्तर दोनों पार्टियों का परस्पर विरोध शान्त हो जाने की इच्छा नेता ही पूरी कर सकते हैं, परन्तु उनका प्रभाव और संगठन अभी इतने दृढ़ नहीं हुए हैं कि वे सदा सफल हो जायें। उन्नीसवीं कांग्रेस से मार्शल योजना को स्वीकृत करवाने में नेताओं को सफलता हुई थी, और उसका श्रेय सेनेटर वैण्डनबर्ग को प्रतिभा को दिया जाता है । द्विदलीय विदेश नीति की सफलता साधारणतया इस आशा पर निर्भर करती है कि कांग्रेस के नेता निःस्वार्थ रहेंगे, सौभाग्यवश उनकी एकता भंग नहीं होगी, और राष्ट्रपति कुशलता से विरोधी नेताओं के साथ भी निभा लेंगे ।

'उडरो-विलसन-फाउन्डेशन' की एक समिति ने सिफारिश की है कि संविधान में संशोधन करके कांग्रेस-सदस्यों का कार्यकाल चार वर्ष कर देना चाहिए। समिति ने बतलाया है कि जब कांग्रेस के साथ-साथ राष्ट्रपति का भी चुनाव नहीं होता तब मत कम पड़ते हैं और स्वस्थ परराष्ट्र-नीति के विरोधी विशिष्ट स्वार्थों को ऐसे कांग्रेस सदस्य चुनने में सफलता हो जाती है, जो कि शायद राष्ट्रपति के निर्वाचन के समय मतदाताओं के सजग रहने के कारण न चुने जाते । इस समिति ने यह सिफारिश भी की है कि राष्ट्रपति कांग्रेस को अपनी परराष्ट्र-नीति के भावी लक्ष्यों से पूर्णतया परिचित रक्खा करे, जिससे संकीर्ण स्वार्थों की तथा अल्पकालीन स्वार्थसिद्धि की नीति और प्रस्ताव का विरोध अधिक अच्छी प्रकार हो सके ।

ऐसी किसी विदेश-नीति के तय होने में जिसका उग्र विरोध न हो, बड़ी कठिनाइयां दो हैं । एक तो बार-बार दुविधाओं का खड़ा हो जाना और दूसरी

वर्तमान शताब्दी की परिवर्तित परिस्थितियों के कारण कुछेक अत्यन्त बद्धमूल और चिरसमाहृत अमेरिकी धारणाओं के विपरीत कार्य करने की आवश्यकता।

सोवियट यूनियन (रूस) सरीखे धूर्त और साधन-सम्पन्न शत्रु के साथ भुगतते समय दुविधाओं का खड़ा होना अवश्यम्भावी है। शत्रु विशेष प्रयत्न करके ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न कर देता है जिनमें अमेरिका को दो में से एक बुराई अपनानी पड़ जाय। उदाहरणार्थ, कोरिया का प्रकरण ऐसी दुविधाओं से भरा पड़ा था। जो भी मार्ग चुना जाता उसे बुरा कहकर उसकी निन्दा की जा सकती थी। सम्भव है कि वैसा करने की प्रेरणा विश्वासघातियों द्वारा दी जाती हो। ऐसी निन्दाओं को कोई भी परराष्ट्र-नीति अपनाने के मूल्य का भाग मानना चाहिए।

बीसवीं शताब्दी में संयुक्त राज्य अमेरिका के परराष्ट्र सम्बन्धों के कारण अपने ही देश में बार-बार भारी राजनीतिक तनाव उत्पन्न हो गया, क्योंकि उनसे पुरानी बद्धमूल नीतियां उलट गयीं। उदाहरणार्थ, एक शताब्दी से संयुक्त राज्य अमेरिका की नीति उलझन-भरी मित्रताओं में न पड़ने की थी। वाशिंगटन तक का श्रद्धास्पद नाम इस नीति के साथ जुड़ा हुआ था। अब उस पर नयी दृष्टि से विचार करना पड़ गया।

राष्ट्रपति वाशिंगटन ने सन् १७९३ में, फ्रान्स की सहायता और मित्रता से देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के कुछ ही वर्ष पश्चात्, फ्रान्स और इंग्लैण्ड के झगड़ों में तटस्थ रहने की नीति अपनायी थी। वाशिंगटन का लक्ष्य यह था कि शिशु संयुक्त राज्य को बलवान होने के लिए कुछ समय मिल जाय। उन्होंने केवल फ्रान्स के प्रति कृतज्ञता का निर्वाह करने के लिए संयुक्त-राज्य को युरोप के दानवों की कुश्ती में उलझाने से इनकार कर दिया। अपनी विदाई के भाषण में उन्होंने अमेरिकी लोगों से कहा था कि "विदेशी लोगों के साथ व्यवहार करने का बड़ा नियम यह है कि उनके साथ व्यापारिक सम्बन्ध तो बढ़ाओ, परन्तु राजनीतिक सम्बन्ध उनके साथ यथाशक्ति कम रक्खो।" वह ऐसे समय की प्रतीक्षा कर रहे थे "जब हम विदेशों के भड़काने पर भौतिक हानि की उपेक्षा कर उसका विरोध कर सकेंगे........, जब परस्पर लड़ते हुए देश यह समझ लेने के कारण कि हमसे

कुछ भी लाभ उठाना सम्भव नहीं है हमें उत्तेजित करने की जोखिम उठाने को सुगमता से तैयार नहीं होंगे; और जब हम शान्ति या युद्ध का चुनाव अपने न्याय संगत लाभ को देख कर कर सकेंगे।"

सन् १८२३ में राष्ट्रपति मनरो ने कहा था—"युरोप के सम्बन्ध में हमारी नीति उसकी किन्हीं भी शक्तियों के आंतरिक झगड़ों में न पड़ने की है। भूमण्डल का वह भाग (युरोप) युद्धों के कारण बहुत समय से क्षुब्ध होता चला आ रहा है। परन्तु हम इस नीति को इन युद्धों के आरम्भ में ही अपना चुके थे और वह अब तक यथापूर्व चली आ रही है।" यह पुनर्घोषणा यूनान के स्वातन्त्र्य-युद्ध के प्रसंग में की गयी थी, क्योंकि उसके साथ बहुत-से अमेरिकियों की गहरी सहानुभूति थी। युरोप में चाहे जो कुछ होता रहे, अमेरिकी नीति उससे पृथक् रहने की थी, और अमेरिकी जनता का प्रबल बहुमत उसका समर्थक था।

सन् १९१४ से सन् १९१७ तक के संकटपूर्ण काल में जब उडरो विलसन अमेरिकी तटस्थता की रक्षा करने का यत्न कर रहे थे तब भी अमेरिका की नीति यही थी। परन्तु तब अतलान्तक महासागर का पाट सिकुड़ चुका था, और अमेरिका की एक अन्य आधारभूत नीति पर आक्रमण होने लगा था। वह थी समुद्र में यातायात की स्वतन्त्रता। घटना चक्र के वेग ने विलसन को अपना विचार बदलने के लिए विवश कर दिया और उन्होंने सन् १९१७ में जर्मनी के साथ युद्ध छेड़ने की मांग की। इस उलझन में से निकलने के पूर्व ही, उन्होंने सेनेट से यह असफल प्रार्थना की कि वह अमेरिका का "लीग ऑव् नेशन्स" अर्थात् राष्ट्र-संघ में सम्मिलित होना स्वीकृत कर ले। आधे से अधिक अमेरिकी जनता तब संयुक्त राज्य को लीग में उलझाने की पक्षपाती थी।

परन्तु पृथक्ता की परम्परा तब तक मृत नहीं हुई थी। द्वितीय विश्व-युद्ध के छिड़ने पर अमेरिकी जनता शीघ्र ही यह मानने को तैयार नहीं हुई कि नात्सी अपने युरोपियन पड़ोसियों के साथ-साथ समस्त स्वतन्त्र संसार पर भी आक्रमण कर रहे हैं। जबतक पर्ल हार्बर पर आक्रमण नहीं हो गया और जर्मनी तथा इटली ने संयुक्त राज्य अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा नहीं कर दी तबतक पृथकता की

भावना का ही जोर रहा। अब भी अमेरिका की राजनीति में यह एक प्रबल अन्तर्धारा के रूप में विद्यमान है।

पृथकता की भावना के मूल में युरोप के प्रति जनवर्ग की परम्परागत अरुचि है। परन्तु यह भावना संसार के अन्य भागों पर, यह ठीक उसी प्रकार लागू नहीं होती। कहावत है कि "अमेरिकी पश्चिम की ओर मुंह करके जन्म लेते हैं।" पृथकता का अर्थ पश्चिम की ओर—चीन तक—स्थित देशों से पृथक् रहना कभी नहीं हुआ।

परराष्ट्र-नीति में दूसरा महत्वपूर्ण पलटा, जिसके कारण राजनीतिक विवाद उठ खड़ा हुआ है, ऊंचे तट-करों को नीचा कर देना है। सन् १९३३ में जब डिमोक्रेट पदारूढ़ हुए तब उन्होंने तट-कर घटाने पर जोर दिया था। यह उनकी पार्टी की परम्परा है। देशी उद्योगों का संरक्षण करने के लिए भी तट-कर लगाने का वे सदा विरोध करते रहे हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में पार्टियों की स्थिति तब कुछ अस्पष्ट थी; क्योंकि दक्षिण में भी उद्योगों की जड़ जम गयी थी और दक्षिणी डिमोक्रेट अपने उद्योगों के संरक्षण के पक्षपाती बन गये थे। इतिहास का प्रवाह भी ऊंचे तट-करों के विरुद्ध था।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में अमेरिका ऋणी देश से महाजन देश बन गया था। उसके पश्चात् जो विदेशी लोग अमेरिकी गेहूँ या मोटरें खरीदना चाहते थे उनके लिए अपना कुछ माल अमेरिकियों के हाथ बेचकर जरूरी डालर कमाना आवश्यक हो गया था। और इसके अतिरिक्त, यदि उन्हें अमेरिका से लिये हुये ऋण पर व्याज देना होता था तो उन्हें और भी माल बेचना पड़ता और, और भी डालर कमाने पड़ते थे। संक्षेप में, ऋणों की वसूली और अमेरिकी माल की विदेशों में बिक्री के लिए, अमेरिकियों के लिए आवश्यक हो गया कि वे निर्यात की अपेक्षा आयात अधिक करें। उधार पर माल बेच देने से बात टल सकती थी, परन्तु उत्तमर्ण (महाजन) देश के लिए तो अतिरिक्त आयात करना आवश्यक हो ही जाता है; वरना संकट खड़ा हो सकता है। अतः उसे अपने तट-कर घटाने पड़ते हैं, नहीं तो कठिनाइयां बढ़ जाती हैं।

परन्तु अमेरिकी उद्योगों को ऊंचे तट-करों की आदत पड़ी हुई थी, और देश की राजनीति पर उनका प्रभाव भी था। प्रथम विश्व-युद्ध के कोई बारह वर्ष के पश्चात् तट-कर किसी भी गत काल की अपेक्षा ऊंचे थे; फलतः संकट खड़ा हो गया। युद्ध-ऋण डूब गये और साथ ही पश्चिमी अर्थ-व्यवस्था भी डूब गयी। जो भारी मन्दी आयी उसके लिए अमेरिकी तट-कर भी उत्तरदायी थे।

द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् युद्ध-ऋण की समस्या उतनी गम्भीर नहीं थी, क्योंकि उधार-पटटे की व्यवस्था द्वारा अमेरिकी शस्त्रास्त्र मित्र-राष्ट्रों को पूरा मूल्य लिये विना दे दिये गये थे। इसके पश्चात् वह समय आया जब अमेरिकी धन की बड़ी-बड़ी राशियां सहायता और पुर्ननिर्माण के लिए विदेशों को दी गयीं। जबतक अमेरिका कई अरब डालर प्रति वर्ष देता रहेगा तबतक व्यापार के सन्तुलन का प्रश्न खड़ा नहीं होगा। परन्तु सहायता दिये विना भी काम चलता रखने के लिए अमेरिका को अपने द्वार अधिकाधिक विदेशी व्यापार के लिए भी खोलने ही पड़ेंगे। विदेशों को सहायता नहीं देनी चाहिये, उनके साथ व्यापार करना चाहिये, की नीति अपनाने का कारण यही है। संसार की परिस्थितियों ने ही इसे हम पर लाद दिया है, परन्तु इससे बहुसंख्यक अमेरिकियों के वंश परम्परागत विश्वासों को ठेस लगती है और इस कारण भावनाएं भड़क जाने पर विदेश-नीति का निर्धारण सरल काम नहीं रह जाता।

नीति में इन काया-पलटों के कारण तो बहुत-से अमेरिकी लोग क्षुब्ध हो उठे हैं; परन्तु अन्य अनेक अमेरिकी परम्पराओं में परिवर्तन या उनका नया विकास अपेक्षाकृत कम क्षोभ के साथ हो गया है।

इनमें से एक मनरो-सिद्धान्त है। इसका जन्म पहले-पहल ब्रिटिश सरकार के इस सुझाव से हुआ था कि दोनों देश मिलकर युरोपियन महाद्वीप की शक्तियों को नये और निर्बल दक्षिण-अमेरिकी गणतन्त्रों पर आक्रमण करने से रोकें। ब्रिटेन और संयुक्त-राज्य अमेरिका, दोनों ही, फ्रान्स या स्पेन या रूस को पश्चिमी गोलार्ध में नये साम्राज्य खड़े करने देना नहीं चाहते थे। राष्ट्रपति मनरो ने अंग्रजों के साथ उलझन में न पड़ने का निर्णय किया; क्योंकि भविष्य में उनकी कुछ नीतियों का

ऐसा होना सम्भव था जो संयुक्त राज्य अमेरिका को पसन्द न आतीं। इसलिए उसने २ दिसम्बर सन् १८२३ को घोषणा कर दी कि संयुक्त राज्य अमेरिका नये महाद्वीप में युरोपियन साम्राज्यों के विस्तार को "अपनी शान्ति और सुरक्षा के लिए भय का कारण" मानेगा। उस समय समुद्रों पर ब्रिटिश जल-सेना का नियन्त्रण था और उसे ब्रिटेन के हित में मनरो-सिद्धान्त का समर्थन करना पड़ गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के शेष भाग में स्थिति यही रही। सन् १९०० के पश्चात् लेटिन-अमेरिकी देशों में अनचुके ऋणों का एकत्र होते चले जाना मनरो-सिद्धान्त के लिए गम्भीर और क्रमशः बढ़ते हुए भय का कारण बन गया। यह भय होने लगा कि कहीं युरोपियन उत्तमर्ण बहुत समय से देय हो चुके अपने ऋणों की वसूली के लिए अपनी सशस्त्र शक्तियों का प्रयोग करते हुए केरिबियन समुद्र के तट तक आकर यहीं न बस जायं। इसलिए राष्ट्रपति थियोडोर रूजवेल्ट ने मनरो-सिद्धान्त के "रूजवेल्ट परिणाम" की घोषणा कर दी। युरोपियन उत्तमर्णों को चेतावनी दे दी गयी कि वे अमेरिका महाद्वीप से परे रहें; और संयुक्त राज्य अमेरिका ने 'रिसीवर' बनकर, जबतक दिवालिया देश अपने पांव पर खड़े न हो जायं तब-तक, तट-कर एकत्र करने, व्यवस्था रखने और भ्रष्टाचार को रोकने की जिम्मेवारी अपने सिर ले ली।

लेटिन-अमेरिकी लोगों को एक के बाद दूसरे देश में अमेरिकी जल-सैनिकों का उतरना बहुत बुरा लगा। इसलिए राष्ट्रपति हर्बर्ट हूवर ने "रूजवेल्ट-परिणाम" का प्रत्याख्यान कर दिया और लेटिन-अमेरिका के साथ नया तथा मित्रता पूर्ण व्यवहार आरम्भ किया। सन् १९२८ में निर्वाचित हो जाने पर सन् १९२९ में अपना पद सम्भालने तक उन्होंने लेटिन-अमेरिका की मित्रता-पूर्ण यात्रा की। "अच्छे पड़ोसी की नीति" का पालन राष्ट्रपति फ्रैंकलिन रूजवेल्ट और ट्रूमन के समय भी किया जाता रहा। संयुक्त राज्य अमेरिका ने जिम्मा लिया है कि वह अन्य अमेरिकी राष्ट्रों के अन्दरूनी मामलों में दखल नहीं देगा। "अमेरिकी राष्ट्रों के संगठन" में गोलार्द्ध की रक्षा करना सब सदस्यों का कर्त्तव्य मान लिया गया है।

मनरो-सिद्धान्त के इस रूपान्तर से स्वतन्त्र संसार की रक्षा सम्बन्धी सामान्य दुविधा कुछ स्पष्ट हो जाती है। कोई भी स्वतन्त्र राष्ट्र अपने यहां आन्तरिक व्यवस्था की पुनः स्थापना करने के लिए अपने तट की ओर आते हुए संयुक्त राज्य अमेरिका के जल सैनिकों का स्वागत नहीं करेगा। स्वतन्त्र राष्ट्र स्वतन्त्रता की इच्छा, अपनी आन्तरिक समस्याओं को अपने ही ढंग से हल करने के लिए करते हैं। साथ ही, स्वतन्त्र संसार के सभी भागों में उदार विचार के लोगों को यह देखकर बुरा लगता है कि संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिण अमेरिका में तथा अन्यत्र भी, तानाशाही शासन वाले देशों की सहायता करता है। कम्यूनिस्ट पार्टी भी अपने प्रचार आन्दोलन में इसका लाभ उठा लेती है।

अमेरिका एक शताब्दी से अधिक समय से, कुछ अपवादों को छोड़ कर, इस दुविधा को स्थिर रखता चला आ रहा है; और इसका उत्तर वह यह देता है कि किसी विदेशी आक्रान्ता द्वारा किसी छोटे देश को जीत लिये जाने की अपेक्षा उसी देश में जन्मा हुआ तानाशाह संसार के लिए कम खतरनाक होता है। इसलिए यदि कोई देश अभी लोकतन्त्रीय शासन न अपना सका हो तो भी संयुक्त राज्य अमेरिका उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए उसे सहायता देना अधिक अच्छा समझता है।

"समुद्रों में यातायात की स्वतन्त्रता" का परम्परागत अमेरिकी सिद्धान्त ब्रिटिश लोगों से उत्तराधिकार में मिला हुआ है। ब्रिटिश लोग रानी एलिजाबेथ प्रथम के समय से ही संसार भर के समुद्रों में घूमने और व्यापार करने का आग्रह करते रहे हैं। परन्तु यह सिद्धान्त, एकवर्गाधिकारी आक्रान्ताओं से स्वतन्त्र संसार की सहयोग पूर्वक रक्षा करने के लिए उपयुक्त सिद्ध नहीं हुआ। प्रथम विश्व-युद्ध के समय व्यापार करने के अधिकार की, विशेषतः युद्ध-काल में तटस्थ-व्यापार के अधिकार की, आधुनिक अवस्थाओं के साथ टक्कर हो गयी थी। राष्ट्रपति विलसन ने क्रुद्ध होकर अंग्रेजों और जर्मनों, दोनों के साथ बहुतेरी बहस की थी; परन्तु न तो ब्रिटेन ही अमेरिकी जहाजों को शत्रु के साथ व्यापार करने की इजाजत दे सका

और न जर्मनी, क्योंकि दोनों को युद्ध हार जाने का भय था। अन्त में संयुक्त राज्य अमेरिका ने युद्ध में पड़कर इस समस्या को टाल दिया।

द्वितीय विश्व-युद्ध में कांग्रेस ने "न्यूट्रैलिटी ऐक्ट" अर्थात् तटस्थता का कानून बनाकर अमेरिका के तटस्थता के अधिकारों का ही त्याग कर दिया। अमेरिकियों का युद्ध-क्षेत्रों में जाना वर्जित कर दिया गया; और ज्यों-ज्यों अमेरिका मित्र-राष्ट्रों का पक्ष अधिकाधिक लेता गया त्यों-त्यों वह स्थिति भी समाप्त होती गयी।

अब अन्त में सन् १९४५ से आरम्भ हुए आतंक-युद्ध में, सोवियट देशों के साथ व्यापार करने पर प्रतिबन्ध लगाने की माँग करने में संयुक्त राज्य अमेरिका संसार का नेतृत्व कर रहा है। परिस्थितियों ने समस्याओं को परिवर्तित कर दिया है। अब समुद्री यातायात की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त में राजनीतिक उत्तेजना तनिक भी नहीं रही। अब युक्तियाँ इस सिद्धान्त के समर्थन में नहीं, अपितु यह निर्णय करने के लिए दी जाती हैं कि कितना नियन्त्रण करने से परिणाम उत्कृष्ट निकलेंगे।

चीन का द्वार खुला रखने का सिद्धान्त भी समुद्री यातायात की स्वतन्त्रता से सम्बद्ध था। संयुक्त राज्य अमेरिका चीन के साथ व्यापार करने में अन्य सब देशों के समान सुविधाएं पाने का आग्रह किया करता था। चीन में कम्यूनिस्ट क्रान्ति के पश्चात् वह समस्या ही अब नहीं रही।

अन्त में, यह भी मानना पड़ेगा कि संयुक्त राज्य अमेरिका की परराष्ट्र नीति साम्राज्यवाद की दशा में से गुजर चुकी है। परन्तु सन् १८९८ के स्पैनिश युद्ध के पश्चात् उसका अन्त होने लगा था। उन्नीसवीं शताब्दी में संयुक्त राज्य अमेरिका पश्चिम में प्रशान्त सागर की ओर और दक्षिण में रायो ग्रेण्डी की ओर को फैल रहा था। इस विस्तार का सबसे हिंसामय प्रकरण सन् १८४६-४८ का मेक्सिकन युद्ध था। बीच-बीच में क्यूबा और अन्य केरिबियन प्रदेशों पर अधिकार कर लेने का आन्दोलन भी उठता था, परन्तु उसका फल साम्राज्य विस्तार के किसी बड़े प्रयत्न के रूप में प्रकट नहीं हुआ।

सन् १८९८ में क्यूबा के निवासी स्पेनिश राज्य के विरुद्ध विद्रोह कर रहे थे। स्पेनिश युद्ध, उनके साथ अमेरिकी जनता से सहानुभूति के कारण और इस भय के कारण छिड़ा था कि जर्मन लोग स्पेन की ओर बढ़ते हुए कहीं क्यूबा पर भी अधिकार न कर लें। इसी समय हवाना बन्दरगाह में अमेरिका का 'मेन' युद्ध पोत बारूद से उड़ा दिया गया। बस, सनसनी फैलाने वाले समाचार पत्रों ने संयुक्त राज्य अमेरिका के सुलगते हुए क्रोध को भभका कर ज्वाला में परिणत कर दिया। युद्ध के पश्चात् अमेरिकियों से अधिक आग्रह किसी को नहीं हुआ, क्योंकि जब उनको होश आया तब उन्होंने देखा कि क्यूबा, प्यूअटो रिको, और फिलिपाइन-द्वीप-समूह उनके अधिकार में आ चुके थे।

इसी समय रुडियार्ड किपलिंग ने अमेरिकी लोगों को सम्बोधन करके लिखी हुई एक कविता में उनसे "गोरे लोगों का बोझ उठा लेने" का अर्थात् संसार की रंगीन जातियों पर शासन करने का गोरे लोगों का कर्तव्य पालन करने का अनुरोध किया था। जब देश यह निर्णय कर रहा था कि इन विजित प्रदेशों का क्या किया जाय, तभी राष्ट्र भर में साम्राज्यवाद पर विवाद चल रहा था। फल यह हुआ कि हवा का रुख साम्राज्यवाद के विरुद्ध हो गया। अब अमेरिकियों का प्रबल बहुमत स्पष्ट इस विचार का पक्षपाती बन चुका है कि हम भिन्न भाषा बोलने वाले और भिन्न रीति रिवाजों पर चलने वाले लोगों के किसी भी दूरस्थ देश पर शासन करना नहीं चाहते। अब किसी भी विदेश में "तारों और पट्टियों" को अर्थात् अमेरिकी झण्डे को, नीचा न होने देने के पुराने नारों में कुछ भी राजनीतिक उत्साह नहीं रह गया है। जब अमेरिकियों को जर्मनी या जापान जैसे किसी विदेश पर कभी शासन करना भी पड़ जाता है, तब उनकी सर्वोपरि इच्छा घर लौट जाने की ही रहती है।

विदेशी मामलों में राजनीतिक पार्टियों का रुख ठीक वही नहीं रहता जो कि स्वदेशी मामलों में रहता है। विदेशी शत्रुओं या मित्रों के साथ व्यवहार के समय दोनों पार्टियों की भावना साधारणतया परस्पर सहयोग की और देश भक्ति की रहती है। निहायत गैर जिम्मेवार लोकप्रिय नेता ही इस भावना से अप्रभावित रह

सकते हैं। दूसरी ओर, सार्वजनिक व्यय के सम्बन्ध में नेकनीयत मतभेदों के कारण विदेशों को सहायता देने सरीखे प्रश्नों पर अनिवार्य रूप से विवाद खड़ा हो जाता है। इसके अतिरिक्त कांग्रेस सदस्यों को स्थानीय आर्थिक स्वार्थों का भी उचित ध्यान रखना ही पड़ता है, वरना उसके स्थान पर अन्य कोई ऐसा व्यक्ति चुना जा सकता है जो इन स्वार्थों का ध्यान रखने वाला हो। और अन्त में, संसार की नयी परिस्थितियों के कारण परम्परागत नीतियों में जो काया पलट हो गये हैं, उनका भी राजनीतिक प्रभाव पड़ता ही है। संसार की अवस्था अमेरिकी लोगों को नये मार्ग पर चलने के लिए विवश कर रही है और वे लम्बे चौड़े राजनीतिक विवादों पश्चात् ही यह निश्चय कर सकेंगे कि वे क्या कर रहे हैं और उन्हें क्या करना चाहिए।

अध्याय १४

राजनीति और लोकतन्त्र

संयुक्त राज्य अमेरिका इस भूमण्डल का एक अत्यन्त मानुषिक राष्ट्र है और सोवियट यूनियन सभी तुलनात्मक दृष्टियों से अत्यन्त अमानुषिक राष्ट्र है। इन दोनों महान् प्रतिस्पर्धियों में दोष रहित तो कोई भी नहीं, परन्तु दोनों के दोषों में अन्तर बहुत बड़ा है। इस अन्तर का वर्णन आर्थिक संगठन की भाषा, धर्म की भाषा, अथवा अल्प-संख्यकों के प्रति शासकों के रुख की भाषा में भी किया जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियट यूनियन में अन्तर को स्पष्ट करने का एक उपाय दोनों की राजनीति में अन्तर दिखला देना भी है।

सोवियट यूनियन की सरकार अपनी जनता के विषय में जो कहती है उसे हम यदि सत्य मान लें तो उस देश के लोगों की रुचि राजनीतिक विचारों और कार्यों में अत्यन्त अधिक है। कहा जाता है कि वहां कोई चालीस लाख से दो करोड़ तक "राजनीतिक" बन्दी बेगार के कैम्पों में बन्द पड़े हैं। इन अभागों पर राजनीतिक कार्य करने या राजनीतिक प्रश्नों पर विचार करने का सच्चा या झूठा अभियोग लगाया गया था। इन कैम्पों में मामूली चोरों और खूनियों के साथ पक्षपात करके उन्हें राजनीतिक बन्दियों के ऊपर अधिकारी बना दिया जाता है। सोवियट-शासन-पद्धति की अमानुषिकता का सब से बड़ा उदाहरण यह है कि वहां अन्य समस्त अपराधों की अपेक्षा राजनीतिक अपराधों के लिये कठोरतम दण्ड दिया जाता है।

परन्तु संयुक्त राज्य में और अन्य लोकतन्त्रीय देशों में भी, राजनीति मात्र को अपराध नहीं समझा जाता। हां, कुछ प्रकार की राजनीतिक अपराध हो भी सकते

है, क्योंकि आखिर राजनीति भी मनुष्यों का ही काम है; इसका सम्बन्ध व्यवहार-नीति से लेकर भ्रष्टाचार तक सभी व्यवहारों से है।

संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियट यूनियन में एक और अन्तर नागरिक अधिकारों के प्रति उनके रुख में है। दोनों देशों में विभिन्न स्वभाओं और रीति-रिवाजों के और विभिन्न भाषाओं के वोलने वाले लोग वड़ी संख्या में बसते हैं, जब ये विभिन्न प्रकार के लोग एक ही केन्द्रीय शासन की, और एक ही आर्थिक व्यवस्था की अधीनता में लाये जाते हैं तब अनिवार्य-रूपेण वहुत-से संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियट यूनियन इन अनिवार्य संघर्षों का सामना सर्वथा विभिन्न उपायों से करते हैं।

सोवियट यूनियन में जो भी जाति या कवीला अपने विशिष्ट स्वभावों या रीति-रिवाजों को सुरक्षित रखता है—जो 'सोवियट मानव' के नीरङ्ग ढेर में घुल-मिल नहीं जाता या समा नहीं पाता—उसे निकम्मा वतलाकर अलग फेंक दिया जाता और उसे समाप्त कर डालने के लिए उस पर नजर रक्खी जाती है। इन अभागे शिकारों को ढोकर दूर ले जाने के लिए केन्द्रीय सरकार अपनी रेलगाड़ियां भेज देती है। इनमें से कुछ तो गुलामों के कैम्प में भर जाते हैं, कुछ को उत्तरी ध्रुवों के समुद्री तटों पर वसा दिया जाता है, और कुछ रूसी जनता में इधर-उधर विखर कर खो जाते हैं। अपने धर्म और अपनी संस्कृति का पालन करने वाले पृथक् लोगों के रूप में इस भूतल पर से इनका अस्तित्व मिटा डाला जाता है।

जिस प्रकार के "स्वाभाविक निर्वाचन" से, सोवियट यूनियन की कृपा-भाजन जातियां अपने से कम भाग्यशाली जातियों का उन्मूलन करके स्वयं भविष्य के लिए देश की आवादी वनाने के लिए जीवित वची रह जाती हैं, वह पशु जातियों के पारस्परिक संघर्ष से वहुत मिलता-जुलता है। उस संघर्ष में निर्वल जीव नष्ट हो जाते और वलशाली वचे रह जाते हैं। पुलीस राज में जो समर्थतम वचे रह जाते हैं, वे सभ्यतम नहीं अपितु निर्दयतम होते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका में भी वहुत सी जातियां, धर्म, और संस्कृतियां हैं। उनमें से कुछ एक दूसरे से इतनी भिन्न हैं कि उनके लोग, कल्पना चक्षुओं से दृश्य

भविष्य में कभी भी साधारण जनता में घुल मिल नहीं सकेंगे। यहाँ भी बाजारों में संघर्ष होते हैं। जातियों, धर्मों और संस्कृतियों में भी संघर्ष होते रहते हैं और कुछ तो बहुत गहरे और कटु भी होते हैं। उस समय की कोई भी कल्पना नहीं कर सकता जब गोरे और नीग्रो, यहूदी और गैर-यहूदी और कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट, सबके सब पारस्परिक सन्देह और विरोध को भूल जायंगे और किसी भी प्रकार की विषमता का अनुभव किये बिना एक साथ खाने-खेलने लगेंगे। इस समय तो बहुत से लोग, भिन्न जाति और धर्म के अपने पड़ौसियों से घृणा करते और डरते हैं। कभी-कभी वे अपने साथी नागरिकों को हानि पहुंचाने का यत्न भी करते हैं। सम्भव है कि वे इन घृणित अल्पसंख्यकों के जीवन में उन्नति के अवसरों को सीमित करने में भी सफल हो जायं। यह सब मानव स्वभाव सुलभ है।

परन्तु विभिन्न जातियों और धर्मों के लोगों में मित्रता और सद्भावना का होना भी मानव-स्वभाव सुलभ है और लोकतान्त्रिक समाज में अन्त को जीत इन्हीं भावों की होती है। यह 'अन्त' बहुत विलम्बकारी होता है, और मधुर सम्बन्धों की दिशा में प्रगति भी मन्द होती है, परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका में हमें मधुरता और सद्भावना की ओर प्रगति के चिह्न अनेक दिखलाई पड़ते हैं। इस प्रगति को देखकर हमें विश्वास हो जाता है कि अमेरिकी जीवन-पद्धति की संस्थाओं और रीति-रिवाजों में कुछ न कुछ सत्य अवश्य है।

अमेरिकी जनता अपने शासन को, जातियों की यह कठिन समस्या जाति-विनाश के द्वारा—नापसन्द वर्ग के सब लोगों को मार डालने के द्वारा—हल करने का अधिकार नहीं देती। इसके विपरीत, वह सब नागरिकों के अधिकारों को सुरक्षित और विस्तृत करने के लिए, शिक्षण, कानून और सार्वजनिक वाद-विवाद के उपायों में अधिकतम व्यावहारिक संगति लगाने का प्रयत्न करती रहती है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में अश्वेत जातियों के साथ जो बुरा व्यवहार किया जाता है उसका प्रचार कम्यूनिस्ट प्रचारक बहुत बढ़ा-चढ़ाकर करते हैं—

विशेषतः संसार की अश्वेत जातियों में अमेरिकी लोग इस प्रकार के प्रचार से बचकर भाग नहीं सकते। हमें इसका सामना करना, और सुधार के प्रमाण देकर इसका उत्तर देना पड़ेगा। अमेरिकी लोग, अल्पसंख्यकों को नष्ट कर देने का और अपने अपराध को गोपनीयता की दीवार के पीछे छिपा देने का सोवियट उपाय नहीं अपनायेंगे। अमेरिकी मार्ग जनता के अधिकारों की समस्या लोकतान्त्रिक उपायों से हल कर लेने का है। लोकतान्त्रिक उपाय की गति मन्द तो है, परन्तु असन्दिग्ध है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के सब दोषों के बावजूद उसमें कुछ गुण ऐसे हैं जो विदेशियों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। इसका प्रमाण यह है कि जो प्रवासी इस देश के अशोभनतम पहलू को देख लेते हैं उनमें से भी अधिकतर यहां रुककर संयुक्त राज्य को अपना घर बना लेने का निश्चय कर लेते हैं। अमेरिकी जनता की स्वतन्त्रता कई दृष्टियों से अपूर्ण तो है, परन्तु फिर भी जीवन की अनेक आवश्यकताएं इससे पूर्ण हो रही हैं और यह निरन्तर उन्नति के स्वस्थ चिह्न प्रकट कर रही है। अमेरिकी स्वतन्त्रता की इस जीवनी शक्ति का सम्बन्ध इसके उद्भव की विशिष्ट परिस्थितियों से है।

प्रथम बात यह है कि जो लोग अमेरिका आये थे उनमें से अधिकतर ऐसी परिस्थिति से बचकर यहां आये थे जिसमें वे अपने आप को बन्दी बना हुआ अनुभव करते थे। वे एक ऐसे नये देश में आये थे जहां का जीवन कठोर और भयानक था। बहुत से तो भूख-प्यास और ऋतु की कठोरता से मर गये और बहुत से इण्डियनों के कुल्हाड़े का शिकार हो गये। फिर भी उन्होंने अनुभव किया कि हम स्वतन्त्र हो गये हैं, हमारे बन्धन टूट गये हैं।

द्वितीय बात यह कि लगभग तीन शताब्दियों तक अमेरिकियों को ऐसी भौगोलिक सुरक्षा और सुअवसर मिलते रहे कि उनके कारण उनकी स्वतन्त्रता स्वयं-सिद्ध सी हो गयी। उनकी पीठ पर अतलान्तक महासागर था। देश की प्रगति की सब अवस्थाओं में हम ऐसी सेनाएं संगठित कर सके, जो ब्रिटेन य

अन्य किसी शक्ति द्वारा समुद्र के तीन सहस्र मील पार भेजी हुई फौज का खासा मुकावला करने में सफल रहीं। यह आरम्भिक लाभ उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में बालक संयुक्त राज्य अमेरिका के इस सौभाग्य से और समृद्ध हो गया कि युरोपियन शक्तियां परस्पर ही तीखे झगड़ों में उलझ गयीं और इस कारण उनमें से कोई भी अपने बल को अमेरिकी तट के विरुद्ध केन्द्रित नहीं कर सकी।

स्वतन्त्रता का एक अन्य भौगोलिक तत्त्व पश्चिम की ओर का रिक्त-प्रदेश था। इस कहावत में बहुत सचाई है कि कहीं और जा सकने की सामर्थ्य ही स्वतन्त्रता है। सबको इस बात की जानकारी हो जाना अत्याचार के विरुद्ध एक बलवान् गारण्टी है कि शिकार जब चाहे तब अपना डेरा डण्डा उठाकर गायब हो सकता है। भाग सकने की यह स्वतन्त्रता अब भी अमेरिकी जीवन की एक उल्लेखनीय विशेषता है। खुले सीमान्त के दिनों में, अधिकारियों और व्यक्तियों के अधिकारों के प्रति अमेरिकी रुख की यह एक प्रमुख विशेषता थी।

अन्तिम बात यह कि अमेरिकी लोगों को इंगलैण्ड के कानून और संस्थाएं उत्तराधिकार में मिले थे। इन कानूनों और संस्थाओं की रचना राजा और प्रजा में दीर्घ संघर्ष के पश्चात् हुई थी। इनका प्रयोजन शासन में नागरिक की रक्षा करना था। अमेरिकी संविधान के पांचवें संशोधन में कहा गया है कि बिना उचित कानूनी काररवाई के, शासन, किसी भी नागरिक को जीवन, सम्पत्ति और स्वतन्त्रता से वंचित नहीं कर सकेगा, और न उसकी सम्पत्ति को बिना उचित मुआवजा दिये सार्वजनिक उपयोग के लिए ले सकेगा।

अमेरिका को जो ये संस्थाएं उत्तराधिकार में मिलीं वे मध्य-वर्ग की थीं, और युरोप की दूरी तथा खुले सीमान्त के कारण भी अमेरिकियों को मध्यवर्गीय विचार-शैली की ओर बढ़ने में सहायता मिली। किसी भी अमेरिकी श्रमिक की प्रवृत्ति अपने आपको उन मेहनतकश मजदूरों के मजमे का मेम्बर समझने की कम होती है जो सरमायेदारों का सरमाया जब्त कराने की जद्दो-जहद कर रहे होते हैं, और अपना मकान या व्यापारिक सम्पत्ति में अपना भाग खरीद लेने की अधिक

होता है। इतने अधिक श्रमिक पश्चिम की ओर जाकर और भूमि लेकर खेतो में लग चुके अथवा अपना व्यापार आरम्भ कर चुके हैं कि वर्गों के परिवर्तित हुए विना उनके वर्ग-युद्ध में उलझ जाने की कल्पना कोई सुगमता से करता ही नहीं।

इस प्रकार अमेरिकी जनता के कानून और संस्थाएँ, जनता की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए राजनीतिक साधनों के रूप में प्रयुक्त होने के लिए, भली भांति अपनायी जा चुकी हैं। विस्तृत समुद्र की आप से आप मिली हुई रक्षा के सिकुड़ जाने और सीमान्त की ओर स्वतन्त्रता से वढ़ने के अवसर क्रमशः समाप्त हो जाने पर भी, शासन के साधनों को, जनता की आवश्यकतानुसार नये प्रकार का संरक्षण देने के लिए, विस्तृत और परिवर्तित किया जा सकता है।

अमेरिकी इतिहास की आरम्भिक अवस्था में लोकतन्त्र की सृष्टि सीमान्त ने स्वयमेव कर दी थी, क्योंकि जिस किसी को भी अपने साथ दुर्व्यवहार किया जाने की शिकायत होती, वह पृथक् होकर अपने सामर्थ्यानुसार अपना मार्ग आप वना सकता था। परन्तु पूर्वी तट के साथ-साथ वसे हुए देश में इंगलैण्ड के ही सामाजिक और आर्थिक वर्ग स्थिर हो गए थे। राजनीतिक लोकतन्त्र सम्पत्तिशाली लोगों तक ही सीमित था। केवल उन्हीं को मत देने का अधिकार प्राप्त था।

परन्तु सीमान्त का विस्तार पश्चिम की ओर को होता गया और मतदाताओं में साधारण व्यक्तियों की संख्या भद्र जनों से अधिक होती गयी। ज्यों-ज्यों मताधिकार अधिकाधिक वर्गों के लोगों को, और अन्त में स्त्रियों को भी दिया जाने लगा; त्यों-त्यों राजनीतिक लोकतन्त्र का भी विस्तार होता गया। राष्ट्रपति को और सेनेट के सदस्यों को चुनने का अधिकार भी जनता ने अपने हाथ में ले लिया। ज्यों-ज्यों राजनीतिक शक्ति केवल उच्च वर्गों के नियन्त्रण से निकलती गयी त्यों-त्यों राजनीति में सारी आवादी के सामान्य गुण और दोष अधिक निकटता से प्रतिविम्वित होने लगे। वीसवीं शताब्दी के संघर्ष में संयुक्त राज्य अमेरिका का उत्थान या पतन इन्हीं गुणों और दोषों के सहारे होगा।

क्या सही है; क्या गलत और क्या बुद्धिमत्ता है और क्या मूर्खता, इन प्रश्नों का निर्णय जनता स्वयं ही कर रही है। जनता की वाणी ही ईश्वर की वाणी है, इस

प्रचलित कहावत का अर्थ यह किया जा सकता है कि जिस साधन से अमेरिकी समाज की रचना हो रही है, वह वास्तव में अपनी स्वयं-प्रभु इच्छा का प्रकाशन करने वाली जनता की ही वाणी है। जब किसी अस्पष्ट प्रश्न का उत्तर केवल परीक्षण में भूलें करके देखने से मिल सकता है तब लोग परीक्षण करते हैं। भूलें कर के वे सीखते हैं कि बुद्धिहीनता क्या है और गलती करने पर उन्हें पता लगता है कि गलती क्या थी। कभी-कभी जनता ठीक काम भी करती है और उसके परिणाम से प्रसन्न होती है।

प्रतीत होता है कि प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात्, जनता ने 'लीग ऑव नेशन्स' अर्थात् राष्ट्र-संघ में सम्मिलित होने से इनकार करके, संसार की सुरक्षा का उत्तर-दायित्व उठाने से पीछे हटकर, और शान्ति की निरर्थक प्रतिज्ञाओं के साथ खिलवाड़ करके भूल की थी। उन्हें यह कैसे ज्ञात हुआ कि वे भूल कर रहे थे? जब युद्ध रोकने के लिए खड़ी की हुई उनकी कागजी दीवारें पर्ल हार्बर में ढह गयीं तब; कठोर अनुभव से अगली बार वे अधिक अच्छी तरह जान चुके थे।

अगली बार संयुक्तराष्ट्र संघ की संस्थापना करने, उसे जीवित रखने और बल संचय करने में सहायता देने के कार्य में अमेरिकी जनता ने अधिक उत्साह से योग दिया। कोरिया की चुनौती का सामना करने में मार्ग दिखलाने का काम संयुक्त राज्य अमेरिका ने भी किया। उस समय संयुक्त राष्ट्रसंघ की मृत्यु से रक्षा, साहस-पूर्ण उत्तर के कारण ही हो सकी थी। पर्ल हार्बर से पूर्व भी उधार-पट्टा कार्यक्रम के लिए स्वीकृति अमेरिकी जनता ने ही दी थी; और द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् मार्शल योजना की स्वीकृति भी उसने ही दी। इन सब कार्यों से प्रकट होता है कि जनता किस प्रकार पिछली भूलों से सीख गयी और नयी आपत्तियों का सामना करने के लिए नये उपायों की परीक्षा करने के लिए तैयार हो गयी।

निःसन्देह भविष्य में भी जनता कभी भूल करेगी और कभी ठीक करेगी और यदि वह जीवित रह गयी तो वह नया पाठ सीख चुकी होगी। उसका मन उसे आपत्तियों में भी प्रगति की ओर ले जाता है, क्योंकि उसके इतिहास ने उसे प्रगति में ही विश्वास करना सिखलाया है। यह भी भूल ही हो सकती है; परन्तु यही एक

मात्र मार्ग है जो अधिक अच्छे भविष्य की ओर ले जा सकता है। अमेरिकी जनता को न केवल प्रगति की भावना उत्तराधिकार में मिली है, वह आज अनिच्छापूर्वक सबसे आगे चलने के लिए भी विवश हो गयी है। वह आज इतिहास की सीमा पर खड़ी है और वहां उसे अज्ञात शक्तियों का सामना करना पड़ रहा है और शेष प्रश्नों का उत्तर देना पड़ रहा है। गलत या सही जो सामने आयेगा उसका सामना उसे करना ही पड़ेगा।

यह स्वाभाविक और उचित ही है कि संयुक्त राज्य अमेरिका की राजनीतिक शक्तियां न केवल आगे बढ़ें, साथ ही पीछे का भी ध्यान रक्खें। इतिहास के सीमान्त पर साहस की आवश्यकता तो है ही, सावधानता की भी है। साहस की आवश्यकता जो कुछ किया जाना चाहिए उसे करने के लिए तो है ही, जिन आशंकाओं को भीतर-भीतर दवा रहने देना उचित नहीं उन्हें प्रकट करने के लिए भी है। सब आशाओं और आशंकाओं पर विचार करने के पश्चात् जो भी निश्चय किये जायं उन पर दृढ़ रहना चाहिए। यह कार्य अमेरिकी राजनीतिक पद्धति, विवाद के समस्त उच्छृङ्खल और संघर्षमय चक्र के वावजूद, पर्याप्त सफलता से कर रही है।

संयुक्त राज्य अमेरिका का सौभाग्य है कि अमेरिकी जनता का निर्माण अनेक आवादियों से मिलकर हुआ है; इस कारण वह संसार का नेतृत्व करने के भयंकर कार्य का सामना भली-भांति कर सकता है। संयुक्त राज्य की जनता, मानव जातियों की उलझी हुई आशाओं, आशंकाओं और विश्वासों से, उनकी घृणाओं और सन्देहों से, और उनमें परस्पर सद्भावना की आवश्यकता से, अपरिचित नहीं है। ये सब समस्याएं हमारे अपने देश में भी विद्यमान हैं। ये सब यहां सद्भावना और सहयोग की समरसता में परिणत नहीं हुई हैं। परन्तु इन सबके वावजूद, गृह युद्ध के भड़के विना, हम सब एकत्र मिल जुलकर रहते हैं। संसार को इसी की आवश्यकता भी है, किसी असम्भव स्वप्न या कल्पना की नहीं और अमेरिकी जनता का भाग्य है कि वह अपने घर की कठिनाइयों के कारण इस सबके अभिप्राय से सर्वथा अनभिज्ञ नहीं है।

अमेरिकी स्वप्न में असम्भव कुछ नहीं है। तीन-सौ वर्ष से हम निरन्तर यात्रा

कर रहे हैं। हम बहुतेरा चल चुके हैं, परन्तु उसका अन्त कहीं दिखलाई नहीं पड़ता। हमारा संकल्प भी किसी लक्ष्य पर पहुंचने का नहीं, यात्रा करते चले जाने का है। दुर्गमता को भी सुगमता के साथ मिलाते हुए, हम यात्रा का आनन्द ले रहे हैं। हमें लगता है कि साधारणतया हम ऊंची भूमि पर पहुंचते जा रहे हैं और पहले की अपेक्षा अब अच्छा दिखाई देने लगा है।

एक शताब्दी से अधिक समय हुआ कि फ्रेंच यात्री डो-ताकेविले ने कहा था, "अमेरिकी शासन का ढांचा उन लोगों के लिए उपयुक्त नहीं होगा जिन्हें अपने मामलों का प्रबन्ध स्वयं करने का बहुत पहले से अभ्यास न हो, या जिनके समाज में राजनीतिक विज्ञान निम्नतम वर्गों तक न पहुंच चुका हो।" अमेरिकी लोग यह सिफारिश नहीं कर सकते कि जो देश अभी-अभी पीढ़ियों पुरानी स्वच्छन्द शासन प्रणालियों से मुक्त हुए हैं, वे भी उन तमाम विशेषताओं सहित अमेरिकी प्रणाली का अनुकरण करने लगें जो कि अमेरिकी जनता को अपने विशिष्ट अनुभवों के पश्चात् प्राप्त हुई है। अन्य जो लोग राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने में सफल हो गये हैं, उनसे अमेरिकियों की सिफारिश यह है कि वे लोकतन्त्रीय प्रगति के मार्ग की यात्रा अपने ही परम्पराओं और अपनी ही प्रतिभा के भरोसे, इस विश्वास के साथ आरम्भ करें कि समस्त कठिनाइयों के बावजूद किन्हीं भी लोगों के लिए यही मार्ग सर्वोत्कृष्ट है।

लोग अपनी यात्रा के मार्ग की खोज अनेक प्रकार से करते हैं। विज्ञान से सीख सकने वाले हर पदार्थ का वह उपयोग करते हैं। वे धर्म के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का भी उपयोग करते हैं। और, अन्त में नित्यप्रति के जीवन के साधारण आदान-प्रदान में वे अमेरिकी मार्ग पर ही पहुंच जाते हैं।

अपने शासन का संगठन करते हुए वे विवाद, समझौते और सहमति के लोकतन्त्रीय उपायों का उपयोग अपनी जानकारी के अनुसार करते हैं। तानाशाहियों में राजनीति की कला का प्रयोग नहीं हो सकता; और लोकतन्त्रीय मार्ग में कुछ न कुछ कोलाहल तथा अव्यवस्था रहती ही है। इन दोनों के बीच में अमेरिकी लोग बीसवीं शताब्दी के भविष्य की खोज लोकतन्त्रीय मार्ग से ही कर रहे हैं—उसका परिणाम चाहे भला हो चाहे बुरा।